

प्रकाराक  
भीडुलारेलाल भागंय  
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय  
लाखनऊ



मुद्रक  
भीडुलारेलाल भागंय  
अध्यक्ष गंगा-काइनआर्ट-प्रेस  
लाखनऊ

## समर्पण

स्वयं के मातृभूतेश्वरों में आदर्श स्थिति,

धैर्यकुलालंकरण,

अदायक श्रीमान

राजा सूर्यप्रकाशसिंह साहब

बनारसप्रियाणि के बर बसलों में ।

श्रीमान्,

आपकी असाधारण और कर्मों की लोकोत्तर विभूति में  
मदक है। श्रीमान् जिस देश की हितचिन्ता में अहर्निश काम  
रहते हैं और आपकी जिस आदरणीय मानुषीय दिशि के  
आहिन्त्य भावों का हृदि में तन, मन, धन से समेक रहते  
हैं। इसी भावों की दृष्टि के असाधारण और इसी देश के  
वन्द्यता-प्राप्त के आदर्श एक कारणों से अहर्निश के एक  
काल इस दुःख के श्रीमान् की सेवा में हार्दिक अर्पण और  
आदर में समर्पण करता हूँ ।

श्रीमान् का कृतज्ञान,

सन् १९०८

१६७३

श्रीगुरुदेवकी भावना

अथवा गंगा-गुप्त-महात्म्य-काव्य-मय

लक्षण



गुरु

श्रीगुरुदेवकी भावना

अथवा गंगा-गुप्त-महात्म्य-काव्य-मय

लक्षण

## समर्पण

प्रबंध के सावलुकेदारों में आदर्श व्यक्ति,  
वैमकुलालंकरण,

ब्रह्मास्पद श्रीमान्

राजा सूर्यवक्ससिंह साहय

कसमठाधिपति के कर-कमलों में ।

श्रीमान्,

भगवती सरस्वती और सत्य की लोंबोसर विभूति से  
सपन्न हो श्रीमान् जिस देश की हितचिन्ता में अहर्निश लीन  
रहते हैं और अपनी जिस आदर्शवादी मान्यता सिद्धि के  
साहित्य-भाहार की वृद्धि में तन, मन, धन से लगे रहते  
हैं, उसी भाँहार की पूर्ति के सम्म्वरण और उसी देश के  
वृत्त्याण-स्वाधन के प्राचीन एवं आदर्श योगनिधि के एक  
जगत इस पुरनक को श्रीमान् की सेवा में हार्दिक अर्पण और  
आदर से समर्पण करता हूँ ।

श्रीमान् का कृपामात्र,  
प्रसिद्धनागयण



# भूमिका

योगी रामाचारकजी की "साईंस ऑफ प्रोथ" का जो मैंने अनुवाद किया, उसकी हस्तलिखित कपी हमारे कई मित्रों के हाथ में पहुँची। उसे पढ़कर लोगों ने इतनी प्रसन्नता प्रकट की कि इस दृष्टयोग के अनुवाद करने का भी मुझे उत्साह हो गया। इसके अनिरिक्त अनेक उत्साही मित्रों ने इन क्रियाओं का अभ्यास भी प्रारंभ कर दिया। जिन-जिन लोगों ने जो लगाकर इसका अभ्यास किया, वे तो इसके गुणों पर ऐसे मुग्ध हो गए और कहने लगे कि भारतवर्ष के योगियों की जो विद्या अब तक पहाड़ों की कंदराओं में छिपी थी, वह अब सर्वसाधारण में प्रचलित होगी और देश का असीम उपकार होगा। इन वाक्यों को सुन-सुनकर मैं विचार करने लगा कि जब केवल श्वास-क्रियाओं ही का प्रभाव लोगों को इतना उत्साहित कर रहा है, तो उन क्रियाओं के साथ यदि खान, पान, रहन, महन इत्यादि सभी बातों में दृष्टयोग के नियमों का अनुसरण होने लगेगा, तो और भी कितना लाभ होगा। इसी विचार से योगी रामाचारकजी के दृष्टयोग-नामक ग्रंथ का भी मैंने अनुवाद कर दिया।

योगी रामाचारकजी प्रत्येक विषय को अपनी किताबों में इस रीति से समझाते हैं कि शिष्यों के लिये कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती। बहुत दिनों से यह सुनने आते थे कि बिना साधान् गुरु के कोई साधन सिद्ध नहीं हो सकता; पर योगी रामाचारकजी के उपदेश, बिना साधान् गुरु के भी, साधान् गुरु के-से काम देने हैं। इसलिये मैंने उन्हीं के लेखों का टीक-टीक अनुवाद करने का यत्न किया है; अपनी ओर से कुछ भी घटाने-बढ़ाने का चेष्टा नहीं की। हाँ, ऐसी जगहों पर अवरय कुछ परिवर्तन कर दिए गए हैं, जहाँ उन्होंने अपने अमेरिका-निवासी शिष्यों को संबोधन करके कहा है, मैंने अपने भारतीय भाइयों को संबोधन कर दिया है।



## भूमिका

सोनी राजाजयसिंह की "गार्ह्य र्थात् ज्ञेय" का जो दिने  
 कागुनद विद्या, एतदी दार्शनिकम कार्यो द्वाते बदे मित्रो के दाय  
 ही पहुँची । ऐसे सद्वर्तकों में हमनी प्रगल्भता प्रष्ट की विद्वत्  
 द्वायोग के कागुनद करने का भी श्रुते उगाह हो गया । हमने  
 पालनिक कतेव उगाही शिरो में हम विद्याधो का अभ्यास भी  
 गारहा का दिया । जिस जिस कार्यो में ही उगावर द्वाका कादाम  
 विद्या में जो द्वाव श्रुती वर गेते कुच हो गए, वीर बहने जेते दि  
 कालमवर्ष के कागिधा की का विद्या अब लव बहने की बंदराधो  
 के दिए की लद काव कावेलाप्रारण के द्वाचित होगा वीर देर का  
 क गीत जयका होगा । हम कावना को श्रुत कागुनद की विद्या करने  
 जेता कि लव के लव उगाव 'मयाक' हो का कावना भोगो के द्वाका  
 प्रगल्भता कर रहा । जो लव विद्याधो के लव बदे लव, द्वाव,  
 लव कावना कागुनद लव कावना हो बहने के विद्या का द्वाका



योगशास्त्र के पुराने ग्रंथों, जैसे पातंजल-योगशास्त्र और शिव-संहिता आदि के देखने से ज्ञात होता है कि पुराने ग्रंथ इतने बड़े नहीं हैं, जितना बड़ा कि यह ग्रंथ है। इसमें बातें भी बहुत-सी नई-नई हैं, जो उन पुराने ग्रंथों में नहीं मिलती। हमारे देश के लकीर के फकीर लोग यह शंका कर सकते हैं कि इस किताब में तो बहुत-सी नई बातें आ गई हैं और पुरानी बातें भी नए ढंग में कही गई हैं, इसलिये इस शिक्षा का अनुसरण करने से तो हम नबप्राही हो जायेंगे और हमारा सनातनधर्म ही बिगड़ जायगा। ऐसे सनातनियों से हमारा यह निवेदन है कि पातंजलि और शिवजी का जमाना दूसरा था। उस जमाने में ऊँची-भी-ऊँची शिक्षा बहुत संक्षेप में, सूत्र रूप में, दी जाती थी। वही तरीका गुरु और शिष्य दोनों के अनुकूल था। पर अब तो यदि सही-से-सही सिद्धांत को आप संक्षेप में सूत्र रूप से कहेंगे, तो कोई सुनेगा ही नहीं। अब सूत्रकाल नहीं है। अब साईस-काल है। एक ही बात को कई प्रकार से समझाइए, इतना समझाइए कि सुननेवालों के मन में कोई संदेह न रह जाय, तभी आपका समझाना समझाना है। हमी को साहस या विज्ञान कहते हैं। इसमें ग्रंथ बड़े हो ही जाते हैं। इस योगशास्त्र के सिद्धांत तो वही सनातन के हैं, पर कहने का ढंग नया है; इसलिये इसका अनुसरण करने से सनातनधर्म किसी प्रकार नहीं बिगड़ सकता, इस बात से निश्चित रहना चाहिए। दूसरी यह बात कि इसमें पुराने ग्रंथों की अपेक्षा बातें अधिक कही गई हैं, इसको मैं मानता हूँ कि यह बात बहुत ठीक है और इसका भा प्रबल और आवश्यक कारण है।

यह कारण तब समझ में आवेगा, जब पहले आप यह समझ लेंगे कि योग की साधन-प्रणाली क्या है। योगशास्त्र पहले अपने शिष्यों को प्रकृति के मार्ग पर जाता है, फिर उनकी शक्तियों को

जगाता है। एक मनुष्य है, जो राह छोड़कर थोड़ी ही दूर कुराह पर गया है; उसके जिये फिर से राह पर लाने के लिये थोड़ा ही बातें कहनी पड़नी है; परन्तु दूसरा मनुष्य, जो अपनी राह छोड़कर बहुत दूर भटक गया है, उसके लिये जरूर बहुत भटकी हुई बातों की समझावर होकर मार्ग पर लाना होगा। पहले जमाने के मनुष्य प्राकृतिक के मार्ग से बहुत दूर नहीं भटके थे; हमलिये धाँसे ही में बहकर उनको होकर मार्ग पर लाने थे और उनको शानियों की जगाने थे। अब के मनुष्य भटककर प्राकृतिक मार्ग से बहुत दूर दूर गए हैं और मनमानी राह पकड़कर गुमराह हो रहे हैं, हमलिये भटके हुए दूर से मार्गों का होश दिलवाना आवश्यक हो गया, तभी मनुष्य भटके मार्गों को छोड़कर अपनी मार्ग पर आँवेंगे। हमलिये हममें नई-नई भूतों और भ्रमों को दूर करने के लिये नई-नई बातें कहनी पड़ी।

मेरे अनुभव में यह बात आई है, और मेरे साधक मित्रों ने भी हम बात का समर्थन और अनुमोदन किया है कि योगसाध की प्रथम को को केवल एक ही बार, आठ दिन का ही व्यासपूर्वक हो, आवश्यक करने से काम नहीं चलता। एक बार थोड़ा-थोड़ा पढ़कर अध्ययन शुरू कीजिए। अब समाप्त हो जाने पर कुछ दिनों के लिये हमका पढ़ना थोड़ा दीजिए, पर अध्ययन करते जाएँ। कुछ दिनों के बाद फिर व्यास से पढ़िए। हम सबका आपको नई बातें साझा होनी चाहेंगी, जो पहले अध्ययन में आपने व्यास पर नहीं थी। एक तो अध्ययन करने से आपने सबसे नए-नए सब कहेंगे, दूसरे एक ही बार के सब सब बातों को पढ़ने नहीं कर सकना, हमलिये थोड़ा-थोड़ा सब देकर हमें बार बार करने रहना चाहिए, सब बराबर होना है।

योग की शिक्षाओं के बारे में हमारे के बातें बहुत बल रहने हैं। अध्ययन करने, रीढ़-रीढ़, कल-कल के साधनिक विचारों, कष्ट-तप-से होने के कारण हैं। विशेष बातों की वह जाने चलता है, विशेष

अवयव क्रिया करने लगते हैं, शरीर में, जहाँ-जहाँ श्रुतियाँ हैं, उनके दूर करने का प्रयत्न होने लगता है। वेदनाहीन अंगों में वेदना जग उठती है। शरीर में ऐसी भी श्रुतियाँ हैं, जिनकी आपकी इत्तर तक नहीं है; क्योंकि वहाँ के अवयव वेदनाहीन हो गए हैं। पर जब सर्वत्र क्रिया जारी हो जाती है, तो वेदनाओं के जग जाने से श्रुतियाँ प्रकट हो जाती हैं। इसको बहुत-से लोग रोग समझ लेते हैं। हमारे मित्र माधकों में से कोई कहता है कि मेरी छाती में मीठी-मीठी पीड़ा-सी हो रही है, कोई कहता है, घँतदियों में कुछ अव्यवस्थिति-सी मालूम होती है इत्यादि-इत्यादि। इन बातों से डरना न चाहिए; किंतु प्रसन्न होना चाहिए कि क्रिया जारी हो गई और सफाई होने लगी। सबसे पहले फेफड़ों की सफाई होती है। किसी-किसी को कुछ थोड़ी वेदना होती है, जुकाम तो अक्सर लोगों को हो जाता है और खूब कफ़ जाता है। निश्चित रहिए, कोई बीमारी प्रबल वेग से कभी न उभरेगी, किंतु धीरे-धीरे उभड़कर हमेशा के लिये दूर हो जायगी। अतएव इन सब बातों से निर्भय रहना चाहिए और अपने अभ्यास को कभी न छोड़ना चाहिए। जिस मकान की सफाई के लिये आप झाड़ू देने लगेंगे, उसमें गर्द अवश्य उड़ेगी; तो क्या गर्द उड़ने के डर से आप झाड़ू देना छोड़ देंगे? एक बार गर्द उड़कर फिर दिन-भर के लिये तो मकान साफ़ और सुधरा हो जायगा और यदि फिर आप फूँक-करकट न आने देंगे, तो हमेशा के लिये साफ़ रहेगा।

इस किताब में कई जगहों पर तौल दी हुई है; वह अंगरेज़ी तौल है। उसके समझने के लिये हम नीचे सारिका दिए देते हैं—

६० घँटों का	१ ड्राम।
८ ड्राम का	१ औंस।
२० औंस का	१ पाउंड।
२ पाउंड का	१ क्वार्ट।
४ क्वार्ट का	१ गैलन।

हम आशा करने हैं कि हमारे देश-वामी अपने पुराने भूले हुए हम योगमार्ग का अनुसरण करके काम उठावेंगे ।

जिन प्रकार जापान और योरोपियन देशों में शिक्षा-श्रीक्षा दी जाती है, उसी प्रकार हमारे देश बड़े भारगवर्ग में भी दी जाती है । पर हमारी शिक्षा-श्रीक्षा का प्रभाव जिनका योरोपियन देशों में पड़ता है, हमारे देश में उतना प्रभाव नहीं पड़ता । यहाँ तो एक मूल के उपदेश से हमारा देश हमला जान प्रहण करना था कि जिनका अन्य देश पोथियों-की पाथियों से भी नहीं प्रहण कर पाते थे । अब कहा हमारा देश है कि जिन बिनासों को पदवर एक योरोपियन, अमेरिकन व जापानी शिक्षा-निपुण और व्यवसायी हावर बड़े बड़े व्यवसाय करके, अपने-का और अपने देश का सब शक्ति से संवर्धन करना है, उहाँ बिनास का पदवा हम मुझिरी हुँदा करने हैं । बारण क्या है ? हमारे में तो जापट है न जालि । योगशास्त्र हमी जीवत और जालि को प्राप्त करने का मार्ग बतलाना है । अब जापानी जालि जिजिग्यु नामक ब्रह्मविद्या करके पाट और भोड़े होने पर भी बड़े और आत्मन्य कर्मिया पर विजया ही गए, ता क्या हम अपने प्राणायाम से बड़े से प्रवृत्त जालि नहीं प्राप्त कर सकने ? आध्यात्म की जिए और धैर्य शक्ति, अब कुछ ही मावता । बिना परिश्रम और धैर्य से कुछ न होगा । हम आशा करने हैं कि हमारे देश बहुत हम आध्यात्म की करके समस्तान काम उठावेंगे ।

श्री विष्णु जिन अंगुण सहित कात्यायनसंस्कृतः विवेक से आने कात्यायन शास्त्र का एक बड़ा भाग इससे कुछ-अनुप्राण से व्यवहित है, अतः मैं इसे हार्दिक आभवाए देता हूँ ।

शत्रु गुणो कुरीटी )  
 शिवा शकरोटी ।  
 १-२-१९१०

मस्तिष्कनारायणनिर



हरयोग योगशास्त्र की यह शाला है जो कि धार्मिक दरीर—उपमर्  
रहा— बलवी भलाई—बसके स्वाभाव और उम पुन बालों का जो  
दरीर को कमकी साकृति और बसकी दरा के बलने है, बरं  
बाला है । यह धार्मिक के स्वाभाविक दिति से जाने का दरीर बलबाल  
है और पुनार पुनार करता है, जिस पुनार के अनुमसे दारबाल  
योग भी से बने है कि "सकृति के दारां पर बालस दारबाल", बल  
बेबल दलगा ही है कि दरीर के "बालस" बरी दारबाल है, बल  
बरी मो बरंदा सकृति और बलके बल का बिकल्प बलबाल दरा है,  
और बाल दराओं के और बलबाल हीरे के बलबाल के बलबाल  
बली दैला बलके बली बली है, दैला कि बलबाल बलबाल के बल

दृष्ट मनुष्य में मूर्ख बनकर हम बात को विनष्ट ही भुजा दिया है कि मेरी भी कोई जाति वर्णमान है, जिसे प्रकृति कहते हैं। प्रकृति के प्रयोजन टाट और सामाजिक लोगनों की पहुँच ही मोती के ज्ञान तक न हो सरी। यह हम लोगों पर देवता है और हमें सबकों का भोजन सामक्या है। यह प्रकृति की मोक्ष से बहका हुआ नहीं है, जिसे यह उक्त प्रकृति माता के मोक्ष में मटा रहना है, जिसने उमड़ी गर्भदा पुष्टि, पुष्टि, गुण और रचा की है। हटयोग चादि में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और अंग में प्रकृति है। जब गुम्हारे सामने कोई तरीका, मर्याद घपरा नहीं रीति दयादि आये मां उमें हमी कभीही पर बगों कि "प्रकृतिक मार्ग क्या है" और सर्वदा उम्मी को पसंद करो, जो प्रकृति के अनुकूल-तम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान व्याख्य की बहुत-सी नहीं रीतियों, मनगढ़त उपायों, तरीकों, तदर्थों और प्रयासों की ओर आकर्षित हो, जिनसे कि परिचय संसार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने आये और इस पर उन्हें विरवास करने के लिये कहा जाय कि "पृथ्वी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण-शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को खर के तल्लेवाले जूतों को पहनना चाहिए और ऐसी चारपाइयों पर सोना चाहिए, जिनके पायों के निचले भाग में काँच जड़े हों, जिससे प्रकृति (पृथ्वी माता) उस आकर्षण-शक्ति को खींच ले, जिसे उसने हमें दिया है", तब हमारे शिष्यों को अपने मन-ही-मन यह प्रश्न करना चाहिए कि "इस विषय में प्रकृति क्या कहती है?" प्रकृति क्या कहती है, इसको जानने के लिये यह विचारना चाहिए कि क्या प्रकृति के ध्यान में खर के तल्ले बनाना और पहनना तथा काँचवाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिए कि इज्जत मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करते हैं कि नहीं? इतिहास में जो बहुत बड़ा-बड़ा

है, वह ऐसा करता था कि नहीं ? घास के घमन में लेटने से कुछ चीखता मालूम होती है कि नहीं ? और, पृथ्वी माता की छाती पर लेट जाने के लिये स्वाभाविक इच्छा होती है कि उससे नफरत करने को जो चाहता है ? खड़कपन में नंगे पाँव भागने की इच्छा होती है कि नहीं ? और नंगे पाँव, बिना जूते के, टहलने में पोंबों को ताज़गी मिलती है कि नहीं ? रबर के नहलों में आकर्मण पर प्रभाव डालने की क्या विशेषता है ? इत्यादि । हमने हम ध्यान को केवल उदाहरण के लिये दिया है, हम अभिप्राय से नहीं कि रबर के नहलों और फाँच के पायों के गुण-दोष पर चर्चा की जाय । थोड़ा ही ध्यान देने से मनुष्य को मालूम हो जायगा कि प्रकृति के उत्तर यही दिए जाते हैं कि बहुत-सी शक्ति इसी पृथ्वी से हमें मिलती है । पृथ्वी शक्ति से भरी हुई एक शक्ति-भण्डार है, और सर्वदा अपनी शक्ति मनुष्य को देने के लिये तैयार रहती है; न कि वह शक्ति-हीन और शक्ति की भूखी होकर अपने बच्चे—मनुष्य—ही से शक्ति छीनने के लिये उत्तारु है । थोड़े ही दिनों में ये नए पीढ़ी के लोग कहने लगेंगे कि हवा प्राण देने के स्थान में प्राण की मनुष्य-देह से छीनती है ।

निदान ऐसी प्रत्येक बात में सर्वदा उम्मी प्रकृति की कसौटी का प्रयोग करो—और यदि कोई बात प्रकृति के अनुसार न हो, उसे त्याग दो—ग्रापदा तो सारु है । प्रकृति अपने कार्य को दृढ़ जानती है—वह मुह्तारी दिगू है, न कि वैरी ।

योग की अन्य शाखाओं पर बहुत बड़ी-बड़ी और बहुमूल्य किताबें लिखी गई हैं ; परंतु दृढयोग का तो नाम ही देखर योग के क्षेत्रों में समाप्त कर दिया है । हमका बड़ा कारण यह है कि हमारे देश में भीख माँगनेवाली माँच भेली के ऐसे गरोह-बे-गरोह हैं, जो अपने को दृढयोगी कहते हैं, परंतु योग के साथ का उन्हें खोरा-नाश्र भी ज्ञान नहीं है । इन मनुष्यों को कुछ थोड़े प्रयास से अपने शरीर के अन्तर्गत



अवयवों पर कुछ अधिकार प्राप्त हो गया है ( यह बात सब किसी के लिये, जो इस विषय का अभ्यास करें, संभव है ) और उस अधिकार से उन्हें ऐसी सामर्थ्य हो गई है कि अपने शरीर पर वे कुछ असाधारण तमामों कर लेते हैं और उन्हें दूसरों को पैसे के जालच से दिखाया करते हैं । इनकी करतूतों में से कुछ तो बहुत ही आश्चर्यजनक होती हैं । कोई-कोई तो अपनी अंतर्दियों और गले की अधःगामिनी क्रिया को उलटकर ऊर्ध्वगामिनी बना देते हैं, जिससे मलाशय की वस्तुओं को गले की राह मुँह से निकालते हैं । यह बात डॉक्टरों के लिये तो आश्चर्यजनक है ; पर साधारण मनुष्यों के लिये घृणाजनक के सिवा और कुछ नहीं । इन लोगों की और भी ऐसी-ही-ऐसी करतूतें हैं, जिनसे पुरुष अथवा स्त्री की स्वास्थ्य-विषयक अभिलाषाओं को तनिक भी सफलता होने की संभावना नहीं है । ऐसे ही इनके दूसरे भाई एक और होते हैं, जो योगी का नाम धारण किए हैं और जो मजहबी कारणों से महाते तक नहीं, या अपनी भुजा उठाए रहते हैं, जिससे वह सूख जाती है, या इसी प्रकार की और क्रियाएँ करते हैं जिनसे लोग उन्हें महामा समझें और भुक्त में भोजन इत्यादि दें । वे लोग या तो पक्के ठग हैं, या धोखे में पड़े हुए सनकी आदमी ।

इन मनुष्यों पर, जिनका हम ऊपर वर्णन कर आए हैं, सच्चे योगी लोग तरस खाते हैं । सच्चे योगी लोग हठयोग को अपने शास्त्र का एक प्रधान अंग मानते हैं ; क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य को स्वस्थ शरीर मिलता है—जो काम करने के लिये बड़ा अष्टाधौगार है—और जो आत्मा के लिये अनुकूल मंदिर है ।

इस छोटी किताब में हमने सीधे-सादे तरीके से हठयोग के मूल तत्त्वों को दे देने का प्रयत्न किया है कि हम पार्थिव शरीर के लिये योगियों का क्या तरीका है । हमें यह आवश्यक ज्ञान पड़ा कि पहले पश्चिमी शरीर-विज्ञान के अनुसार हम शरीर के सिद्ध-कार्यों को

दरमायें और तब प्रकृति के उपायों और रीतियों का वर्णन करें, जिनका अनुसरण करना मनुष्य के लिये यथासाध्य अत्यंत आवश्यक है। यह वैद्यक की किताब नहीं; इसमें दवा का नाम भी नहीं, और न हममें रोगों के छुड़ाने की का वर्णन है। हाँ, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने के लिये उपाय अवश्य बतलाए गए हैं। इसका उद्देश स्वस्थ मनुष्य है। इसका प्रधान अभिप्राय यही है कि मनुष्यों को स्वाभाविक जीवन में खाने के लिये सहायता पहुँचावे। परंतु हम लोगों का यह भी पूरा विश्वास है कि जिन बातों से स्वस्थ मनुष्य स्वस्थ बना रह सकता है, उन्हीं बातों के द्वारा अस्वस्थ मनुष्य भी स्वस्थ हो सकता है, यदि वह उन बातों का पूरा अनुसरण करे। इठयोग सरचे, स्वाभाविक और असली जीवन का उपदेश करता है; जो कोई इसका अनुसरण करेगा उसी को लाभ पहुँचेगा। यह प्रकृति के अनुद्भूत खजता है, और हम लोगों को, जो कृत्रिम आदतों और जीवन के जाल में फँस गए हैं, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने की प्रेरणा करता है।

यह पुस्तक सरल है—बहुत सरल है—इनकी सरल है कि बहुत-से मनुष्य तो इसे अज्ञान फेड़ देंगे कि इसमें तो कोई नई और अद्भुत बात ही नहीं है। कदाचित् उनकी यह धारा रही हो कि इसमें भिलमंगे योगियों की मशहूर करतूतें होंगी और ऐसे उपाय दिए गए होंगे, जिनसे हम पुस्तक का पढ़नेवाला भी उन करतूतों को कर सकेगा। हम ऐसे मनुष्यों को बतलाए देते हैं कि यह किताब वैसी नहीं है। हम इसमें चौदत्तर आसनों को नहीं बतलाने, और न यही बतलाते हैं कि अंतर्द्वियों को साफ करने के लिये उनमें वस्त्र आसकर फिर कैसे उसे निष्काशते हैं (इसका प्रकृति के नियम से मुद्राबिज्ञा कीजिए), या कैसे दिव्य का धरुटना बंद कर देने अथवा कैसे भीतरी अवयवों से माना प्रकार के स्नेह करते हैं। इस किताब में आप ऐसा कुछ भी न पावेंगे। हम इसमें

यह बतलाते हैं कि किसी उत्कृष्टतम व्यवसाय को कैसे चला में दिया जाता है, कैसे उसमें समुचित कार्य लिया जाता है। और, हम उन अनधिकृत व्यवसायों पर अधिकार जमाना बतलावेंगे, जिन्होंने इतना करके अपना काम करना बंद कर दिया है। हमने इन उपायों का इसलिये हम पुस्तक में वर्णन किया है कि मनुष्य का स्वास्थ्य बना रहे, न कि इस अभिप्राय से कि इनके द्वारा कुपेज रचा जाय।

हमने बीमारियों के विषय में बहुत नहीं वर्णन किया है। हमने आपके सम्मुख स्वस्थ पुरुष और स्त्री का नमूना लक्ष्य कर दिया है, और हम आपसे यही चाहते हैं कि आप देखें, कैसे वे स्वस्थ हुए और कैसे अब भी स्वस्थ बने हुए हैं। तब हम आपका ध्यान हम बात की ओर आकर्षित करते हैं कि वे क्या और कैसे करते हैं। फिर हम यह शिक्षा देते हैं कि आप भी वैसे ही कीजिए, यदि आप भी वैसे ही स्वस्थ बना चाहते हैं। बस इतना ही करने का हमारा प्रयत्न है। परंतु इसी इतने में वे सब बातें आ जाती हैं, जो आपके लिये की जा सकती हैं; शेष आपको स्वयं करना होगा।

अन्य अध्यायों में हम यह बतलावेंगे कि योगी लोग इस शरीर पर इतना ध्यान क्यों देते हैं। हम हठयोग के मूल तत्त्व, इन विस्वास का वर्णन करेंगे कि सर्वजीवन के पीछे सर्वव्यापक महती चेतनता वर्तमान है—उस जीवन तत्त्व के ऊपर पूर्ण विस्वास थादिष्ट कि वह अपना कार्य समुचित रूप से करेगा—वह विस्वास घटन बना रहे कि यदि हम उस महत्त्व पर विस्वास करें, और उसे अपने भीतर काम करने का निर्वाह रूप से अवकाश दें, तो हमारे शरीर का सदा फलदायक रहेगा। पढ़ते बलिष्ठ, तब आपको मालूम हो जायगा कि हम आपको क्या बतलाने का प्रयत्न कर रहे हैं—आप उस संदेश को पा जायेंगे, जो आपको देने के लिये हमें सुपुर्ण हुआ है। इस

उत्तर में, जो इस अध्याय के सिरे पर दिया गया है कि 'हठयोग क्या है?' हम यह कहते हैं कि इस किताब को अंत तक पढ़ जाइए, तब आप कुछ-कुछ समझेंगे कि यह क्या वस्तु है। जिन बातों का उद्देश्य इस किताब में दिया गया है, उनका अभ्यास कीजिए, तब आपको अपने अभीष्ट ज्ञान के पथ पर एक ख़ासा प्रस्थान मिल जायगा।

---

## दूसरा अध्याय

### इस पार्थिव शरीर पर योगी का ध्यान

ऊपरी देखनेवाले को योगशास्त्र के उपदेशों में परस्पर बड़ा विरोध दिखाई देता है । एक ओर तो यह शास्त्र यह मतजाता है कि यह पार्थिव शरीर मग्नर द्रव्यों से बना हुआ है और मनुष्य के उच्च तत्वों के सम्मुख यह कुछ भी नहीं है। और दूसरी ओर अपने शिष्यों को यह शिक्षा देने के लिये बहुत ही प्रयत्न और प्रधानता देता है कि इस पार्थिव शरीर की पुष्टि, शिक्षा, व्यायाम और उन्नति पर श्रुत ध्यान हो । सच तो यह है कि योगशास्त्र की एक संपूर्ण शाखा ही, हठयोग के नाम से, इस पार्थिव शरीर की उन्नति ही के विषय में है, जिसमें इस शरीर की रक्षा और विकास के विषय में विस्तृत रूप से बर्णन किया गया है ।

बाज़-बाज़ परिचामी यात्री जो पूरब में आते और योगियों को शरीर पर अधिक ध्यान देते पाते हैं, तो भट यह अनुमान अपने जी में कर लेते हैं कि “योगशास्त्र केवल शारीरिक शिक्षा का पूर्वीय रूपांतर-मात्र है, जो कदाचित् कुछ और सावधानी से किया जाता है, पर इसमें आध्यात्मिकता कुछ नहीं है ।” वे ऊपर-ही-ऊपर देखकर यह कह सकते हैं, परंतु इसके भीतर-भीतर क्या है, इसकी उन्हें कुछ खबर ही नहीं ।

हमको इस बात की आवश्यकता नहीं कि अपने शिष्यों को योगी के शरीर के ऊपर इतना ध्यान देने का कारण समझावें, न तो इस छोटी किताब के प्रकाशित करने पर, जिसमें अपने योग के शिष्यों

को वैज्ञानिक शैली से शरीर के विकास और पोषण का शिष्टा दी गई है, चमत्कार-प्रार्थना की हमें आवश्यकता है।

आप लोग जानते हैं, योगियों का यह विश्वास है कि असली मनुष्य उसका शरीर नहीं है। वे जानते हैं कि यह अमर 'अहम्' जिसकी प्रत्येक व्यक्ति थोड़ी बहुत जानकारी रखता है, देह नहीं है; इस देह को तो केवल यह धारण करता और इससे काम लेता है। वे जानते हैं कि देह केवल वस्त्राच्छादन की भाँति है, जिसको आत्मा पहन लेता और समय पर उतार देता है। वे जानते हैं कि शरीर किम्वद्विध है; और हमों से वे इसके असली मनुष्य होने के धोखे में नहीं पड़ते। इन सब बातों के जानने हुए, वे यह भी जानते हैं कि यह देह यह औज़ार है, जिसमें और जिसके द्वारा जीव विकास पाता और अपना काम करता है। वे जानते हैं कि विकास के इस दर्जे में मनुष्य के उद्घाटन और उन्नति के लिये मान्य-देह आवश्यक है। वे जानते हैं कि शरीर आत्मा का मंदिर है, और इसलिये उनका यह विश्वास है कि शरीर का ध्यान रखना और उसकी उन्नति करना भी उचित कार्य है, जैसा कि मनुष्य के उच्च तत्त्वों का विकास करना; क्योंकि अस्वस्थ और अपूरे गठित शरीर से मन यथोचित रूप में कार्य नहीं कर सकता, और न तो यह औज़ार अपने मादिक आत्मा के हित के लिये यथेष्ट काम में आ सकता है।

यह स्पष्ट है कि योगी हम लोगों से और आगे जाता है, और यह कह करता है कि देह पूर्णतया मन के अधिकार में बलीभूत रहे—यह औज़ार ऐसा शान दिवा रहे—कि मादिक के हाथों का शरीर पाने की यथेष्ट कार्य संवर्धित कर देने में समर्थ हो।

परंतु योगी जानता है कि जब ऊँचे दर्जे का कार्य-संपादन सभी होगा, जब हम शरीर की उचित व्यवस्था, सुष्टि और विकास किए जाएंगे। उच्च विवर्धित बली शरीर होगा, जो सबसे अल्प सुख और

स्थिति हो जेगा। इन्हीं कारणों से योगी अपने पार्थिव शरीर को इतना ध्यान और पर्वा करता है; इसी से हठयोग के योग-विशारद का प्रधान अंग शारीरिक शिक्षा है।

पश्चिमो शारीरिक शिक्षक शरीर की उत्पत्ति केवल शरीर ही के लिये करता है, और प्रायः उसका यही विश्वास रहता है कि शरीर ही मनुष्य है। पर योगी यह समझकर अपने शरीर का विकास करता है कि शरीर आत्मा का केवल एक औजार-भर है, जो मनुष्य के असली काम के काम आता है; यह औजार पक्का रहेगा तो जीव के विकास में पक्का काम देगा। शारीरिक शिक्षक केवल शरीर की बाहरी ही कमरतों में संतुष्ट रहता और इन्हीं कमरतों को करता है, जिनसे पट्टे पुष्ट हों। योगी अपने धर्म्यासों में मन को भी मिला देता है, और केवल पट्टों ही को पुष्ट न करके शरीर के प्रत्येक अवयव, परमाणु और अंग को विकसित करता है। यह केवल इतना ही नहीं करता, किन्तु शरीर के प्रत्येक अंग पर अपना अधिकार प्राप्त करता है, और शरीर के अनधिकृत और अधिकृत प्रत्येक अंग पर अपना स्वामित्व स्थापित करता है। ये बातें ऐसी हैं, जिनसे व्याख्यान शरीर शिक्षक बिलकुल ही अनभिज्ञ है।

हम अपने शिष्यों को योग-शिक्षा का यह मार्ग बतलाते हैं, जिसमें उनका शारीरिक स्वास्थ्य पूरा-पूरा दुरुस्त हो जाय, और हम आशा करते और निश्चय करते हैं कि जो मनुष्य हमारी शिक्षा को सावधानी से, शानपूर्वक ग्रहण करेगा, उसके समय और परिधम का पूरा-पूरा फल उसे मिल जायगा, वह अपने पूर्ण विद्यमान शरीर का मालिक होगा। वह अपने शरीर से उतना ही संतुष्ट हो जायगा, जितना कोई गुणी मंगोलापाय अपने उत्तम-से-उत्तम उग्र वाद्य यंत्र को पात्र संतुष्ट रहता है, जो उसके हाथ का स्पर्श पाते ही उसके मनोमोहित राग को बजा देने लगता है।

## तीसरा अध्याय

### दैवी कारीगर की कारीगरी

योगशास्त्र यह मितवज्जाना है कि परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को एक शारीरिक कज देता है, जो उसकी आवश्यकताओं के अनु-  
कूल हुआ करता है। और उसे उस कज को ठीक दशा में रखने,  
और यदि मनुष्य को भूल से कज कुछ बिगड़ जाय तो उसके मरम्मत  
करने के साधन भी देता है। योगी लोग इस मानव शरीर को महा-  
चेतन्य शक्ति की कारीगरी समझते हैं। वे इसके संगठन को एक  
चलती हुई कज समझते हैं, जिसकी कल्पना और प्रतिक्रिया प्रायतः  
आतुरी और स्नेह का परिचय देती है। योगी लोग जानते हैं कि  
यह वेद उन्हीं महाचेतन्य के कारण है; वे जानते हैं कि वही चेतन्य  
इस पार्थिव देह में सर्वदा लगातार काम कर रहा है, और जब तक कोई  
व्यक्ति उसके नियम का अनुयायी बना रहता है, तब तक वह स्वस्थ  
और सुरक्षित भी बना रहता है। वे यह भी जानते हैं कि जब मनुष्य  
उस नियम के प्रतिवृत्त चलता है, तो इसका परिणाम राक्षस  
और बीमारी होती है। उनका विश्वास है कि यह बलवत्ता कि उस  
महती चेतनता ने इस शरीर को उग्रावृत्त किया, पर इसे इसकी भाग्य  
के भरोसे छोड़कर भाग्य हट गई, नितांत हास्य के योग्य है। उनका  
यह विश्वास है कि यह महती चेतनता अब भी शरीर की प्रत्येक  
जिवा का निरीक्षण करता है और वह निर्भय होकर विश्वास करने  
के योग्य है, न कि उसमें डर जाय।

यह महती चेतनता, जिसके रूपांतर को हम 'प्रकृति', 'जीवन-



साथ' या ऐसे ही और मामों से पुकारने हैं, सर्वथा चतियों की मरम्मत करने, घावों को पूरा करने और टूटी हड्डियों को जोड़ने के लिये चौकशी रहती है, उन महानों हानिकारक द्रव्यों को हम घंटे में से निकाल फेंकने के लिये तत्पर रहते हैं, जो कि हममें एकत्रित हुआ करते हैं। यह हजारों उपाय करके हम घंटे को चरमो नज्जती दशा में खसा चाहती है। जिसको हम रोग कहते हैं, उसका अधिकांश भाग वस्तुतः प्रकृति की यह सामवायक क्रिया है, जो उन विरैले द्रव्यों को हटाकर निकालने के लिये होती है, जिन्हें हमने अपने शरीर में प्रवेश कराकर स्थान दिया है।

आइए, जरा देखिए, तो इस शरीर का कार्य क्या है। किसी जीव की कल्पना कीजिए कि वह एक ऐसा ठोस खोखला है, जहाँ रहकर अपने अस्तित्व की इस दशा को चरितार्थ कर सके। योगी लोग जानते हैं कि कतिपय रीतियों से विकास पाने के लिये जीव को मांस-निर्मित ठोस (देह) की आवश्यकता होती है। अब देखना चाहिए कि इस देह के ढंग पर जीव को कौन-कौन-सी वस्तुएँ आवश्यक हैं, और तब विचार किया जायगा कि प्रकृति ने सब वस्तुओं को जुटा दिया है कि नहीं।

सबसे प्रथम तो जीव को एक अच्छे विचित्र सुगठित सोचने-विचारने के औजार की जरूरत है, जो एक ऐसा सदर स्थान हो, जहाँ से वह शारीरिक क्रियाओं का संवाहन कर सके। प्रकृति ने उस अद्भुत औजार को मस्तिष्क के रूप में दिया है, जिसकी गूढ़ शक्तियों को इस समय हम बहुत ही थोड़ा-सा जानते हैं। मस्तिष्क के जितने भाग को मनुष्य अपने विकास की इस वर्तमान दशा में काम में लाता है, वह भाग कुछ मस्तिष्क का एक बहुत ही छोटा हिस्सा-मात्र है। अप्रयुक्त भाग मानव-समुदाय के और अधिक विकास की राह जोड़ रहा है।

अब जीव को इंद्रियों की आवश्यकता है, जिनके द्वारा वह बाह्य पदार्थों के भिन्न-भिन्न चिह्नों को धारण और अंकित कर सके। प्रकृति फिर सहायता के लिये पहुँचती है, और आँख, कान, नाक और रसना तथा स्पर्श-इंद्रियों को मुहैया कर देती है। प्रकृति ने और इंद्रियों को पीछे रख लिया है; उन्हें वह सब देगी, जब मानव-समुदाय को उनकी आवश्यकता होगी।

तब मस्तिष्क और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों के बीच में संदेशों और शासनों के आवागमन के साधन होने चाहिए। प्रकृति ने आश्चर्य-जनक रीति से सारे शरीर में तंतुओं का जाल फैला दिया है। मस्तिष्क इन्हीं तंतुओं के तार द्वारा शरीर के सब अंगों-प्रत्यंगों में अपनी आज्ञाओं को भेजता है; प्रत्येक शारीरिक परमाणु और इंद्रिय में आज्ञा भेजकर उसके पावन के लिये इंतजार करता है। यैमे ही शरीर के सब अंगों से इन्हीं तारों द्वारा, उपरिप्लुत भय, सहायता की भाँव और प्रार्थना की पुकार के संदेशों को प्राप्त करता है।

फिर शरीर को ऐसे साधन चाहिए, जिससे वह संसार में भ्रमण कर सके। यह स्थावर दशा की प्रकृतियों के पार उतर गया है, और अब इसे भ्रमण करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इसे बाहरी वस्तुओं के पास पहुँचना और उन्हें अपने काम में खाना है। इसलिये प्रकृति ने इसे हाथ-पाँव दिए हैं, और उन पाँव और हाथों को संयोजित करने के लिये मांसपेशियाँ (पट्टे) और नसें दी हैं।

शरीर को एक ऐसे ढाँचे की भी जरूरत है, जिससे वह हर और बड़े आकार में बना रहे, घटों को सहन कर सके, और प्राकृतिक मौसमिक रहकर झुंड-मुंड न हो जाय; इसे बल और दृढ़ता रहे; ऊपर लँभका रहे; इसलिये प्रकृति ने इसे हड्डियों का ढाँचा दिया है; यह ढाँचा कैसा अद्भुत है! आपके अध्ययन करने के योग्य है।

अपनी जीव की दृष्टि शरीरधारी जीवों के साथ अपने मंगल कार्यों के बढ़ने-मुनने का साधन साधिए। प्रकृति ने पानी की अथवा की हड्डियों के दृष्टि दृष्टि अथवा को भी दूर कर दिया है।

शरीर को एक ऐसे साधन की आवश्यकता है, जिसके द्वारा वह अपने प्रत्येक अंगों और अंगों में उनके मंगल की माननीय भेद सके, जिससे शरीर की मरम्मत हो, अस्थियों की पूर्ति हो। और और सब भागों में उन पहुँचना रहे। फिर ऐसे ही एक और साधन की आवश्यकता है, जिससे कि शरीर के अंगों की रक्षित, बूढ़े और मरम्मत में भेद दिए जायें और वहाँ जलाकर शरीर के बाहर फेंक दिए जायें। इसके लिये प्रकृति हमें जीवनदाता रुधिर देती है, और रुधिर के प्रवाह के लिये नलिकाएँ और धमनियों देती है, जिनके द्वारा रुधिर आगे और पीछे बहता हुआ अपना कार्य करता है। और प्रकृति ने हमें फेंकने दिए हैं, जो रुधिर में आविस्तृत भरा करते हैं, और रक्षित तथा बूढ़े और मरम्मत को जलाया करते हैं।

शरीर को बाहरी सामग्रियों की जरूरत पड़ती है, जिनसे इसके अंगों की वृद्धि और मरम्मत हुआ करे। प्रकृति ने ऐसे-ऐसे साधन दिए हैं, जिनसे भोजन किया जाता है, उसे पचाया जाता है, उसमें से पोषण करनेवाला रस निकाला जाता है, उस रस को ऐसे रूप में कसप जाता है, जिसमें शरीर के अवयव उसे अपना सकें और अपने में मिला लें। प्रकृति ने ऐसे भी साधन दिए हैं, जिनसे निस्सार मल बाहर निकालकर फेंक दिया जाता है।

अंत में शरीर को ऐसा साधन प्रकृति द्वारा मिला हुआ है कि वह अपने ही रूप के अन्य शरीरों को उत्पन्न कर सकता है और दूसरे जीवों के लिये देह तैयार कर देता है।

मानव-शरीर की आश्चर्यजनक कारीगरी और क्रियाओं का अध्ययन

बगना बड़ा ही लाभदायक है। इसके अध्ययन से प्रकृति की महती चेतनता की सत्यता का अस्मट्य अनुभव हो जाता है। मनुष्य को महान् जीवनतत्त्व कायंनिरत दिग्दर्शन देने लगता है। वह देखने लगता है कि यह ग्रंथ संयोग अथवा जड़ घटना नहीं है; किन्तु एक महत्प्रकृति-शास्त्रिणी चेतनता का काम है।

तब वह इस चेतनता में विश्वास करना सीखता है कि जो चैतन्य शक्ति हमें इस शारीरिक सत्ता में सार्ह है, वही हमें जीवन में संभाल ले जायगी। जिस शक्ति ने उस समय हमारी प्रपञ्चद्वारी की, उसी की सुबद्वारा में हम अग्र भी हैं और सर्वदा रहेंगे भी।

जितना ही हम उस महान् जीवनतत्त्व के प्रवेश के लिये खुले हुए रहेंगे, उतना ही लाभ उठावेंगे। यदि हम उस तत्त्व से भयभीत होंगे अथवा उसका विरवास न करेंगे, तो उसके लिये हम अपना दरवाजा बंद करते हैं, और हमें अक्षय दुःख भोगना पड़ेगा।

## चौथा अध्याय

### हमारा मित्र जीयनमल

मनुष्य को लोग बड़ लज्जगी करते हैं कि बीमारी को एक बीज—  
जगती बीज—स्वास्थ्य का वैरी—नाश करने दे । वह बात नहीं  
सही । स्वास्थ्य मनुष्य की स्वाभाविक दशा है, और स्वास्थ्य का  
अभाव ही बीमारी है । यदि कोई मनुष्य मनुष्य के नियमों का अनु-  
सरण करे तो वह बीमार हो ही नहीं सकता । जब किसी नियम का  
उल्लंघन होता है, तब अनापराध दण्ड लगाने हो जानी है और  
किसी कष्ट का कष्ट हो जाने है, इसी कष्टों को हम बीमारी मान  
ते हैं । किसी हम बीमारी कहते हैं, वह केवल मनुष्य के इस व्यव-  
साय पर है, किने वह अनापराध दण्ड के कारण और अनापराध

घर में भेदिया—भुर्गी के बच्चों के दर्श में बिछी—गल्ले के अंवार में चूना—के विषय में कड़ा करने हैं, और उसके साथ बीमे ही भिड़ने का यत्न करने हैं जैसे उक्त जंतुओं के साथ । हम लोग उसे मार डाला, या नहीं तो डराकर भगा दिया, चाहते हैं ।

प्रकृति कोई छोटी या अविश्वास-योग्य वस्तु नहीं है । इस शरीर में सुषुप्तस्थित नियमों के अनुसार जीवन विकारा करता है, और धीरे-धीरे उदय होता है, अपनी पूरी अवधि पर पहुँचता है, और तब शनैः-शनैः लीन होने लगता है; अंत में वह समय आ जाता है कि वह शरीर पुराने परिधान-वस्त्र की भाँति अस्त्रग पर दिया जाता है, और जीव अपने और अधिक विचार की यात्रा में निकल पड़ा हो जाता है । प्रकृति की यह इच्छा कदापि न थी कि मनुष्य पूर्ण वृद्धावस्था के पहले अपने शरीर को छोड़े, और योगी लोग जानते हैं कि यदि प्रकृति के मार्ग पर बचपन ही से चला जाय तो नवयुवक या अपेक्ष मनुष्य की मृत्यु भी ही विरल हो जाय, जैसी कि दुर्घटना-जनित मृत्युएँ विरल हुआ करती हैं ।

प्रत्येक पार्थिव शरीर में एक ऐसा जीवनबल रहता है, जो अपनी शक्ति-भर हमारे लिये जगानार प्रयत्न किया करता है, यद्यपि हम लोग अपनी जापरवाही से स्वाभाविक जीवन के मुख्य-मुख्य नियमों का भी उल्लंघन करने रहते हैं । जिसको हम बीमारी कहते हैं, उसका एक बड़ा भाग इस जीवन बल का स्वाभिव्यक्ति प्रयत्न है—और चंगा करनेवाला वस्तु है । अविज्ञ अवयवों की ओर से वह अधोगति मही, बिनु उदयगति है । यह प्रयत्न असाधारण और अस्वाभाविक होता है; क्योंकि असाधारण और अस्वाभाविक दशा पहले ही उत्पन्न कर दी जा चुकी है, और असाधारण दशा को खाने के लिये उस जीवनबल को अपने पारे चंगा करनेवाले प्रयत्न को जगाना पड़ता है ।

जीवनबल का पहला उद्देश आत्म-रक्षा है । जहाँ-जहाँ जीवन

## हठयोग

है, वहाँ-वहाँ यह उद्देश्य प्रकट दिखाई देता है। इसी के प्रभाव से नर और मादा एकत्र लिचते हैं, गर्भस्थित जीव और बच्चे को पोषण मिलता है, माता संतान-जनन की दुस्सह पीड़ा सहती है, कठिन-मे-कठिन दुरवस्था में भी माता पिता अपने बच्चों की रक्षा करते हैं क्यों ? क्योंकि इन सब बातों का अर्थ जातिगत रक्षा की प्रवृत्ति है व्यक्तिगत रक्षा की प्रवृत्ति भी ऐसी ही बलवती होती है। “मनुष्य अपनी जिन्दगी के लिये सब कुछ अर्पण कर सकता है”, ऐसा एक लेखक ने लिखा है। यद्यपि यह कथन बड़े आदमियों पर पूरा नहीं चल सकता (स्मरण करो—प्राण जाय बर बचन न जाहीं) तो भी आत्म-रक्षा की दृढ़ प्रवृत्ति के उदाहरण देने के लिये यथेष्ट “सच” है। यह प्रवृत्ति बुद्धि की प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु, बहुत नीचे से, सत्ता की नींव ही से इसकी भी जड़ है। यह प्रवृत्ति बुद्धि को भी दबाकर अपने आप ऊपर हो जाती है। जब कभी मनुष्य अपनी बुद्धि से दृढ़ संकल्प कर लेता है कि इस जगह की जगह पर मैं अटक रहा रहूँगा, तो भी यह प्रवृत्ति उसकी टोंगों को भगा ले जाती है। इसी प्रवृत्ति के बलवर्ती होकर हमें दृष्ट जहाज का मनुष्य सम्मता के बड़े-बड़े नियमों को तोड़ देता है और अपने ही साथी को मारकर उसका छह पी लेता है; भयंकर काल-कोठरी (Black Hole) के मनुष्यों को इसी प्रवृत्ति ने पशु बना दिया था। यह प्रवृत्ति अपने ही और भिन्न दशाओं में अपनी प्रभुता दिखाना चाहती है। यह सर्वज्ञ जीवन—अधिक जीवन, स्वास्थ—अधिक स्वास्थ्य के प्रयत्न में लगी रहती है। यही प्रवृत्ति हमें—स्वास्थ्य बनाने के अभिप्राय से—बहुधा बेमार कर देती है; यही प्रवृत्ति उस विनैस अस्मिन् पदार्थ का हमारे भीतर से निष्काशन के लिये, जिसे हमने अपनी आपरगाही और मूर्खता में भोतर डाल रखा है, हमें बीमार कर देती है।

श्री युरह की गुरे की आंतरिक प्रभुता गुरे के गिरे को सर्वज्ञ

उत्तर की ओर खम्बा जाहमी है, वैसे ही जीवनवत्सल का आभारपत्र  
 साथ सर्वदा हमें स्वास्थ के पथ पर चलने की प्रेरणा करता है ।  
 हम उस प्रेरणा की उपयोग करें, उस पर ध्यान न दें, यह हमारी धान  
 है, पर प्रेरणा होनी आवश्यक है । वही प्रवृत्ति हमारे भीतर भी है जो  
 प्रवृत्ति बीज में रहकर टमके खंडुर को जमाती है और गूरु की धूप की  
 आत्मता से उस बीज से मटरगुने अधिक भारी बीज को टटा देती  
 है । वही प्रवृत्ति खंडुर का ऊपर से छाता है और जब वो नीचे खें  
 जाती है । ये दोनों गतिरों यद्यपि एक दूसरी से विपरीत होर जाती  
 हैं, पर ये दोनों गतिरों टांक हैं । यदि हम धायक होने हैं तो वही  
 जीवनवत्सल धाय को खेंगा करने लगता है, हमसे वह आभारपत्रक  
 पड़ता और नियुक्ता दिखता है । अब बर्षा । म धायती बिनी हूँ। को  
 मोह देने हैं तो हम या होकर ग्राहक केवल हमना ही करने हैं कि  
 हरे हुए सबों को मिलाकर उन्हें केसे ही रस दोदन है, और वही वत्सल  
 जीवनवत्सल हम हरे हुए सबों को जोड़ देता है । अगर हम गिर पड़े  
 और हमारे पड़े या कोई चीज कर लाये तो हम केवल वही करने है  
 कि बंदू बानी या ध्यान करने हैं, और बाकी सब काम वही  
 जीवनवत्सल करता है, और वह वही ही से मरम्मत की सामग्री  
 केवर हम को पूरा कर देता है ।

‘ सभी हीनज लोग आते हैं, और उनका विद्या उन्हें समझाने  
 है कि यदि मनुष्य की शारीरिक दशा अच्छा रहे तो उसके शरीर-  
 मज्जा के, उसके आत्मिक अवस्था के विचार को दोहरा, दोहरा  
 सोचो से पूरा देगा । परन्तु जब शारीरिक दशा बहुत ही दूब हो  
 जायगी तो रोग से दूरता जाना बहुत बलिय हो जायगा, क्योंकि  
 देगी दशा से जीवनवत्सल को बहुत दूब हो जायगा और  
 वत्सल बहुत ही विपरीत अवस्था से काम करना पड़ेगा । दूर-  
 शिवाय वत्सल कि वह हमारे जिंदे केवल दूर-दूर केवल



अवस्था में पूरा कार्य करता है। यदि जीवनबल अपनी दृष्टि के अनुसार मयकुप्य तुम्हारे लिये नहीं कर पाता तो भी वह निराश होकर प्रयत्न नहीं छोड़ता; किंतु अवस्था के अनुकूल होकर अपनी शक्ति-भा काम करने में कुछ उठा नहीं रखता। उसको पूरा अधःपाश और मार्ग दीजिए, वह आपको पूरी स्वस्थ दशा में रखेगा; अपनी अस्वाभाविक और अविचार की रहन-बहन से उसे बांध रखने तो भी वह तुम्हें सँभालने ही का यत्न करता रहेगा और अंत तक अपनी शक्ति-भा तुम्हारी सेवा करता रहेगा, चाहे तुम कितनी ही कृतघ्नता और मूर्खता करते रहोगे, पर वह अंत तक तुम्हारे हित के लिये लड़ता रहेगा। जीवन के प्रत्येक रूपांतर में अवस्था के अनुकूल होने की प्रवृत्ति सर्वत्र दिखलाई देती है। यदि कोई बीज किसी चट्टान की दरा में पड़ जाता है तो जब वह उगने लगता है तो चट्टान के रूप के अनुकूल फूट-पूँट जाता है, या यदि वह पूरा बलवान् हुआ तो चट्टान को भी फाड़ देता है और स्वयं अपने स्वाभाविक रूप में ऊपर निकलता है। वैसे ही मनुष्य की दशा में भी, जब मनुष्य सब प्रकार की आघोहवा और अवस्था में जीने का प्रबंध करता है, तब वह जीवनबल भी अपने को अवस्था के अनुकूल बना लेता है, और जहाँ यह चट्टान को न तोड़ सका, वहाँ भी धँकुर को टेढ़ा-मेढ़ा बनाकर जमा ही दिया और उस पौदे को जीता-जागता और हड़ रक्खा। जब तक स्वास्थ्य की उचित रीतियों का पालन होता रहता है तब तक कोई शरीरावयव क्षयावस्था को नहीं पहुँचता। स्वास्थ्य स्वाभाविक दशा का जीवन है, और अस्वस्थता अस्वाभाविक दशा की जिदगी है। जिन अवस्थाओं ने मनुष्य को इस स्वस्थ और बलवान् "जीवन" तक पहुँचाया, वे अवयव इसे स्वस्थ और बलवान् ही रखेंगे। यदि आप अच्छा अवसर देंगे तो वह जीवनबल उत्तम-से-उत्तम कार्य कर लियेगा; परंतु यदि आप अधूरा अवसर देंगे तो वह जी-

कार्य करने के योग्य होगा और थोड़ी-बहुत रम्यावस्था उसका प्रतिफल होगी। हम लोग ऐसी सम्यक्ता में जी रहे हैं, जिसने कुछ-न-कुछ जीवन का स्वाभाविक तरीका हमारे ऊपर बलान् बाल ही दिया है। हम लोग न स्वाभाविक रीति से भोजन करते, न पानी पीते, न सोते, न सौंन् लेते और न स्वाभाविक रीति से वस्त्र ही पहनते हैं। हम लोगों ने वह-वह काम कर डाले हैं जो हमें नहीं करने चाहिए थे, और उन-उन कामों को नहीं किया, जिन्हें हमें करना चाहिए था, और हमलिये हममें 'स्वास्थ्य' नहीं है।

हमने जीवनबल की उपकारिता का खर्चन कर दिया; इसका कारण यह है कि जिन लोगों ने हम पर विचार नहीं किया है वे लोग हम पर प्रायः कुछ भी ध्यान नहीं देते। यह योगशास्त्र के हठयोग का एक अंग है, और योगी लोग अपने जीवन में इस पर बहुत बड़ा ध्यान रखते हैं। वे जानते हैं कि जीवनबल बड़ा भारी मित्र और प्रबल सहायक है, और वे करने भीतर इसे स्वच्छंद प्रवाहित होने के लिये हमें पूरा अवकाश देते हैं, और हमकी क्रियाओं में वे अपमानार्थ बहुत ही कम बाधा पहुँचाते हैं। वे जानते हैं कि "हमारा जीवनबल हमारी भलाई और स्वास्थ्य के लिये निरंतर जगा रहता है", और वे इसका अत्यंत विश्वास करते हैं।

हठयोग के साधनों की अधिकांश सकलता उन्हीं तरीकों पर अवलंबित है जिन तरीकों से जीवनबल स्वच्छंद और बिना बाधा के कार्य करता रहे। हठयोग के तरीके और अभ्यास इसी अभिप्राय पर उद्दिष्ट हैं। हठयोगी का यही उद्देश रहता है कि जीवनबल के मार्ग को रुकावटों से साफ रखने और उसके रूप के लिये साफ चिह्न पथ सुझा रखने। उसके उपदेशों का पाठन कीजिए, आपका मखा हो जाएगा।

## पाँचवाँ अध्याय

### शरीर की रसायनशास्त्र

इस छोटी किताब का यह उद्देश नहीं है कि यह शरीर-विद्या की पाठ्य पुस्तक हो; परंतु जब हम देखते हैं कि बहुत-से लोग ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न शारीरिक अवयवों की प्रकृति, उनके कार्य और उनके लाभों से कुछ भी जानकारी नहीं रखते; इसलिये शरीर के उन मुख्य-मुख्य अवयवों का वर्णन करना, जो भोजन के पचाने और उसका रस लेने तथा शरीर को पोषण करने का काम करते हैं, मैं बराबरी समझता हूँ। वे ही अवयव शरीर की रासायनिक क्रियाओं को करते हैं।

पचानेवाली कला के प्रथम अंग दाँतों पर पहले विचार करना चाहिए। प्रकृति ने हमें दाँत दिए हैं, जिनमें हम अपने भोजन को काटते हैं और छूट करीक पोषण खाते हैं। इस क्रिया में भोजन इतना बारीक हो जाता है कि वह मुँह की छार और आमाशय के पचानेवाले द्रव रसायनों के साथ छुट जाने के योग्य बन जाता है। इसके परचाय वह द्रव रूप में परिवर्तित होता है, जिसमें पोषण करनेवाले रस को सीधे-से शरीर चरना के और चरने में मिश्रित है। यह उर्मा पुरानी कहानी को बार-बार कहना और फिर दोहरा करना है; परंतु हमारे पाठकों में से किने ऐसे हैं जो ऐसा कार्य करते हैं, जिसमें मायूस होता है कि वे नहीं जानते कि दाँत किस अभिप्राय से दिए गए हैं। वे अपने भोजन को आंशिक में विभक्त करते हैं, मानो दाँत केवल दिमाग के दिव्य उन्हें दिए गए थे, और वे इस प्रकार विचार करने हैं मानो कि दाँतों की भाँति अपने भोजन को

प्रकृति द्वारा पथरी दी गई है कि वे भी उन्हीं तरह इस पथरी द्वारा अपने निगले हुए खाने को पौम डालें। याद रखो; मित्रो, मुद्गारे दंत मुद्गें मतलब से दिए गए थे और यह विचार कर लो कि यदि प्रकृति की मंशा भोजन को निगलने ही की होती, तो वह दंतों के स्थान से पथरी दिए होती। आगे चलकर दंतों के समुचित प्रयोग के विषय में हम बहुत कुछ कहेंगे, क्योंकि दृष्टयोग से हमका बहुत आवश्यक संबंध है, जैसा कि थोड़ी देर में आपको विदित होगा।

यद्य आगे छार खवण करनेवाले मांस-मंडों पर विचार करना चाहिए। ये मांस-मंड दरया में पड़े हैं, जिनमें से चार तो यीहों और भीम के भीचे हैं, और दो गाछों में जानों के सामने दोनों बाख में हैं। इनका मुख्य कार्य, जो जाना गया है, यह है कि सार को बनावे और उसे खवण करें। जब आवश्यकता पड़ती है तब पही छार मुँह के भीतर की अनेक छोटी-छोटी नालियों से बहने लगती है और उस भोजन में मिलती जाती है जो दंतों से कुचजा या ममला बाहर बारीक किया जा रहा है। भोजन जितना ही दंतों से कुचजा या पीसा जायगा छार बनना ही अच्छी तरह से हमके मध्यस्थ में पहुँचकर मिल जायगा और उतना ही अधिक कार्य करेंगा। छार भोजन को गीला भी कर देता है जिसमें वह बहुत सामानी ॥ घोंटा जा सके, यह कार्य उसका, उसके अन्य प्रधान कार्यों का बेशक अनुपाती है। हमका मध्यस्थान कार्य, जैसा कि परिकर्मा विज्ञान द्वारा सिद्धाया जाता है, रसायनिक क्रिया करना है, जिस क्रिया से खेहदार भावा हुआ पदार्थ दहर में परिवर्तित हो जाता है, और हम प्रकार के पाचन के क्रिया-कलाप में सहभागी क्रिया हो जाती है।

यहाँ दहर-बार की बरी दूर एक और पदा है। चार मर लोग

## हठयोग

इस तार के विषय में जानते हैं; पर थाप लोगों में कितने ऐसे मनुष्य हैं जो इस प्रकार भोजन करते हों, जिससे प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुकूल तार से काम लेने का अवसर मिलता हो। आप तो स्वाने को मुँह में जरा इधर उधर घुमाकर निगल जाते हैं, और प्रकृति की उन तरकीबों ही को विकल कर देते हैं, जिन्हें लिये उसने इतनी कार्रवाइयाँ की थीं और तिनको संपादित करने के लिये उसने ऐसी-ऐसी भारीक और विविध कर्तों को बनाया था। परंतु प्रकृति भी अपनी तरकीबों की अवहेलना, आपराधाधी और निरादर के कारण तुम पर भी यह दोषने का पबंध कर लेती है। प्रकृति बहुत स्मरण रखती है और तुमने उस बात को अदाय नुभयायी है।

इसमें यहाँ पर उस जिद्धा को न भूल जाना चाहिये, जिस बेचारी से मोक्षपुत्र बचन बोलने, चर्चा बलाप और विगुणता करने, मृद-बोझने, शपथ डवाने और निद्रा करने के मांस काम किए जाते हैं। इस जिद्धा को शरीर के योग्य करनेवाले विवा-व्यवाह में एक मुख्य काम करना पड़ता है। मोक्षन करने समय यह अनेक प्रकार की गति कर-करके मोक्षन को डकड़नी, पकड़नी और फेरना रखनी है और इसी प्रकार भोजन के खंडने में भी यह अपनी गति में लक्ष्य बना पहुँचानी है। इसके अनिवार्य यह भाव ही दृष्टि है और जो भोजन भीतर के में प्रवेश किया जाइता है उस पर अना पुन का विचार करनी है।

आप लोगों में हँसते, काह मान्य करनेवाले लोग स्वर्ग और जिद्धा के रसाधारित रूपोंमात्रों को मुखा दिया है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि वे केवल कागची पूरी भोग न कर सकें। यदि आप केवल उनका आश्रय करने करें और लक्ष्यकारी के साथ मोक्षन के रसाधारित दृष्टिों को प्रत्यक्ष करें तो आप उन्हें बल पाने

का प्रतिपालन करने हुए पावेंगे, और वे फिर आपकी पूरी-पूरी सेवा करने लग जायेंगे। वे बड़े अच्छे मित्र और सेवक हैं उन पर विधाम, भरोसा और उत्तरदायित्व रखने से वे अच्छा-से-अच्छा काम कर देते हैं।

जब भोजन दूध कुछज पीसकर छार से परिपूर्ण कर दिया जाता है तब यह गले से होकर आमाशय में जाता है। गले का निचला भाग भी एक विशेष प्रकार की गति करता है जिसमें भोजन के घरा नीचे खसे जाने हैं और यह मिथा भी निगलने की क्रिया का एक चर है। भोजन के छोड़दार भाग के शहर में परिवर्तन होने की क्रिया जो छार से मुँह में प्रारम्भ हुई या यह भोजन के गले में होकर जाते हुए भी जारी रहती है; परन्तु जब भोजन आमाशय में पहुँच जाता है तब एकदम बंद हो जाती है। विचारपूर्वक भोजन करने के विषय को अध्ययन करने समय हम बाल पर दूध ध्यान देना चाहिए कि यदि भोजन मुँह में जकड़ा उछट-पुछटकर निगल लिया जायगा तो उसमें छार का समर बहुत ही कम पहुँचा रहेगा और प्रकृति के प्राणी काम करने के लिये अयोग्य दशा में रहेगा।

आमाशय जारणारी की शक्ति का एक धैर्य है। हममें कोई संर तक और बड़ी-बड़ी अधिक भी शक्त हो सकती है। भोजन गले में होता हुआ आमाशय के ऊपरी काम भाग में हृदय के ठीक नीचे प्रवेश करता है। यहाँ की विपरीतों के हो जाने पर भोजन आमाशय के निचले दक्षिण भाग से पतलों चोंतदियों में एक ऐसे द्वार से प्रवेश करता है, जो ऐसा अदृश्य बना हुआ है कि आमाशय से चोले तो हममें आसानी से पहुँच सकती हैं, परन्तु हम पतलों चोंतदियों से ऊपर आमाशय में उनका पुनः चढ़ जाना कभी नहीं हो सकता। यह द्वार अपने कर्म पर सदा बंद रहता है और कभी खोला नहीं देता।

आमाशय एक बड़ा रसायनशाला है, जहाँ भोजन के साथ

रासायनिक क्रियाएँ होती हैं, जो भोजन को इस योग्य बना देती हैं कि उसका रस रुधिर-रूप में हो सके, जो रुधिर सारे शरीर में प्रवाहित हुआ करता है और शरीर के सब अंगों और अवयवों को बनाता, भरमस्त करता, बढ़ करता और बढ़ाता रहता है।

आमाशय का भीतरी भाग एक जलजलसी झिल्ली से आवृत्त रहता है; इस झिल्ली में अनगिनत छोटे-छोटे मुलायम छार-से निकले रहते हैं जिन सबका मूँह आमाशय में खुला रहता है, और इन छारों के सिद्ध बहुत ही बारीक-बारीक रुधिरवाहिनी नलियों का जाल सा फैला रहता है, जिन नलियों की दीवारें अत्यंत पतली होती हैं। इसी से वह आश्चर्यकारी द्रव, जिसे आमाशय द्रव कहते हैं, तब करता है। यह आमाशय द्रव एक बहुत बलवान् चर्क है जो भोजन के नाइट्रोजनिक भाग के गलाने का काम करता है। यह उस शहर पर भी क्रिया करता है जो खेईदार पदार्थों को छार से मिजने से बनता है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह चर्क तीखा होता है और इसमें वह रासायनिक पदार्थ होता है, जिसे पेप्सिन कहते हैं; यही पेप्सिन बड़ा कार्य करता है, और भोजन के पचाने में प्रधान काम इसी का होता है।

साधारण स्वाभाविक मनुष्य के स्वस्थ शरीर में आमाशय कृतीय-करीब एक गैलन आमाशय द्रव निरर्थक रहता है, और इसे घास के पचाने के काम में आता है। जब सब आमाशय में पहुँचता है तो ये छोटे मुलायम छार, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, काफ़ी मित्रदार में आमाशय द्रव बढ़ा देते हैं, जो घास में द्रव मिल जाता है। तब आमाशय एक प्रकार की मंथन क्रिया करने लगता है, जिसमें खाया हुआ सब अंगुली की भौंनि इधर-उधर घूमा करता है, इधर से उधर फेंका जाता है, साना जाता है, मचा जाता है और मूँचा जाता है, जिसमें वह आमाशय द्रव इस अंगुली के त्रें-त्रें में

तरह से मिल जाता है। प्रकृति मानस इस आमाशय के संघालन में कुछ ऐसा आश्चर्यजनक काम करता है कि इस नेत्र दो हुई कल की भाँति आमाशय को चलाता रहता है।

यदि आमाशय को अच्छी तरह से तैयार किया हुआ, भली भाँति दोनों से पीसा हुआ, और काफी लीर से लार मिलाया हुआ भोजन मिलता है तो आमाशय पूरी कल बहुत अच्छा काम कर दिखलाती है। परंतु, यदि भोजन आमाशय के योग्य तैयार नहीं किया गया रहता है, जैसा कि अक्सर हुआ करता है, और यदि यह अधूरा कुचला रहता है, अथवा जलदी-जलदी निगला हुआ रहता है, या यदि आमाशय नाना प्रकार के विविध द्रव्यों से दूँस-दूँसकर भरा हुआ रहता है, सभी बड़ी दिक्कत पड़ जाती है। ऐसी दशा में स्वाभाविक पाचन-क्रिया के होने के स्थान में आमाशय अपना कुछ भी काम नहीं कर सकती, जिसमें सड़न शुरू हो जाती है, और आमाशय सड़ते-गलने पदार्थ का वर्तन—या यों कहिए कि सड़े पॉस का वर्तन—बन जाता है। यदि अनुप्य एक बार देख पाते कि उनका आमाशय कैसे सड़े पदार्थ का वर्तन बन गया है तो वे ठीक तरह से खाना खाने की बात से जागरूक हो न करते और उसे ध्यान देकर मुनते।

खाने की अस्वाभाविक आदत से उत्पन्न यह सड़न अक्सर जीर्ण या पुरानी हो जाती है, और ऐसी दशाओं में परिणत हो जाती है, जिसे अपच या बदहजमी कहते हैं या ऐसी ही कोई दूसरी बीमारी खड़ी हो जाती है। यह सड़न बनी ही रहती है कि दूसरा खाना पहुँच जाता है और पहली सड़न इस खाने में भी सड़न पैदा कर देती है। इस तरह से आमाशय पॉस के प्रमीर का नित्य ही वर्तन बना रहता है। इससे आमाशय की स्वाभाविक क्रिया निर्वह पड़ती जाती है, और हमको सतह ससखसी, मुलायम, पतली और निर्वह



हो जाती है। मुलायम स्त्रा मय मुँहयंद हो जाते हैं, और सारा पाचक यंत्र नियंत्रित और टूटा-फूटा हो जाता है। ऐसी दशा में वही अधपच्यी लुगदी पतली चैंतड़ियों में जाती है; सड़न के कारण इसमें एक प्रकार का तेजाव उत्पन्न हो जाता है, और परिणाम यह होता है कि सारा शरीर क्रमशः बिपाक और अपुष्ट हो जाता है।

भोजन की लुगदी आमाशय यंत्र से भरपूर होकर, और ज्वर ज्वरों तरह से आमाशय द्वारा मयो और गूँधी जाकर आमाशय के निचले दाहने द्वार से पतली चैंतड़ी में जाती है।

यह पतली चैंतड़ी नली की भाँति की एक नहर है, जिसकी गँडुरियों ऐसी कारीगरी के साथ एक दूसरी पर पड़ी रहती हैं कि बहुत ही थोड़ी जगह खोरे रहती हैं, यद्यपि लंबाई में यह चैंतड़ी २० से ३० फीट तक लंबी होती है। इस चैंतड़ी की भीतरी दीवार मज्जमल के भाँति के पदार्थ से मढ़ी रहती है, और लंबाई में बहुत दूर तक उसमें आधी-आधी सिकुड़ने पड़ी रहती हैं, जो सिकुड़ने आँख की पलकों की भाँति नीचे-ऊपर गति किया करती हैं, और चैंतड़ी के अर्द्ध में आगे-पीछे हिलोनें मारा करती हैं, जिससे भोजन की लुगदी की गति रुका करती है और साथ तथा रस के खिंचाव के लिये अधिक सहज मिला करती है। इसके मदन की मज्जमली स्रव अनगिनत छोटे-छोटे उभड़े हुए रेशों के कारण होती है, जो आरोंक काजीन की भाँति के होते हैं और उन्हें चैंतड़ी के रेशे कहते हैं। इनका कार्य आगे धक्का कर वर्णन किया जायगा।

उपरोक्त ही भोजन की लुगदी इस पतली चैंतड़ी में पहुँचती है त्यों ही इसमें एक विरोध चर्ज मिलने लगता है, जिसे पित्त कहते हैं। यह चर्ज उसमें ज्वर भरपूर मुख जाता है। यह पित्त बहुत से से सक्ता है और एक सुदृढ़ घैली में, जिसे पिताशय कहते हैं, एकत्रित रहता है। करोड़ों दो हार्ड के पित्त इस पतली चैंतड़ी में लुगदी के साथ

मिलने में निम्न स्वर्च होती है। इस पित्त का कार्य, पैंक्रिया के अर्क के साथ मिलकर रोगानशर पदार्थों को रस बनाने, और घृतदी में सुगन्दी को मदन रोकने का है, और यह आमाशय द्वय को भी, जो अब तक अपना काम पूरा कर चुका है, अब निकम्मा बना देती है। पैंक्रिया का अर्क पैंक्रिया अर्थात् उस लघे अवयव से निकलता है, जो आमाशय के पीछे रहता है। पैंक्रिया के अर्क का यह काम है कि भोजन के रोगानशर पदार्थों को, पतली घृतदी में अन्यान्य पदार्थों के साथ में रस रूप में करके शरीर में स्थित जाने के योग्य पोषण बना देता है। इस काम में पैंक्रिया का एक पाइंट अर्क रोज़ स्वर्च होता है।

पतली घृतदी की मातृमाली मदन पर के बाल की भाँति के छागों रेरी ( जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है ) अपनी लगातार हिलोरी-वाली गति को प्राथम रखते हैं। यह गति उस गोल सुगन्दी के ऊपर काम करती है जो पतली घृतदी में होकर गमन करती है। ये रेरी लगातार गति किया करते हैं, और सुगन्दी में के रस को चाट-चाटकर और नीचे-नीचेवर शरीर में भेजते रहते हैं।

जिन क्रिया-कलापों से भोजन परिवर्तित होकर स्थिर बन जाता है और शरीर के सब अवयवों में भेजा जाता है वे नीचे लिखे जाते हैं—दाँतों से पोषना, मुँह के छार का मिलाना, घोंट जाना, आमाशय और पतली घृतदियों की पाचन-क्रियाएँ, रस का चूमना, शरीर में रस का पुमाना और स्थिर को शरीर का अपना लेना। एक बार हम अर्द्ध से इन क्रियाओं पर फिर विचार कर जायें कि जिसमें से भूख न आयें।

भोजन को चबाना और पोषना दाँतों से होता है। घोंट, जीभ और गलफड़े भी इस काम में सहायता करते हैं। हमसे भोजन बहुत ही बारीक बिस जाता है जिससे वह छार में पुँज जाने के योग्य बन जाता है।

भार में घुल जाता वह क्रिया है जिससे दूधों से घांघा इ  
 भोजन उग्य भार में मिलकर लगभग हो जाता है जो भार में  
 के भार बहानेवाले अवयवों में बहा करवा है। भार भोजन के घेईरा  
 पदार्थों पर काम करना है, और वहने तां उगे डेस्ट्रीन (Dextrine)  
 फिर ग्लूकोज (Glucose) बना देता है, जिससे  
 वह घुल जाता है। भार में एक पदार्थ होता है जिसे पीटेजीन  
 (Pytaline) कहते हैं, यही पीटेजीन रासायनिक क्रिया करके  
 अपने अनुकूल द्रव्यों में एक प्रकार का उजाड़-या ला देता है।

पाचन-क्रिया आमाशय और पत्रो चैन्डियों में होती है, और  
 त्वाईं हुई चीजों को ऐसे रूप में परिवर्तित कर देना कि उसका रस  
 शरीर में शीघ्र लेने और शरीर रूप में हो जाने के योग्य हो जाय, यही  
 पाचन-क्रिया है। उषों की भोजन आमाशय में पहुँचता है त्यों ह  
 पाचन-क्रिया मारम्भ हो जाती है। आमाशय से आमाशय द्रव जूब  
 लवण करने लगता है, और वह त्वाईं हुई चीजों के साथ मिलकर  
 बहुत भव्यी तरह से मघा जाता है, तब वह खाए हुए मांस के  
 परमाणुओं को धुक्-धुक् करता है, मांस के परमाणुओं से चर्बी  
 को धुक् कर देता है और एज्यूमिनस (Albuminous) बना देता है,  
 द्रव्यों को, जैसे दुर्बल मांस, गेहूँ का सत, अंडे की सफेदी, इन  
 पदार्थों को एज्यूमाइनस (Albuminose) बना देता है,  
 और इस रूप में वे शरीर द्वारा चूये और अपनाए जाने के योग्य  
 हो जाते हैं। आमाशय में जो भोजन का रूप-परिवर्तन होता है वह  
 आमाशय द्रव में के एक मसाला जिसे पेप्सिन (Pepsin) कहते  
 हैं उसी के द्वारा होता है। इसके साथ-साथ आमाशय द्रव की और  
 भी तेजाबी चीजें इसे सहायता पहुँचाती हैं। जब तक आमाशय द्वारा  
 पाचन-क्रिया होती रहती है, तब तक भोजन में का द्रव भाग, जो  
 पानी पिया गया है, और जो पाचन-क्रिया में खाए हुए भोजन

चलाया गया है, दोनों आमाशय के मोलनेवाले अंगों द्वारा मोल लिए जाते हैं और रुधिर में पहुँचा दिए जाते हैं, और भोजन में के हृदय आमाशय की गति के द्वारा और भी अधिक मधे जाते हैं, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। आगे धंटे में भोजन के हृदय भाग भूरे और लम्बे पदार्थ के रूप में आमाशय से निकलने लगते हैं; इन्हें चाइम (Chyme) कहते हैं। यह पदार्थ भोजन में के शर्करा, नमक, लोह के परिवर्तित रक्तान्तरों, चर्बी, मांस के रेशे और एल्ब्यूमाइनोस (Albuminose) का सम्मिश्रण होता है।

यह चाइम (Chyme) आमाशय से निकलकर पतली अंतड़ी में प्रवेश करता है, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। और पैन्क्रियाटिक (Pancreatic) लया अंतड़ी के अंग और पित्त से मिलता है, और अंतड़ी द्वारा पाचन होने लगता है। भोजन का वह भाग जो अब तक नहीं गला था उसको ये सब अंग गलाते हैं। पाचन-क्रिया अंतड़ी द्वारा चाइम (Chyme) को तीन पदार्थों में बदल डालती है, जिन्हें (१) पेप्टोन (Peptona) जो एल्ब्यूमाइनस (Albuminous) अंग के पाचन से बनता है; (२) चाइल (Chyle) जो कि रक्तान्तरों के शर्करा से बनता है; (३) ग्लूकोस (Glucose) जो कि भोजन के लोहदार पदार्थों से बनता है, कहते हैं। ये सब पदार्थ अधिकतर रुधिर में पहुँचने हैं और उसके अंग बन जाते हैं, और शेष अल्प वस्तुएँ पतली अंतड़ी से निकलकर एक विशालदार दरवाजे की राह बड़ी अंतड़ी या मलाशय में पहुँचती हैं, जिसका ध्यान हम आगे करेंगे।

खून या लिंफा उस क्रिया को कहते हैं जिससे ऊपर लिखे हुए रस, जो पाचन-क्रिया द्वारा बने हुए रहते हैं, नलियों और अन्य रसाक्तों माँगों द्वारा खींचे जाते हैं। पानी और अन्य अंग, जो आमाशय के पाचन द्वारा खाने की सुगन्धि में से

हृदय है, वे आमाशय के द्वार पर के दून द्वारा नीचे तिर जाते हैं और उभी द्वार की राह द्वारा यकृत में पहुँचा दिए जाते हैं। पनपनी भोजनियों द्वारा जो पेप्टोन (Peptone) और ग्लूकोस (Glucose)-नामक रस नीचे जाते हैं, वे भी पनपनी के बाज की भोजनियों रसों द्वारा नीचे गहर द्वारवाली राह में होने हुए यकृत में पहुँचते हैं। यकृत में होकर जहाँ इन पर यकृत द्वारा क्रियाएँ होती हैं, जिनका भागे यकृत के विषय में वर्णन होगा, वे रस हृदय में पहुँचते हैं। रोगानी शर्त चाल (Chyle) जो पेप्टोन (Peptone) और ग्लूकोस (Glucose) के निकल जाने पर भोजन का शेष अंश रह जाता है यह भी लैक्टल (Lactal)-नामक रस द्वारा छाती की नलिका में पहुँचाया जाता है, जहाँ से यह भी रुधिर में पहुँचता है। इसका वर्णन भागे रुधिर-संचार के विषय में किया जायगा। रुधिर-संचार के अध्याय में हम इस बात का विवरण देंगे कि रुधिर कैसे पचाए हुए अन्न से पोषण खींचकर शरीर के सब भागों में पहुँचाता है, और कैसे प्रत्येक रेशा, जरा, अणु और भाग में यह सामग्री पहुँचाता है, जिससे इन रेशों, जरा, अणुओं और भागों की रचना और मरम्मत होती है और शरीर बढ़ता, विरुद्धता और पुष्ट होता है। यकृत में से विलेख करती है जो पतली अंतर्दियों में पहुँचती है, जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। यकृत एक और द्रव्य को संचय करता है जिसे ग्लाइकोजन (Glycogen) कहते हैं; यह उन पचे हुए रसों से बनता है जो द्वार के रसों द्वारा लाए हुए रहते हैं, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह ग्लाइकोजन (Glycogen) यकृत में संचय होता है और परचाव क्रमशः पाचन के बीच-बीच में ग्लूकोस (Glucose) अर्थात् ऐसे द्रव्य में परिवर्तित हुआ करता है जो अंगूर की शर्करा की तरह का होता है। पैनक्रियास (Pan-

creas) में से पैनक्रिएटिक (Pancreatic) अर्क निकलते हैं, जो कि पतली छैतदियों में जाकर उन छैतदियों द्वारा पाचन-क्रिया को सहायता पहुँचाते हैं, और विशेष करके भोजन के रोगानदार अंश पर काम करते हैं। गुर्दे कमर में स्थापित हैं; ये पतली छैतदियों के पीछे रहते हैं। ये संख्या में दो और आकार में संम के बीज की शक्ल के होते हैं। ये स्तन को, उसमें से यूरिया (Urea)-नामक विषले पदार्थ और अन्य क्रतुल चीजों को निकालकर, साक करते हैं। गुर्दों से प्रारिज किया हुआ अर्क दो नलिकाओं में होकर, जिन्हें यूरेटर (Ureter) कहते हैं, मूत्राशय में जाता है। यह मूत्राशय पेट के सबसे निचले भाग में होता है और मूत्र का धर्तन है, जो मूत्र कि रही अर्क है, जिसमें शरीर की रहियात भी रहती है।

इस विषय के इस भाग के धर्तन को छोड़ने के पहले हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकषित किया चाहते हैं कि जब भोजन दाँतों से अधूरा पीसा हुआ और खार से अधूरा मिश्रित हुआ आमाशय और पतली छैतदियों में पहुँचता है—जब कि दाँतों और खार बहानेवाले अवयवों को पूरा काम करने का अवसर नहीं दिया गया है—तब पाचन में बाधा और रुकावट पहुँचनी है, और पचानेवाले अवयवों के जिम्मे उनकी शक्ति से बाहर काम हो जाना है, और जो काम उनमें होना चाहिये वह नहीं हो सकता। यह बात धैर्य की है जैसे एक आदमी से कहा जाय कि तुम अपने जिम्मे का भी पूरा काम करो और जब काम को भी करो जिसका मुझारे काम से पहले ही उत्तम हो जाना चाहिये था। यह समोहदार से यह बतला है कि तुम समोह भी बनाने जाओ और साथ-ही-साथ आस भी रोमने जाओ और हाथ भी दकते जाओ। जब आमाशय और पतली छैतदियों में जो रस पीचनेवाले अवयव हैं वे कदरव हिमो-ज-हिमो द्रव

वर्षा को लोचेंगे, क्योंकि यही उनका कार्य ही ठहरा। यदि छात्र उन्हें लोचने के लिये गुरुवर्य के आश्रम न लेंगे तो वे आमाशय की वजह से तपस्वियों में से लड़के-मछले हुए ही पदार्थों को लोचेंगे और उन्हें पित्त में चढ़ूँगा वेगे। दधिरे हमही दूध पदार्थों को मारे शरीर में, पानी तक कि अतिरिक्त में भी, चढ़ूँगा वेगा। जब मनुष्य इस प्रकार अपने शरीर में अपाव हो चिप भर रहे हैं तब ये पित्त की अधिकता, पित्त हर्ष आदि की शिकायतें करें तो हममें आश्चर्य ही क्या है।

# छठा अध्याय

## जीवनद्रव

हम अपने पिछले अध्याय में यह थाप रहे कि जिस अन्न को हम लोंग खाते हैं वह क्रमशः ऐसे पदार्थों में कैसे परिवर्तित हो जाता है जो कि रक्षिर द्वारा लींचे और अपनाए जा सकते हैं, और यह रक्षिर शरीर के सब भागों में कैसे पोषण पहुँचाता है, जहाँ शारीरिक मनुष्य के सब अंग बनते, मरम्मत होते और नए किए जाते रहते हैं। इस अध्याय में हम संक्षेप से यह दिखलावेंगे कि रक्षिर की ये क्रियाएँ कैसे होती हैं।

पचे भोजन में का पोषण करनेवाला भाग लींचकर रक्षिर हो जाता है। यही रक्षिर धमनियों द्वारा शरीर के रेशे-रेशे और ज़र्रे-ज़र्रे तक पहुँचता है कि जिसमें उसकी रचना और मरम्मत करने की क्रियाएँ होती रहें। फिर यही रक्षिर अन्य नलियों द्वारा लौट भी आता है और अपने साथ शरीर के टूटे-फूटे ज़र्रे और अन्य क़त्तूक और रद्दी चीज़ों को लेता आता है कि जिसमें रद्दी चीज़ें फेफ़ड़ों और शरीर के दूसरे माज़ करनेवाले अवयवों द्वारा शरीर से बाहर फेंक दी जावे। इसी रक्षिर के प्रवाह को, जो हृदय से बाहर की ओर शरीर के प्रत्येक अंगों तक, और प्रत्येक अंगों से भीतर तक की ओर हुआ करता है, रक्षिर-संचार कहते हैं।

इस आरपार्यजनक शारीरिक क़त्त को जो इंजिन चलाना है उसे हृदय कहते हैं। मैं स्वयं हृदय के वर्णन में आप लोगों का समय न लूँगा; किंतु हृदय कौन-सा काम करता है, उसका वर्णन अवश्य



अब उसी स्थान से प्रारंभ किया जाय जहाँ पिछले अध्याय में हम लोगों ने छोड़ दिया था, अर्थात् उस स्थान से जहाँ अन्न के रस को रुधिर ग्रहण कर और अपना कर हृदय में पहुँचता है, जो हृदय इसे शरीर को पुष्टि पहुँचाने के लिये शरीर में रवाना करता है। रुधिर धमनियों में होकर प्रस्थान करता है। ये धमनियाँ सिकुड़ने और फैलनेवाली नहरें हुआ करती हैं। इनकी शाखाएँ प्रशाखाएँ भी होती हैं। रुधिर सभी धमनियों (नहरों) से पतली धमनियों में जाता है; इनमें से और अधिक पतली धमनियों में जाता है, जो बाल से भी इनमें से उन बहुत ही बारीक धमनियों में जाता है, जो बाल से भी अधिक पतली हुआ करती हैं। ये बाल से भी पतली धमनियाँ भी रुधिर-संचार की मार्ग हैं, इनका व्यास  $\frac{1}{1000}$  इंच होता है। ये बहुत ही पतले बाल के सदृश होती हैं। ये धमनियाँ रेशे-रेशे में प्रवेश करके जाल की भाँति फैल जाती हैं, जिससे रुधिर सब अंगों में पहुँच जाता है। इनकी दीवारें बहुत ही पतली हुआ करती हैं, और रुधिर का पोषणकारी भाग इन दीवारों से बहकर रेशे-रेशे द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। ये बाल-सी पतली धमनियाँ केवल रुधिर को एक-एक रेशे में बहाती ही नहीं, किन्तु अपनी बापसी यात्रा में, जैसा कि अभी आगे वर्णन होगा, रुधिर को लींचती भी हैं और अंतर्द्वियों के रेशों से रुधिर को लींचकर ऊपर खाने का वर्णन करने लगी हैं।

भारीक बाज सरस धमनियों में, रधिर को प्रवाहित करने लगती हैं जिनमे हि प्रत्येक रेशा रधिर में से पोषण ग्रहण करता है और उसे रचना के काम में लाता है; शरीर के छोटे-छोटे आश्चर्यजनक देहाणु हम कार्य को बड़ी ही भावधानी से करते हैं। ( आगे चलकर इन देहाणुओं के कार्य के विषय में भी कुछ कहा जायगा ) रधिर अपना पोषणभहार एवं वरके फिर हृदय की ओर अपनी वापसी यात्रा करता है और अपने माथ डेह के रहियान, मृतक देहाणुओं और शरीर के अन्य निष्कृज द्रव्यों को बटोरना आता है। यह बाज सरस भारीक गिरा मंनुओं से ग्रहण करता है परंतु रधिरापवाहक धमनियों में होकर नहीं छौटता, किन्तु जेची की भौति के प्रबंध से वह रधिरों-पवाहक ( शरीर के सब अंगों से हृदय में रधिर ले जानेवाला ) पनकी गिराओं में घूम पड़ता है, और उनमें से बड़ी रधिरोंपवाहक गिराओं में होता हुआ हृदय में पहुँचना है। अब फिर दुबारा रधिरापवाहक धमनियों द्वारा यात्रा वरके फिर शरीर में फैलने के पहले हमके माथ कुछ बिधा होता है। यह चेंकड़ा के स्मरण में पहुँचना है जिनमे हममें की रहियान और मिक भयम करके फेंक दी जायें। किसी हमरे आस्था में हम चेंकड़ों की हम बिधा का वर्णन करेंगे।

और आगे बढ़ने के पेशतर हम यह बात बतलाए देते हैं कि एक प्रकार का और भी द्रव पदार्थ होता है जो शरीर में प्रवाहित होता रहता है। इसे पंदा ( Lymph ) कहते हैं और यह बनाकर में रधिर के सरस होता है। हममें कुछ तो रधिर के मयाअ रहते हैं जो रधिरवाहक नलियों की कांठों होधारों से बहा करने हैं, और कुछ देह के रही पदार्थ होने हैं, जिन्हें साज करने के बार पंदा फिर रधिर के हवाले करता है और फिर वे कर्चे में जादू जावे लगने हैं। यह पंदा बहुत ही पनकी बहती है होकर प्रवाहित होता रहता है, वे पनकी बहते हतनी कभीक होती हैं कि जब तक हममें पंदा दूर



रधिर और मित्रदार मैं भी थोड़ा, बना पावेंगे यदि आप अस्वाभाविक स्वादेच्छा को पूरी करेंगे अथवा अच्छे या बुरे किसी भोजन को अनुचित रीति से खाएँगे जिसे “खाना” कहना ही अन्याय है। रधिर जीवन है—आप ही उस रधिर को बनाते हैं—यही इन सब बातों का सारांश है।

अब आईए फेफड़ों के स्मशान पर विचार कीजिए और देखिए कि रधिरोपवाहक शिराओं के उस भीखे, गंदे रधिर के साथ, जो शरीर के सब भागों से गंदगी और रक्षित से छदा हुआ वापस आया है, कौन-कौन-सी क्रियाएँ होती हैं। पहले स्मशान ही को देखिए।

---

पारा न भरा जाय, ये धॉनों में दिगन्नाई तक नहीं देती। ये नरों  
 अनेक रुधिरोंपवाहक शिराओं में मिलकर उनमें भरना पंघा छोड़ देती  
 हैं, और तब पंघा हृदय की ओर लौटने हुए गर्रे रुधिर में मिला जाता  
 है। ग्लाघरम (Chyle) भी पतली धॉनियों में निकलकर  
 (विपुला पाठ देखो) शरीर के निचले भागों से आते हुए पंघा में  
 मिल जाता है और इस तरह से रुधिर में मिल जाता है; इस  
 रस को छोड़कर अन्य सब रस, जो पचे हुए भोजन से निकाले गए  
 होते हैं, द्वार शिरा और बहून द्वारा यात्रा करते हैं; इसलिये यद्यपि  
 ये भिन्न-भिन्न मार्गों से यात्रा करते हैं, परंतु ये सब प्रवाह करते हुए  
 रुधिर में मिल जाते हैं।

इस प्रकार आप देखेंगे कि रुधिर शरीर का रचनेवाला है, जो  
 सीधे-सीधे या रूपांतरित होकर देह के सब भागों को पोषण और  
 जीवन देता है। यदि रुधिर गुणहीन हुआ अथवा इसका प्रवाह  
 निर्बल हुआ तो देह के किसी-न-किसी भाग का पोषण अवश्य बाधा  
 में पड़ जायगा और उसका नतीजा खयावस्था होगी। मनुष्य की  
 पूरी तौल का दसवाँ हिस्सा केवल रुधिर होता है। इसका अनुपांश  
 के ज़रीब हृदय, फेफड़ों, बड़ी धमनियों और शिराओं में रहता है;  
 एक चौथाई मांस-पेशियों में रहता है; शेष भाग देह के शेष भागों  
 और अवयवों में वितरित रहता है। कुल रुधिर का पाँचवाँ भाग  
 मस्तिष्क के प्रयोग में आता है।

रुधिर के विषय में विचार करने में सर्वदा इस बात को स्मरण  
 रखिए कि रुधिर वैसे ही होगा जैसा खाना और जिस तरह से खाना  
 खाकर आप उसे बनावेंगे। आप उत्तम-से-उत्तम रुधिर काफ़ी मित्रदार  
 में बना सकते हैं यदि आप भोजन को विवेकपूर्वक पसंद करेंगे और  
 यदि आप वैसे ही भोजन भी करेंगे, जैसा कि आपके लिये  
 प्रकृति का उद्देश था। और इसके विपरीत में आप बहुत बुराब

रधिर और मित्रदार में भी थोड़ा, बना पावेंगे यदि आप अस्वाभाविक स्वादेच्छा को पूरी करेंगे अथवा अच्छे या बुरे किसी भोजन को अनुचित रीति में खाएँगे जिसे “खाना” कहना ही अन्याय है। रधिर जीवन है—आप ही उस रधिर को बनाते हैं—यही इन सब बातों का सारांश है।

अब आइए पेट-हों के स्मरण पर विचार कीजिए और देखिए कि रधिरोंपवाहक शिराओं के इस भीखे, गंदे रधिर के साथ, जो शरीर के सब भागों से गंदगी और रदियात से खूदा हुआ वापस आया है, बौन-बौन-सी क्रियाएँ होती हैं। पहले स्मरण ही को देखिए।



## सातवाँ अध्याय

### देह में का स्मशान

रवास लेने के अवयव फेफड़े हैं और वे नलियाँ भी जो नाक से फेफड़ों तक गई हुई हैं। फेफड़े संख्या में दो होते हैं और छाती की कोठरी में बीचोबीच की रेखा से एक दाहनी ओर और दूसरा बाईं ओर होता है; उन दोनों फेफड़ों के बीच में हृदय, रुधिर की बड़ी-बड़ी नलियाँ और हवा जाने की बड़ी-बड़ी नलियाँ रहती हैं। प्रत्येक फेफड़ा अपनी जब को छोड़कर शेष ओर घुटा और स्वतंत्र रहता है; इसकी जब में हवा की नलियाँ, रुधिरा-

पवाहक और रुधिरपवाहक नलियाँ होती हैं जो फेफड़ों को घोंघा और हृदय से जोड़ती हैं। फेफड़े स्पंज के सख्त और अनेक छिद्र-वाले होते हैं; इनके रेशे बहुत ही लचीले अर्थात् सिकुड़ने और फैलनेवाले होते हैं। वे बहुत ही बारीक परंतु मजबूत धीले में घिरे रहते हैं, जिस धीले की एक दीवार तो फेफड़े में सटी रहती है और दूसरी छाती की भीतरी दीवार में सटी होती है, और इससे एक प्रकार का द्रव पदार्थ सजा करता है जिससे रवास लेने में धीले की दीवारों एक दूसरे पर आसानी से फिसलाना करती हैं।

रवास लेने के मार्गों में नासिका के भीतरी मार्ग, जेरिक्स, जेरिक्स, घोंघा और घोंघा की निचली शाखाओं की नलियाँ हैं। जब हम रवास लेते हैं तब हम नासिका द्वारा हवा भीतर खींचते हैं, जहाँ यह आर्द्र मिट्टी के संयोग से गरम हो जाती है; क्योंकि यह आर्द्र मिट्टी रुधिर से भरपूर रहती है। हवा जेरिक्स और जेरिक्स में होती हुई घोंघे में पहुँचती है; यह घोंघा नीचे कई

नलियों में विभक्त हो जाता है, जिन्हें बोंबा की शाखा-नलिकाएँ कहते हैं; ये नलिकाएँ भी और महीन महीन अनगिनत नलिकाओं में विभक्त हो जाती हैं, जो फेफड़ों की छोटी-छोटी डन इवा की कोठरियों में पहुँचती हैं जो फेफड़ों में करोड़ों होती हैं। एक खेलक ने लिखा है कि यदि फेफड़ों की इवावाली कोठरियाँ एक समतल सतह पर फैला दी जायें तो ये चौदह हजार वर्ग फीट जगह घेरेंगी।

इहा फेफड़ों में उस मांसपेशी की चर की क्रिया से खींची जाती है, जो चौड़ी, मजबूत, चिपटी और चर के साथ मांसपेशी होती है और जो छाती की कोठरी को पेट से पृथक् करती है। इसकी क्रिया येने ही आप मे आप हुआ करती है जैसे हृदय की होती है, यद्यपि इसे धरनी रू इच्छा के बल से कुछ-कुछ अपने आधीन कर सकते हैं। जब यह चर फैलती है तब यह छाती की कोठरी और फेफड़ों के विस्तार को बढ़ा देती है, और इस प्रकार जो रिक्त स्थान बनता है उसके भरने के लिये हवा भीतर प्रवेश करती है। जब यह चर सिकुड़ती है तो छाती और फेफड़े भी सिकुड़ते हैं और हवा फेफड़ों से बाहर निकल आती है।

यह फेफड़ों में हवा के साथ कौन-सी क्रिया होती है। इसके विचार करने के पहले आइए रधिर-संचार के विषय में देख जायें। रधिर, जैसा कि आप जानते हैं, हृदय द्वारा संचालित होता है और रधिरापवाहक धमनियाँ और बारीक धमनियाँ में होता हुआ शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है और वहाँ जीवद, पुष्टि और शक्ति देता है। फिर महीन रधिरापवाहक शिराओं और मोटी शिराओं में होता हुआ दूसरे मार्ग से हृदय में खींच आता है, अर्थात् कि वह फेफड़ों में खींचा जाता है।

रधिर जब हृदय से निकलकर रधिरापवाहक धमनियाँ द्वारा



दायक पदार्थों और शक्तियों से भरा पूरा रहता है। परंतु जब यह रुधिर-पाहक शिराओं द्वारा वापस आता है तब वह गुणहीन, नीला, गँदा और देह के रसी पदार्थों से भरा आता है। वह जाने के समय तो हिमाजय पहाड़ से निकली हुई पानी की स्वच्छ धारा के सदृश रहता है परंतु लौटने के समय ग्युनिसिपैलिटी की मोरियों के गंदे पानी सा हो जाता है। यह गंदी धार हृदय की दाहनी कोठरी (Auricle) में जाती है। जब यह कोठरी भर जाती है तब यह सिकुड़ती है और उसमें का रुधिर दाहनी ही ओर एक छिद्र द्वारा दूसरी कोठरी (Ventricle) में जाता है, और वहाँ से फेफड़ों में पहुँचता है, जहाँ वह लावों वाक के सदृश महीन रुधिरवाहिनी नलियों द्वारा फेफड़े की हवावाली अग्नित्त कोठरियों में पहुँचता है, जिसका जिक्र पहले हो चुका है। अब वहाँ पर फेफड़ों की क्रिया पर ध्यान दीजिए।

रुधिर की गंदी धार फेफड़ों की करोड़ों छोटी-छोटी हवावाली कोठरियों में वितरित हो जाती है। अब रवास द्वारा हवा भीतर लींची जाती है और हवा में का आक्सीजन, फेफड़ों की पतली रुधिरवाहिनी नलियों की बारीक दीवारों में होकर, जो दीवारें रुधिर रोकने के लिये ताँ काफ़ी मोटी होती हैं परंतु आक्सीजन के प्रवेश के लिये स्थान दे देती हैं, गंदे रुधिर के संपर्क में आता है। जब आक्सीजन रुधिर के संपर्क में आता है तो एक प्रकार की अलन होने लगती है, और रुधिर आक्सीजन को ले लेता है और उस कार्बोनिक् एसिड गैस को जो उस रक्तियात और विप्ले पदार्थों से बनी होती है, जिन्हें रुधिर शरीर के सब अंगों से लाया था। रुधिर जब इस प्रकार स्वच्छ और आक्सीजन मिश्रित हो जाता है तो फिर गुणविशिष्ट, साफ़, चमकीला और जीवनदायिनी शक्तियों और पदार्थों से भरपूर होकर हृदय में पहुँचाया जाता है। पहले यह

हृदय की बाईं कोठरी (Auricle) में जाता है, वहाँ से दूसरी बाईं कोठरी (Ventricle) में भेजा जाता है, जहाँ से प्रेरित होकर वह फिर रधिरापवाहिनी धमनियों द्वारा जीवनदान देने के लिये देह के प्रत्येक भागों में भेजा जाता है। यह अनुमान किया गया है कि २४ घंटे के दिन में ३५००० पाइंट रधिर फेफड़ों की घाल-सी पतली गलियों में होकर गुजरता है और सब रधिराणु एक ही क्रतार में होकर गुजरने हैं जिसमें अपने दोनों बगलों की ओर के चाकमी-जन से संपर्क करते जाते हैं। जब कोई मनुष्य इन ऊपर लिखे हुए क्रिया-कलापों की बारीकियों पर सविस्तर विचार करता है तो उसे प्रकृति की अनंत सावधानी और चतुराई पर आश्चर्य और प्रशंसा में मग्न हो जाना पड़ता है।

यह बात देखने में आवेगी कि यदि पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा फेफड़ों में न जायगी तो रधिरोपवाहक शिराओं द्वारा लीटे हुए गंदे रधिर की सफाई न हो सकेगी, और परिणाम यह होगा कि केवल शरीर ही पुष्टि से वंचित न रह जायगा, किन्तु वे रधिपात जिनका नष्ट हो जाना आवश्यक था, अब फिर रधिर-संचार में जाती हैं और देह में विष फैलाती हैं, जिससे मृत्यु होती है। गंदी हवा भी ऐसी ही बुराई उत्पन्न करती है पर किंचित् थोड़ी मात्रा में। यह बात भी देखने में आवेगी कि यदि कोई मनुष्य पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा को भीतर न सोचेगा तो रधिर का कार्य मुनासिब तौर पर न हो सकेगा, और परिणाम यह होगा कि शरीर बहुत कम पुष्ट होगा और रोग पैदा हो जायगा अथवा अस्वास्थ्य की दशा अनुभव होने लगेगी। जो मनुष्य उचित श्वास नहीं लेता उसका रधिर अवरण नीलापन लिए हुए मैले रंग का होता है और उसमें स्वच्छ रधिर की गुण-विशिष्ट लालिमा नहीं पाई जाती। यह प्रायः शरीर को बदरंग कर देने से अपने को प्रकट करता है। उचित श्वास लेने का फल अष्टा

रुधिर-संचार है और अण्डे रुधिर-संचार का विद्युत् शरीर का अन्तः रंग होता है ।


थोड़े ही ध्यान देने से उचित साँस लेने की प्रधानता समझ में आ जायेगी । यदि फेफड़ों की शुद्ध करनेवाली क्रिया से रुधिर साफ न किया जायगा तो वह अस्वाभाविक दशा में धमनियों में जायगा; न तो यह अच्छी तरह से साफ ही होगा और न इसकी वे ही गंदगिर्या दूर की जा सकेंगी जिनको इसने वापसी यात्रा में शरीर से लिया था । ये गंदगिर्या जब फिर देह में जावेंगी तो किसी-न-किसी बीमारी की सूरत में प्रकट होंगी; या तो किसी रुधिर-रोग के रूप में अथवा नहीं तो ऐसे रोग के रूप में प्रकट होंगी जो किसी अल्पपुष्ट इंद्रिय, अवयव या रेशे की निर्बल क्रिया से हुआ करते हैं ।

रुधिर जब फेफड़ों की काफी हवा से संपर्क रख लेता है तब उसकी केवल गंदगिर्या ही नहीं दूर हो जाती और विपैली कार्बोनिक एसिड गैस ही नहीं धुँक् हो जाती, किंतु वह हवा में से कुछ आक्सीजन भी ग्रहण करके अपने में मिला लेता है और शरीर के उन सब अंगों में पहुँचा देता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है जिससे कि प्रकृति अपना पूरा काम उचित रीति से कर सके । जब आक्सीजन रुधिर के संपर्क में आता है तब वह रुधिर के उस अंश में मिल जाता है जिसे हीमोग्लोबिन ( Haemoglobin ) कहते हैं और यह अणु देह, रेशा, मांसपेशी और अवयव के पास पहुँचाया जाता है, जिन्हें वह बलिष्ठ और शक्तिमान् बनाता है और निकम्मे देहाणुओं और रेशों के स्थान पर नष्ट स्वामान शुद्ध देता है, जिन्हें प्रकृति अपने काम में ले आती है । रुधिराणुवाहिनी धमनी के शुद्ध रुधिर में २५ प्रति सैकड़ा स्वतंत्र आक्सीजन रहता है ।

आक्सीजन के द्वारा केवल प्रत्येक अंग जीवन्त ही नहीं बनाया जाता, किंतु पाचन-क्रिया भी वस्तुतः भोजन के समुचित रीति से

आक्सीजन मिश्रित होने पर अवलंबित है, और यह मिश्रण तभी होता है जब रुधिर में का आक्सीजन भोजन के संपर्क में आता है और एक प्रकार की जलन उत्पन्न करता है, जिसे जठराग्नि कहते हैं। इसलिये यह आवश्यक हुआ कि फेफड़ों द्वारा आक्सीजन की पूरी मात्रा ग्रहण की जावे। यही कारण है कि जहाँ फेफड़े निर्बल होते हैं वहाँ अपच का रोग भी माध-ही-माध अवस्थ रहता है। इस कारण की पूरी महिमा समझने के लिये आवश्यक है कि यह बात स्मरण रहे कि सारा शरीर पचे और अपना प्पुष्ट भोजन से पोषण पाता है, और अधूरे पाचन और अधूरे रस-ग्रहण का अर्थ अधूरा पुष्ट शरीर है। फेफड़ों को भी पोषण के उसी द्वार पर अवलंबित रहना पड़ता है, और यदि अधूरी मात्रा के कारण रस-ग्रहण भी अधूरा हुआ, जैसा कि सर्वदा हुआ करता है, और फेफड़े कमजोर हो गए, तो वे अपना कार्य करने के लिये और भी अधिक अवश्या हो जाते हैं तथा शरीर और भी अधिक निर्बल हो जाता है। भोजन और पान के प्रत्येक कण को आक्सीजन से मिश्रित हो जाना चाहिए और तभी उनसे उचित पोषण मिल सकेगा और तभी देह की रहियात ऐसी अवस्था में आ जायेगी कि देह के बाहर निकाल फेंकी जावे। काफ़ी आक्सीजन के अभाव का अर्थ पोषण का अभाव, शुद्धता का अभाव और स्वास्थ्य का अभाव है। सच है “श्वास ही जीवन है।”

रहियात के परिवर्तन अर्थात् सर्काई से एक प्रकार की जलन उत्पन्न होती है, जो गरमी पैदा करती है और शरीर के ताप को समभाव में रखती है। अच्छी श्वास लेनेवाले भुक्तान में नहीं फैसते, और उनके शरीर में अच्छा गरम रुधिर पुष्कल रहता है जिसकी वजह से वे बाहरी मौसिम के परिवर्तन को पूरा-पूरा सहन कर लेते हैं।

ऊपर लिखे  क्रिया-कलापों के अतिरिक्त श्वास-क्रिया से भीतर

अवयवों और मांसपेशियों को कसरत करनी पड़ जाती है, जिस पर पश्चिमी विद्वानों का ध्यान ही नहीं गया, परंतु योगी लोग उसे प्रशंसन करते हैं ।

अधूरी या छिछली साँस मे फेफड़ों की कोठरियों का एक चंदाकार काम में लाया जाता है, और फेफड़ों की अधिकांश शक्ति नष्ट हो जाती है, और मास्कोजन की जितनी ही बली हुआ करता है, शरीर की उतनी ही हानि होता है । नाच जंतु अपनी स्वाभाविक दशा में सही साँस लेते हैं, और चादि काल के अनुष्य भी ऐसा ही करते थे । सम्य मनुष्यों ने जीवन के अस्वाभाविक तरीके को जो ग्रहण किया—सम्यता के पीछे-पीछे शैतान बुलाया—तो हमारी स्वास लेने की स्वाभाविक रीति हमसे छूट गई जिससे मानव जाति की असीम हानि हो गई । मनुष्य की शारीरिक सुक्ति तो सभी होगी जब यह फिर प्रकृति के मार्ग पर लौटेगा ।

# आठवाँ अध्याय

## पोषण

मानव शरीर में लगातार परिवर्तन हो रहा है। हट्टियों के परमाणु, रंगे, मांस, मांसपेशी, रोगजन और द्रव द्रव्य लगातार गढ़ी ढाले जाते हैं, और शरीर में निबाले जाया करते हैं, और शरीर की अद्भुत रसायनशाला में नए-नए परमाणु लगातार रचे जाते हैं और तब रही और पौधे हुए परमाणुओं की जगह पूरी करने के लिये भेजे जाते हैं।

आइए जरा मनुष्य-शरीर की कारीगरा पर पौधों की गमता में और कर लें—और मनुष्य वह शरीर बनाने, पौधों के जीवन से बहुत कुछ मिलता है। पौधों की बीज से अंकुर होने में, और फिर अंकुर से पौधा, उसके फूल, बीज और फल होने में विभिन्न-विभिन्न चरणों की आवश्यकता होती है। उभर बहुत सरल है—स्वस्थ वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और पोषणकारी भूमि—ये ही चारों सब-सब उसके लिये आवश्यक है कि वह स्वस्थ जीवन को प्राप्त हो। मनुष्य के पार्थिव शरीर के लिये भी ठीक वही चारों चीजें जरूरत होती हैं, जिससे वह स्वस्थ, मजबूत, बजबान और ठीक रहे। आवश्यक चीजों को पूरा तरह लिये—स्वस्थ वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और भोजन। हम वायु, सूर्य के प्रकाश और जल के बिना भी अन्य आपसों में विचार करेंगे, और यहाँ पाके पोषण-कारी भोजन के बिना में विचार किया जाएगा।

ठीक इसी भाँति जैसे पौधा पौधे-पौधे लगातार बढ़ता है, जैसे हम हमारी के पौधे और उसके स्थान पर नए पौधों को स्थापित करने का कार्य करते हैं और लगातार दिवस-रात हुआ करता है। हम जहाँ हम

हमारे ही मनीषियों को समझ बनो यह जाना है, जिस से  
 ऐसी-सी बातों का ध्यान हो नहीं गया, परंतु योगी लोग उसे  
 समझते हैं।

हमारे का विद्वत्ता लोग में सेहों की कोशिशों का एक संग्रह  
 मात्र में समझा जाता है, और सेहों की अधिष्ठाता शक्ति का  
 ज्ञान है, और अस्मत्त्व का विजयी ही बनी हुआ करती है, हाँ  
 की ! इसी ही हस्ति होती है। बस जन्म मरणों स्वाभाविक दशा में  
 लगे रहते हैं, और यदि ब्रह्म के मनुष्य भी वैसा ही करने से।  
 समझ लेंगे कि जन्म के अस्वाभाविक तरीके को जो ग्रहण किया—  
 अस्मत्त्व के संवेदन से उठाया हुआ—तो हमारी स्वाम सेने की हा  
 से ही। मनुष्य की ऐसी-सी शक्ति तो सभी होगी जब यह शि  
 क्षण के लगे पर लगेगा।





मनुष्य कार्य की राह नहीं लगते, क्योंकि यह मानव प्रकृति के अनेक भाग से संबंध रखता है, यह मनुष्य के प्रकृति मानव के अनेक एक भाग है।

संपूर्ण शरीर और उसके कुछ भाग स्वास्थ्य, वल और जीव्य के लिये द्रव्यों के द्वारा अगाधार मूलनीकरण पर भरोसा करते हैं। यदि मूलनीकरण बंध हो जाय तो उसका परिणाम शरीर की मजबूती मृत्तु होगा। शरीर और परिणाम पदार्थों के स्थान में नए पदार्थों को स्थापित करना वेद की अनिवार्य आवश्यकता है, और इसलिये सन मनुष्य का प्रयास करते समय वह पहली ही बात विचारने की है।

हठयोग शास्त्र में भोजन के इस विषय का मूलमंत्र पोषण है। इसने इस शब्द को बड़े अक्षरों में छाप दिया है कि यह आपके चित्त में अंकित हो जाय। हम चाहते हैं कि हमारे शिष्यों को भोजन के प्रयास के साथ-साथ पोषण का प्रयास बना रहे।

योगी के लिये भोजन का अर्थ ऐसी चीज नहीं है जो रसना के स्वाद को उत्तेजित करे, किंतु प्रथम पोषण, द्वितीय पोषण और तृतीय पोषण ही है। चादि से अंत तक सर्वदा पोषण ही है।

बहुत-से लोग आदर्श योगी को दुबला, पतला, अधभुला और निर्मांस जंतु समझते हैं; जो भोजन पर इतना कम ध्यान देता है कि कई दिन तक बिना खाए रह जाता है—जो समझता है कि “आध्यात्मिक प्रकृति” के लिये भोजन अत्यंत “आधिमौक्तिक” पदार्थ है। इसमें बड़े-से सचाई से दूर दूरी बात नहीं हो सकती। योगी लोग, विरोध करके वे जो हठयोग के एक साधक हैं, पोषण को शरीर के लिये अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं और अपने शरीर को समुचित पुरुष रखने से सर्वदा सावधान रहते हैं और यह देखा करते हैं कि शरीर में नए द्रव्यों की रचना बेका और परिणाम द्रव्यों की समता से होती है कि नहीं।

यह ध्यान बहुत सच है कि योगी भटा खरबड़ नहीं होता और न उसकी धामना लज़ीज़ और लतीफ़ भोजन की ओर जाती है। इसके विपरीत वह ऐसी मूर्खताओं पर मन-ही-मन हँसता है और अपने मादे पोषणकारी भोजन ही में जी लगाता है, क्योंकि वह जानता है कि इसी मादे भोजन में उम्रे यह पोषण मिलेगा जो उन हानिकारक पदार्थों से निर्मल रहेंगे, जो पदार्थ उसके उम्र भोगों भाई के रंगधिरों से पक पानों में पाए जाते हैं, जो कि भोजन के घमेलों अर्थ में घनभिन्न है।

हठयोग की एक कटावत है कि "खाया हुआ पदार्थ नहीं, किन्तु पचाकर अपनाया हुआ पदार्थ पोषण करता है।" इस पुरानी कटावत में दुनिया-भर की सचाई भरी है, और इसमें यह बात है जिसे स्वास्थ्य विषयक लेखकों ने पोथियों की पोथियों में लिखा है।

हम आगे चलकर आपका धागियाँ का यह तरीका बतलावेंगे जिस तराफ़ से वे थोड़े-से-थोड़े भोजन से अधिक-से-अधिक पोषण प्राप्त किया करने हैं। धागियों का तरीका मध्य मार्ग है, मार्ग के परस्पर विरोधी दोनों विचारों से दो भिन्न प्रकार के विचारवाले मनुष्य बनने हैं, अर्थात् एक तो दृढ़ बमबर खानेवाले और दूसरे निराहार मन के करनेवाले; इन दोनों में से प्रत्येक अपने विचार की मतिमा लाता है और अपने विरोधी के विचारों की निंदा करता है। इन लोगों के विवाद पर जब योगी अपने मरख स्वभाव से हँस देता है तो यह समझ के योग्य है; क्योंकि यह दृष्टता है कि एक तो पूरे पोषण के लिये बमबर भोजन करना आवश्यक समझता है, और दूसरा हमका विरोधी बमबर भोजन करने में मूर्खता देखता है और उसको हमका समझ नहीं दिनाई देता मिलाप हमारे हि बहुत दिन तक मन भर-भरके अधभूये रहे, जिससे बहुत-से ऐसे कतिपयों को निर्वलता से का घेता है और किसी-किसी को तो करने कीश्वर को शोचर मनु के दुख से ज्ञात यह गया है।

योगी के लिये उपवासजनित अल्प पोषण और कमकर खाने से थपक रस इन दोनों में से किसी प्रकार का भय नहीं रहता—इन प्रश्नों को तो सैकड़ों वर्ष हुए कि वृद्ध योगी गुरुओं ने कभी हल न दिया और यह मामला इतना पुराना हो गया कि उन वृद्ध योगी गुरुओं का नाम तक भी उनके अनुयायियों को स्मरण नहीं है।

अब कृपा करके सर्वदा के लिये इस एक बात को गॉठ देकर याद कर लीजिए कि इष्टयोग भूले रहने के तरीके का पक्षपाती नहीं है। परंतु इसके विपरीत वह जानता और सिखाता है कि मनुष्य का शरीर कभी भी बिना काफ़ी भोजन खाए और खाकर पचाए, पुष्ट नहीं रह सकता। बहुत-से नाशुक, निर्यत्न और संशंक मनुष्य इसी कारण कम जीवट के और रुग्णवस्था में होते हैं कि वे काफ़ी पोषण नहीं प्राप्त करते।

इन बात को भी याद रखिए कि इष्टयोग इस विचार को भी हास्यजनक जानकर अस्वीकार करता है कि मूत्र कस करके भोजन करने से पोषण प्राप्त होता है; और स्वाद-खोलुपों की दशा पर आश्चर्य और रहम करता है, और स्वाद-खोलुपना में केवल नीच पशुता का आभास देखता है जो पूर्ण विकसित मनुष्यत्व से बहुत ही विपरीत है।

योगी की दृष्टि में सम्प्रसार मनुष्य जीने के लिये खाना है—न कि खाने के लिये जीना है।

योगी बहुत खानेवाला नहीं होता, किन्तु क्या ही स्वादु-भोजी होता है, क्योंकि सादा-से साद खाना खाते हुए भी, उमने अपनी आश्चर्यजनक शक्ति को इतना जगा और उष्मादिन कर दिया है कि सधी भूत में इन्हीं मादे मानों में स्वाद मिलता है जो कि उन लोगों को कभी भी मगीष नहीं होता जो पाश्चात्या के बहु-मूल्य तरीकों द्वारा स्वाद की तलाश में रहा कर रहे हैं। योगी का

प्रधान उद्देश है कि पूर्ण पोषण के निमित्त भोजन करना चाहिए तो भी वह खाने भोजन से ऐसा बड़ा और आनंद प्राप्त करना है जो उसके बारे में भोजन से प्राप्त करनेवाले आंगी भाई को मान्य ही नहीं हो सकता।

आगे के अध्याय में हम भूख और भोजनापत्ति का विषय उठा-  
वेंगे—ये दोनों भौतिक शरीर के अत्यंत भिन्न-भिन्न गुण हैं, यद्यपि बहुत-से मनुष्यों को दोनों एक ही बात प्रतीत होती है।



# नवाँ अध्याय

## भूख और भोजनातुरता

जैसा कि इसके पूर्ववाले अध्याय के अंत में हमने कहा है, भूख और भोजनातुरता दोनों परस्पर मिलकुल एक दूसरे से भिन्न गुण शरीर के हैं। भूख भोजन की स्वाभाविक माँग है—भोजनातुरता अस्वाभाविक कोलुपता है। भूख स्वस्थ बच्चे के कपोलों पर गुलाबी रंग की लालिमा की भाँति है—भोजनातुरता शौकोन औरत के रँगे हुए लाज चेहर की तरह है। तथापि बहुत-से मनुष्य ऐसा समझते हैं कि दोनों का अर्थ एक ही है। अब देखना चाहिए कि दोनों में अंतर क्या है।

एक साधारण मनुष्य को, जो युवावस्था को पहुँच गया है, भूख और भोजनातुरता के भिन्न-भिन्न अनुभवों और लक्षणों की समझ देना बड़ी कठिन बात है; क्योंकि उस उमर के अधिकतर मनुष्य अपनी स्वाभाविक भूख की प्रवृत्ति को इस क्रूर भोजनातुरता से परिवर्तित कर देते हैं कि उन्होंने बहुत बरसों से असली भूख के लक्षणों का अनुभव ही नहीं किया है और भूल गए हैं कि भूल लगने पर कैसा मालूम होता है। और किसी अनुभव का समझना बड़ी ही मुश्किल बात है जब तक धोता के मन में उस अनुभव का अथवा घैसे ही अन्य अनुभव का स्मरण न दिखा दिया जाय, जिसको कि उसने कभी गिड़ले समय में भोग लिया है। हम किसी आवाज़ का वर्णन साधारण अवस्थावाले मनुष्य से ऐसी आवाज़ों की उपमा देकर कर सकते हैं, जिनको उसने कभी सुना है—परंतु जो मनुष्य जन्म ही से बहरा है उसको आवाज़ का अर्थ समझाना

कितना कठिन है, आप ही कल्पना कर लीजिए ; अथवा जन्मांध मनुष्य को रंग का अर्थ बतलाना वा ऐसे मनुष्य को जो जन्म से प्राणशक्ति में हीन है उसे सुगंध को समझाना कितनी कठिन बात है ।

ऐसे मनुष्य को, जो भोजनानुरता की सुलामी में बाहर है, भूख और भोजनानुरता के भिन्न-भिन्न लक्षण प्रतीत होने हैं और दोनों का भेद आसानी से समझ में आ जाता है, और ऐसे मनुष्य का मन दोनों शब्दों के भावों को टोक-टोक ग्रहण कर लेता है । परंतु साधारण स्वस्थ मनुष्य को भूख ही भोजनानुरता का मूल, और भोजनानुरता भूख का परिणाम प्रतीत होती है । दोनों शब्दों का दुष्प्रयोग किया जाता है । हमको साधारण और सुपरिचित उदाहरणों द्वारा इस बात को समझाना पड़ेगा ।

पहले प्यास को लीजिए । सब लोग अच्छी स्वाभाविक प्यास के अनुभव को जानते हैं । जिसमें ठंडे पानी की भीतरी माँग होती है । इसका अनुभव मुख और गले में होता है और इसकी वृत्ति उस पदार्थ में होती है जो प्रकृति का उद्देश है—ठंडा पानी । अब यही स्वाभाविक प्यास को स्वाभाविक भूख से तुलना रखती है ।

यह स्वाभाविक प्यास उस पानानुरता में कितनी भिन्न होती है जिस आनुरता के वश में होकर मनुष्य मीठे, ज़ायज़ेदार सोडावाटर, मलाई का चूने और कोडा, जिंजर, मदिरा और भोंति-भोंगि के शर्बतों को तलाश करता है । और इसी प्रकार स्वाभाविक प्यास उस आनुरता में कितनी भिन्न होती है जिसे शराबी मनुष्य बिपर, मारी आदि के लिये अनुभव करता है । अब कुछ समय में आने लगा कि हमारा क्या मतलब है ?

हम लोगों को ऐसा बहने हुए सुनने हैं कि एक ख्याल सोडा-वाटर की पैसी प्यास खर्ची है; हमारे कहते हैं कि थोड़ी शराब की प्यास खर्ची है । अब यदि ये मनुष्य स्वस्थ प्यासे होने, वा हमारे

शब्दों में, यदि सचमुच प्रकृति की माँग द्रव पदार्थ की होती, तो पहले ये लोग स्वच्छ ठंडा पानी ही तलाश करते और यही पानी उनकी प्यास को पूरा-पूरा बुझा देता। परंतु नहीं, पानी सोडावाटर अथवा प्लिस्की की प्यास को कभी नहीं बुझा सकता। क्यों? क्योंकि यह पानातुरता की चाहना है जो स्वाभाविक प्यास नहीं है। परंतु इसके विपरीत अस्वाभाविक पानातुरता है—अत्यधिक चाहना है। आतुरता पैदा कर ली गई है—आदत डाल दी गई है—और वह अपनी प्रभुता दिखला रही है। आप ज़्यादा करेंगे कि इन आतुरताओं के मुरीद भी कभी-कभी सच्ची प्यास का अनुभव करते हैं और ऐसे समय में केवल पानी ही माँगते हैं और आतुरता के भोग का ज़्यादा भी नहीं करते। ज़रा ज़्यादा तो कीजिए कि यही बात क्या आपके साथ भी नहीं है? यह स्वादपान के निवारण के लिये उपदेशकीय व्याख्यान नहीं है और न तो मद्यप्रचार-निवारण का उपदेश ही है; परंतु सच्ची प्यास और हासिल की हुई आदत अर्थात् आतुरता का भेद दिखलाने के लिये उदाहरण है। आतुरता खाने और पीने की हासिल की हुई आदत है और इससे सच्ची भूख और प्यास से कुछ भी संबंध नहीं है।

मनुष्य तंबाकू को किसी रूप में भोगने की चाहना अर्थात् आतुरता प्राप्त कर लेता है; जैसे ही शराब, पान, दोहरा, अफीम, चरस, गाँजा, चंदू, कोकेन या ऐमे ही द्रव्यों की आदतें डाल लेता है और इनके लिये आतुर हो जाता है। और ऐसी आतुरता या आदतें जब एक बार अच्छी तरह प्राप्त कर ली जाती हैं तब यह स्वाभाविक भूख और प्यास से भी प्रवृत्त हो जाती हैं; क्योंकि ऐमे मनुष्य भी जाने गए हैं जो भूखों मर गए हैं, क्योंकि उन्होंने अपना सब धन शराब और मद्य के लिये खर्च कर दिया था। मनुष्य ने पीने के लिये अपने बच्चों के कपड़े तक बेच दिए हैं—अपनी मर्यादा की आतुर-

रना बुझाने के लिये थोड़ी थोड़ी कृतज्ञ भव कर डाला है। परंतु हम संपूर्ण आनुराग की चाहना को भूख बढ़ने की बीज कहना करेगा? परंतु हम किसी वस्तु को पेट में डाल लेने की प्रथम चाहना अर्थात् आनुराग को भूख ही कहने और समझने हैं; हाजी कि ऐसी बहुत-सी चाहनाएँ ऐसी ही आनुराग की चिह्न हैं जैसे शराब और दूसरे मजे की चाहना होनी है।

मांस जंतु की स्वाभाविक भूख होती है जब तक कि वह मध्य मनुष्य द्वारा मिठाई खाकर, जिसे मूटे ही भोजन कहते हैं, चरबा न दिया जाय। छोटे बच्चे को भी स्वाभाविक ही भूख होती है जब तक वह भी बिगाड़ नहीं दिया जाता। बच्चों में स्वाभाविक भूख के स्थान पर अस्वाभाविक चाहनाएँ, माता पिता की संपत्ति के अनुसार पैदा की जाती हैं—जितनी ही धन की अधिकता होगी उतनी ही आनुराग की अधिक प्राप्ति होगी। उयों-ज्यों पैसा बचा बढ़ता जाता है त्यों-त्यों अमली भूख के अर्थ को भूलता जाता है। सब से यह है कि मनुष्य भूख को एक दुःखदायी बीज समझते हैं और उसे स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं समझते। जब कभी मनुष्य को बाहर पड़ाव डाल-डालकर यात्रा करनी पड़ जाती है, तब खुशी हवा, शारीरिक परिश्रम और स्वाभाविक जीवन से एक बार फिर अमली भूख जाग उठती है, और तब वे छोटे लड़कों की भाँति भोजन करते हैं और ऐसे स्वाद के साथ कि जिसे बरसों वे नहीं जानते थे। उनको सबमुच भूख लग जाती है और वे खाना खाते हैं क्योंकि उनके शरीर में भोजन की माँग है वे केवल चाहत ही के कारण नहीं खाना खाते जैसा घर पर हुआ करता है कि पेट में क्षणभंगुर खाने पर खाना भरा चला जाता है।

हमने हाल ही में घनी लोगों की एक मंडली के विषय में पढ़ा है कि वे आनंद के लिये समुद्र की यात्रा कर रहे थे कि दुर्घटना-



यश असहाय स्थान में पड़ गए। विवश होकर उन्हें दस दिन तक बहुत ही सूक्ष्म भोजन से गुज़र करनी पड़ी। जब वे लोग बचाए गए तब वे स्वास्थ्य के रूप नज़र आने लगे—गुलाबी रंग, चमकीली आँखें, और सबसे बढ़कर यह बात कि वे स्वाभाविक अच्छी भूख के बहुमूल्य पदार्थ को पा गए थे। उस मंडली के कुछ लोग घरों से बड़बड़ामी के रोग में मुक्तिवा थे; परंतु इन दस दिनों के अनुभव ने जिसमें भोजन बहुत ही कम और बड़े परिश्रम से मिला, लोगों को बड़बड़ामी और अन्य रोगों से मुक्त कर दिया। उनको उचित रीति से पोषण करने के लिये तो काफ़ी मिल गया और वेह में जो रहियात जमा हो गए थे और जिसमें शरीर विपाक हो रहा था वे पदार्थ निकल गए। अब वे बहुत दिन तक नीरोग रहें या न रहें, यह बात उन्हीं के कर्मों पर अवलंबित थी कि चाहें वे भूख का अनुसरण करें चाहे भोजनानुरता का।

स्वाभाविक भूख—स्वाभाविक प्यास की भाँति—मूँह और गले की नाड़ियों के द्वारा अपने को प्रकट करती है। जब मनुष्य भूखा होता है, तब भोजन का स्वाद या नाम उनके मूँह, गले और हार पैदा करनेवाले अवयवों में एक विशेष संवेदना उत्पन्न करता है। उन भागों की नाड़ियों से एक विशिष्ट प्रकार की संवेदना प्रकट होती है, जो यह बताती है, और वहाँ के सारे अवयव कार्य में लगने की तत्पुच्छता प्रकट करने लगते हैं। आमाशय कोई भी संकेत नहीं करता और पेट में भोजन पर प्रकट भी नहीं होता। मनुष्य को मालूम होगा कि अपने पुष्टिदायक भोजन का स्वाद उसे सुगन्धायक होगा। स्वाद, गन्ध, रस, भोजनोपाय आदि की वेदना आमाशय में नहीं होगी। वे सब तो भोजनानुरता की चार्ज के लक्षण हैं, जो इट कर रहे हैं कि भोजन जारी रखी जाये। क्या आपने कभी प्रश्न किया है कि जराब की चार्ज भी पेट ही लक्षणों को प्रकट करती है। प्रकट चार्ज और चार्ज के लक्षण

भोजनानुरता और पानानुरता दोनों अस्वाभाविक बातों में प्रकट होते हैं। जो मनुष्य हुआ पीना चाहता है वा तंबाकू खाया चाहता है उसको भी इसी प्रकार की वेदनाएँ होती हैं।

मनुष्यों को प्रायः आश्चर्य होता है कि 'अब वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता जैसा कि लक्ष्मणन में "मा पकाया करती थी।" क्या आप जानते हैं कि वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता? केवल इसी कारण से कि उस मनुष्य ने अपने शरीर में भूख के स्थान पर भोजनानुरता को जगह दे दिया है, जिससे कि पिछले सादे भोजन का स्वाद अब अमंजब हो गया है। यदि मनुष्य फिर भी अपनी स्वाभाविक रहन द्वारा भूख को उत्तेजित कर दे तो उसे फिर भी बचरन के भोजन का लाभ मिलने लगे—तब उसको सभी रसोद्भूत वैसी ही भाजूम होने लगेंगी जैसी "माता" थी, क्योंकि वह फिर मनुष्यक हो जायेगा।

आपको शायद आश्चर्य होगा कि इन सब बातों से दृढयोग से क्या संबंध है। संबंध यह है—योगी ने भोजनानुरता को जीत लिया है, और हमसे स्थान पर फिर भूख को पुनः स्थापित किया है। हमको प्रत्येक घास में मुख मिलता है; यहाँ तक कि सूखी रोटी का टुकड़ा भी उसके बिचे पोषण और मुख दोनों का देनेवाला है। वह उसे हम भौति मानता है कि आपको भाजूम भी नहीं है, और जिसका वर्णन आगे खजहर किया जायगा। इसबिचे योगी भूखा निराहारी घना नहीं रहता; वह तबूब स्वाप, रोक पुष्ट, भोजन का मुख उठानेवाला होता है; क्योंकि उसके आधोन सब अटनियों से स्वादिष्ट अटनी भूख है।

## दसवाँ अध्याय

### भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास

बहुत-से कार्यों को एक में मिलाने और आवश्यक कर्तव्यों को सुलभ बनाने ( जिससे वह कार्य करने योग्य हो जायें ) की प्रवृत्ति की चातुरी अनेक उदाहरणों में देखने में आती है। हम अध्याय द्वारा प्रकार का एक बहुत ही जागरण्यमान उदाहरण प्रकाशित किए जायगा। हम दिव्यसाधने कि वह कैसे अनेक बातें एक ही साथ पूर करती है और कैसे वह शारीरिक संगठन के अधिकतम आवश्यक कर्तव्यों को सुलभ कर भी बना देती है।

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में जो योगियों के प्रयास हैं उन्हीं के विचार से प्रारंभ कीजिए। योगियों का यह प्रयास है कि मनुष्य और नीच जंतुओं के भोजन में प्राण का एक ऐसा रूप रहता है, जो मनुष्य के बल और शक्ति को क्रायम रखने के लिये जितना आवश्यक है, और प्राण का यह रूप मुख, जिह्वा और दाँतों की मांसियों द्वारा ग्रहण किया जाता है। कूँघने या दाँतों से पीसने की क्रिया, जिससे भोजन के टुकड़े महीन-महीन कणों में पिस जाते हैं, इस प्राण को पृथक् कर देती है और प्राण के इतने परमाणुओं को जिह्वा, मुख और दाँतों के सम्मुख उपस्थित कर देती है जितना संभव हो सकता है। भोजन के प्रत्येक परमाणु में भोजनप्राण या भक्ष की शक्ति के अनेकों प्राणालु होते हैं, जो प्राणालु कि दाँतों से की क्रिया द्वारा और जल में से कतिपय द्रव्यों

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास ५६

की रासायनिक क्रिया द्वारा घृष्ट किष्ट जाने दें; इनके अस्तित्व का ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिकों को अभी नहीं है, और न ये आजकल के रसायन शास्त्र की परीक्षाओं द्वारा प्रकटित किष्ट जा सकते, यद्यपि भविष्यत् के स्वर्गी लोग इनके विषय में वैज्ञानिक प्रमाण ले द्येंगे। जब यह भोजनप्राण एक बार भोजन में से स्वतंत्र कर दिया जाता है तब यह जिह्वा, मुख और दाँतों की नादियों के पास दौड़ जाता है, और मीन और हड्डियों में होकर बहुत शीघ्रता से नाड़ी जाल के अनेक बँडों अर्थात् चक्रों में पहुँचता है, जहाँ से कि वह शरीर के प्रत्येक भागों में पहुँचाया जाता है और देहाणुओं को शक्ति और जीवत् प्रदान करता है। यह योगी के रूप की मोटी-मोटी बातें हैं; इनका अविस्तर वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

शिष्य लोक आश्चर्य करेंगे कि जब हवा में इतना अधिक प्राण भरा हुआ है तब भोजन में से प्राण खींचने की क्या आवश्यकता है, और यह प्रकृति के विषय में समय का व्यर्थ खोना समझा जायगा कि इतना परिश्रम भोजन में से प्राण लेने के लिये किया जाय। परंतु इसका समाधान यों है। जैसे सब विद्युत् विद्युत् है वैसे ही सब प्राण प्राण है—परंतु जैसे विद्युत् की धार के अनेक रूप होते हैं, और मनुष्य के शरीर पर एक दूसरे से बहुत ही भिन्न अमर दाकते हैं, वैसे ही प्राण के रूपों के भी अनेक प्रकार के विकार होते हैं; पार्थिव शरीर में प्रत्येक रूप अपना निश्चित कार्य करता है; और भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों के लिये सभी रूप के प्राण की आवश्यकता होती है। हवा में का प्राण एक त्रिस्म का कार्य करता है, पानी में का दूसरे त्रिस्म का और भोजन में से जो प्राण प्राप्त किया जाता है वह तीसरे और त्रिस्म का कार्य संपादन करता है। योगियों के रूप के अविस्तर वर्णन में जाना हम पुनः के उद्देश के बाहर की बात होगी, और हमको यहाँ साधारण वर्णन ही पर संतोष करना चाहिए। अमली

विषय हमारे सामने यही उपस्थित है कि भोजन में अन्नपाण होना है जिसकी मानव शरीर को आवश्यकता है, और जिसको उतार लिखी हुई रीति से ग्रहण कर सकता है, अर्थात् भोजन को दाँतों से मूँच अच्छी तरह पीस डालने से और पाण को दाँतों, जिह्वा और मुँह की नाड़ियों द्वारा खींचने से।

अब भोजन को दाँतों से कुँचने और उसमें लार मिलाने की क्रिया से जो प्रकृति दोहरा काम लेती है उस पर विचार करना चाहिए। प्रथम तो प्रकृति का यह उद्देश्य है कि भोजन का प्रत्येक ज़रा अच्छी तरह से पीस डाला जाय और उसमें लार मिल जाय तब उसे भीतर घोंटा जाय; और इस विषय में कोई भी श्रुति हुई कि पाचन में बाधा पड़ी। अच्छी तरह से कुँचना ही मनुष्य की स्वाभाविक आदत है, जो कि रहन-सहन की कृत्रिम आदतों के सङ्काशा से, जो हमारी सम्मता के कारण उपस्थित हो गए हैं, भुज्जवा दी गई है। भोजन को दाँतों से पीस जाना इसलिये आवश्यक है कि वह आसानी से घोंटा जा सके और इसलिये भी कि उसमें लार तथा आमाशय और पतली अंतर्वियों के पाचक द्रव घुल सकें। इससे लार का स्वाद बढ़ता है, जो पाचन-क्रिया-कलाप का बहुत ज़रूरी अंग है। भोजन में लार का घुल जाना पाचन-क्रिया का अंग है, और लार द्वारा कुछ ऐसा आवश्यक कार्य होता है जो अन्य द्रवों में नहीं हो सकता। आयुर्वेदिक लोग बहुत जोर देकर लिखजाते हैं कि अच्छी तरह से कुँचना और द्रव्य लार मिलाना स्वाभाविक पाचन के लिये अनिवार्य है और पाचन-क्रिया के प्रधान अंग हैं। कुछ विशिष्टाचार्य लोग तो इस कुँचने और लार मिलाने की क्रिया को माधारण आयुर्वेदिकों की अपेक्षा और भी अधिक महत्त्व देते हैं। एक परिचयमें आचार्य, निग-का नाम मिस्टर होरेस प्रलेवर है, जो अमेरिका-निवासी है, इस विषय पर बड़ा जोर देकर लिखे हैं और भौतिक शरीर की इस

क्रिया की प्रधानता पर आश्चर्य-जनक प्रमाण दिए हैं। अमल बात यह है कि मिस्टर प्रलेचर एक स्वाम्य तरीके से बूचने की मलाह देते हैं, जो योगियों के तरीके से बहुत मिलता है; यद्यपि प्रलेचर मादक तो पाचन-क्रिया में उसके अद्भुत प्रभाव के निहाल से उसका उपयोग करते हैं, परन्तु योगी आग धीमी ही क्रिया अन्न में प्राण स्थान के अभिप्राय से करते हैं। मच यों हैं कि धीमी क्रिया से दोनों मनुष्य क्षमिक होने हैं, क्योंकि प्रकृति के उदंग का यह एक रंग है कि भोजन दोनों से दूध समझकर ग्राह्य जाय। तब के मिलने से पाचन-क्रिया की ग्राह्य-ही ग्राह्य प्राण की प्राप्ति दोनों एक ही समय में हो जाती है—ध्यान देने योग्य परिणाम की विप्रायन।

मनुष्य की स्वाभाविक दशा में भोजन का दूध समझ लेना एक दुर्लभ बातें था और बीच जंगुष्ठा तथा मनुष्यों के दन्तों में अब भी है। जानकर अपने पारा को दूध मजे के साथ समझता है। और मनुष्य का बच्चा भी पृथक्ता है, बुद्धिमान है और मनुष्य मनुष्य की अपेक्षा बहुत दूर तक भोजन को अपने मुख में रखे रहता है। परन्तु पीछे अपने माता पिता का सबकुछ सीखता है और होशियारी से भोजन निगल जान के विचार को प्रकट कर लेता है। मिस्टर प्रलेचर अपनी इस विषय की विचारों में यह बात स्थापित करते हैं कि यह स्वाद है जो हम बूचने और चूने की क्रिया में मुख देता है। योगियों का यह उदाहरण है कि स्वाद भी इस विषय में बहुत बुद्धिमान है, परन्तु हमारे कतिचित् भी कोई और रंग है, भोजन को मुख में रखे रहने, उसे जिह्वा से हवा-उपर से, उसे दोनों से दूध समझने, और पीने पीने होने दुर्लभ अपेक्षित हो जाने हैं। एक अविश्वसनीय मुद्दे का बोध होता है। प्रलेचर स्पष्ट करते हैं कि भोजन को समझने में सब कुछ लक्षित हो रहा है

विषय हमारे सामने यही उपस्थित है कि भोजन में प्रयत्न है जिसकी मानव शरीर को आवश्यकता है, और विषय जिसे हुई रीति से ग्रहण कर सकता है, अर्थात् भोजन को शुद्ध द्रव्य अच्छी तरह पीस डालने से और प्राण को दाँतों, जिह्वे और मुख की नाड़ियों द्वारा खींचने से ।

अब भोजन को दाँतों से खूँचने और उसमें सार मिलाने की प्रक्रिया में जो प्रकृति दोहरा काम लेती है उस पर विचार करना चाहिए। प्रथम तो प्रकृति का यह उद्देश है कि भोजन का प्रत्येक अणु अच्छी तरह से पीस डाला जाय और उसमें सार मिल जाय ताकि शरीर के भीतर घोंटा जाय ; और इस विषय में कोई भी गूढ़ि हुई कि प्राण में घाया पड़े। अरुणी तरह से कौनसा ही मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जो कि रहन-सहन की कृत्रिम आदतों के तज्जाता से, जो इस सम्पत्ता के कारण उपस्थित हो गए हैं, भुजका दी गई है। भोजन को दाँतों से पीस जाना हमजिसे आवश्यक है कि वह आगामी से प्राप्त जा सके और हमजिसे भी कि उसमें सार तथा आमाशय और वरुणा शैतदियों के पाचक द्रव प्रत्यक्ष सके। इससे सार का प्रसार बढ़ता है और पाचन-क्रिया-कलाप का बहुत जरूरी अंग है। भोजन में सार का गुप्त जाना पाचन-क्रिया का अंग है, और सार का प्रत्यक्ष प्रयोग प्रकृतिक प्रवृत्ति है जो अल्प अर्थों में नहीं हो सकता। य

अगर अोजन ( प्राणभरित भाव ) का परिवर्तन होता है जो हुन ही आता-रुका होता है । प्यारे का धुवन अोजन में इतना रा रहता है कि उसमें मनुष्य शिर में पैर तक पुष्कलि हो जाता । हम जिन चीजों का वर्णन किया आहने हैं उसका यह भी कारण है । उदाहरण है । जो मुख हमें सुनामिष और स्वाभाविक तरीक़ों में रोजन करने में मिळता है वह बंधन स्वाद ही का मुख नहीं है, किन्तु अधिकतर हम संवेदना में अल्प हुआ है जो कि प्राण के प्रहण करने में होती है, और जो बहुत कुछ ऊपर दिष्ट हुन उदाहरणों में समता रखता है ; यद्यपि हम जानते हैं कि जब तक आप शक्ति के दोनों विचारों की समता का अनुभव स्वयं न कर लेंगे तब तक आप इस उदाहरण पर हँसी करेंगे ।

जब आप मिथ्या भोजनातुरता को ( जिसे भूख से भूत समझा जाता है ) दमन कर लेंगे तब आप बिना खोटे हुए गेहूँ की रोटी के सूखे टुकड़े को भी खूब मसल-मसलकर खावेंगे, और उसमें भरे हुए पोषण के कारण उसके केवल स्वाद ही से सतोष न पावेंगे, किन्तु उस संवेदना का भी मुख उठावेंगे जिसके विषय में हमने इतना भी अगाकर वर्णन किया है । मिथ्या भोजनातुरता की आदत छोड़ने और प्रकृति के उद्देश पर आने में थोड़े अभ्यास की जरूरत है । जो भोजन जितना ही अधिक पुष्टिकारक होगा, वह स्वाभाविक रूप से उतना ही अधिक तृप्तिकारी होगा, और यह भी एक बात स्मरण करने के योग्य है कि भोजन में जितनी ही पोषण शक्ति होगी उतना ही उसमें अन्नप्राण भी होगा—प्रकृति की चानुरी का एक और उदाहरण ।

योगी बहुत धीरे-धीरे अपना भोजन खाता है, प्रत्येक प्रास को तब तक मसलता रहता है जब तक उसमें उसे तृप्ति मिळती रहती है । अधिकांश दशा में तब तक उसे तृप्ति मिळती रहती है जब तक



शंश प्रतीत हो तब तक समझना चाहिए कि अभी रम्योत्तम  
निकालने के लिये शेष है; और हमारा भी विश्वास है कि सर  
बहुत सही है। परंतु हम लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि  
यदि हम अवसर दें तो, ऐसा बाध होना है, जो हमें भोजन  
निगल जाने में एक प्रकार का ऐसा तोप देता है जो तब तक  
रहता है जब तक कि भोजन में का कुल या क़रीब-क़रीब कुछ  
नहीं खींच लिया जाता। आप देखेंगे, यदि आप योगी कंधे  
सरीक़ों को ग्रहण करेंगे कि आपका जो मुँह में से भोजन को  
न चाहेगा और उसे तुरंत निगल जाने के स्थान पर आप उसे  
शरीर में मुँह में धुलाते रहेंगे और अंत में आपको एकदम  
कि सब ग्राम ग्राम्य होकर भीतर चला गया। यह मजा  
सादे भोजन में और उस भोजन में जो आपका बहुत ही  
एक समान प्रतीत होगा।

इस मजा का वर्णन करना अशक्य है; क्योंकि इस मजा का  
अनुभव ही साधारण लोग नहीं कर सकते हैं। इसके समझने में तो  
कुछ हम कर सकते हैं वह यह है कि इसकी उपमा हम अन्य दे  
ही संवेदना से दें, यद्यपि हमें आशंका है कि इसे आप लोग  
जनक समझेंगे। आप उस संवेदना को जानते हैं जो ऐसे मनुष्य के  
पास घटने से होती है जो बड़ा भोजनी है, और जिससे आप शरीर  
अपनी जीवत ग्रहण कर रहे हैं। कुछ मनुष्यों के देह में इतना अधिक  
प्राण होता है कि वे अमान्य उमर में बड़ा बड़ा करते हैं, और  
उने दूसरों को दिवा करते हैं, जिसका वह परिणाम होता है कि  
दूसरे उमर के लोग घटने को बहुत पसंद करते हैं, और उस मनुष्य से  
दूषक नहीं हुआ चाहते, क्योंकि उमर के दूषक होने को जनक भी  
नहीं चाहता। यह एक बड़ा कारण है। दूसरा उदाहरण उम मनुष्य  
का है जिस पर आपका प्रेम हो। ऐसी बात है

प्राण के नष्ट-नष्ट अणुओं को पेश करता जाता है और नादियाँ उन्हें सींचती जाती हैं। योगी लोग भोजन को एक अर्से तक मुख में रखते रहते हैं, उसे धीरे-धीरे अच्छी तरह से मसज्ज करने हैं, और उसे ऊपर कढ़ी हुई अनिष्ट्वाहूर्त्त क्रिया से भीतर जाने का अवसर देते हैं, और प्राण ग्रहण से जो मज्जा मिलता है, उसका पूरा सुख उठाते हैं। आप इसके भावना रख कर सकते हैं, जब आपको इस प्रयोग के करने का अवसर मिले और आप कुछ खाने की थोड़ी चीज अपने मुख में ले लें और धीरे-धीरे उसे मसज्जने लगे और उसे अवसर दें कि वह शनैः-शनैः आपके मुँह में शक्कर की भाँति गल-कर भीतर गायब हो जाय। आप यह देखकर आश्चर्यित होंगे कि यह अनिष्ट्वापूर्व घोंटने की क्रिया कैसी खूबी के साथ हुई है—भोजन शनैः-शनैः अपने अन्नराश को नादियों को देकर आप गल जाता है और धीरे-धीरे आमाशय में पहुँच जाता है। उदाहरण के लिये रोटी का एक टुकड़ा लीजिए और यह विचार करके उसे खूब मसजिए कि वृत्तें बिना निगले वह किनो देर तक मुँह में ठहरता है। आपको मालूम हो जायगा कि यदि आप उसे बहुत देर तक मसजते रहेंगे, तो आपको उसके निगलने का कष्ट उठाना ही न पड़ेगा; और वह पतली लेई की भाँति होकर ऊपर लिले हुए तरीके से धीरे-धीरे आप-से-आप भीतर चला जायगा। और रोटी का वह छोटा टुकड़ा, अपने ही बराबर के दूसरे टुकड़े की अपेक्षा जो मामूली तौर से थोड़ा-बहुत फेंच-झँचकर निगल लिया गया है, दूना पोषण और तिगुना प्राण देगा।

दूसरा अनोखक उदाहरण दूध का लीजिए। दूध द्रव होता है और इसलिए इसके मसजने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती जैसी कि ठोस भोजन के लिये हुआ करती है। परंतु बात यही रही (और सावधानी से सज्जना करने पर अच्छी तरह से प्रमाणित

उसके मुँह में भोजन रहता है, क्योंकि प्रकृति की अर्जितता भोजन को शनैः-शनैः गुलाबर भीतर छोड़ देती है। योगी जो जयकों को धीरे-धीरे घुमाता है, और जिह्वा को खरपर देता है भोजन को सूख आलिंगन करे, और दाँत प्रेम से भोजन में हों; जानता है कि हम भोजन से अपने मुँह, जिह्वा और दाँतों की शक्ति द्वारा अन्न-प्राण खींच रहे हैं, और हम उत्तेजित और शक्तिमान् होते हैं, और अपने शक्ति-भंडार को भर रहे हैं। माय-ही-माय बाह्य में जानता है कि हम भोजन को समुचित रीति से आमाशय और पक्की अंतर्दियों के पाचन योग्य बना रहे हैं और शरीर को उसकी स्वभाव लिये अच्छी सामग्री दे रहे हैं।

वे लोग जो योगियों के तरीक़ों से भोजन करते हैं, अपने भोजन में से साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पोषण की अधिकतर मात्रा पाँते, क्योंकि प्रत्येक प्रास से अधिक-से-अधिक पोषण खींचा जाता है और उस मनुष्य के मामले में, जो अपने भोजन को अधूरा कुच कर और अधूरा लार मिश्रित करके निगल जाता है, उसका भोजन बहुत-सा बर्बाद जाता है और सबती-गलती हुई दशा में शरीर से बाहर कर दिया जाता है। योगी के तरीक़ों में कोई चीज़ रही बर्बाद कर नहीं फेंकी जाती जब तक वह दर असल रहर नहीं हो जाती भोजन में से पोषण का एक-एक ज़रूरी तक खींच लिया जाता है, और अधिकांश अन्नप्राण उसके परमाणुओं ही से खींचा जाता है। भोजन खपाने से ज़र्रे-ज़र्रे हो जाता है और लार का द्रव उसके धंग-धंग में भुल जाता है, धार के पाचनकारी धंग अपना आवश्यक कार्य करते हैं, और अन्य द्रव (जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है) अन्न पर ऐसा असर डालने हैं कि उसमें का प्राण रगतंत्र हो जाता है और नार्दी-जाल द्वारा खींच लिया जाता है। जयकों, जिह्वा और दाँतों की शक्ति से जो भोजन संशोधित होगा है, वह नादियों के सम्मुख

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास ६५

प्राण के नए-नए अणुओं को पेश करता जाता है और नादियों उन्हें मीचती जाती हैं। योगी लोग भोजन को एक अर्ध तक मुख में रखे रहने दें, उसे धीरे-धीरे अच्छी तरह से ममत्रा करते हैं, और उसे ऊपर कही हुई अनिच्छापूर्व क्रिया में भीतर जाने का अवसर देते हैं, और प्राण ग्रहण में जो मज्जा मिलती है, उसका पूरा सुख उठाने हैं। आप हमकी भावना सब कर सकते हैं, अब आपको इस प्रयोग के करने का अवसर मिले और आप कुछ खाने की थोड़ी चीज अपने मुख में ले लें और धीरे-धीरे उसे मसलने लगे और उसे अवसर दें कि वह शनैः-शनैः आपके मुँह में शरकर की भाँति गल-कर भीतर गायब हो जाय। आप यह देखकर आश्चर्यमित होंगे कि यह अनिच्छापूर्व घोंटने की क्रिया कैसी श्रुषी के साथ हुई है—भोजन शनैः-शनैः अपने अन्नप्राण को नादियों को देकर आप गल जाता है और धीरे-धीरे आमाशय में पहुँच जाता है। उदाहरण के लिये रोटी का एक टुकड़ा लीजिए और यह विचार करके उसे श्रुष मसलिये कि देखें बिना निगले यह कितनी देर तक मुँह में ठहरता है। आपको मालूम हो जायगा कि यदि आप उसे बहुत देर तक मसलने रहेंगे, तो आपको उसके निगलने का कष्ट उठाना ही न पड़ेगा, और वह पतली लेई की भाँति होकर ऊपर लिखे हुए तरीके से धीरे-धीरे आप-से-आप भीतर चला जायगा। और रोटी का वह छोटा टुकड़ा, अपने ही बराबर के दूसरे टुकड़े की अपेक्षा जो मामूली तौर से थोड़ा-बहुत कँच-काँचकर निगल लिया गया है, दूना पोषण और तिगुना प्राण देगा।

दूसरा मनोःशुद्ध उदाहरण दूध का लीजिए। दूध द्रव होता है और हमलिये इसके मसलने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती जैसी कि ठोस भोजन के लिये हुआ करती है। परंतु बात यही रही (और साधवानी में सज्जन करने पर अच्छी तरह से प्रमाणित

उसके लिए भी भोजन करना है, क्योंकि प्रकृति की प्रवृत्ति में भोजन को शरीर-शरीर पुनराकर भोजन पोष देनी है। कोई एक जवनों को भीरे धार गुमाना है, और मिट्टी को चरपा देना है जिस भोजन को एक चाविगन करे, और वृत्ति प्रेम में भोजन में हों; व जानता है कि हम भोजन में अपने अंदर, मिट्टी और दोनों की शक्ति द्वारा अन्न प्राप्त कर रहे हैं, और हम उन शक्ति और शक्तिमान् होने हैं, और अपने शक्ति महार को भर रहे हैं। माय-माय बरदा है जानता है कि हम भोजन को समुचित रीति में सामान्य और अन्य अंगदियों के पावन योग्य बना रहे हैं और शरीर को उमदी रखने जिसे अपना मामला दे रहे हैं।

ये लोग जो योगियों के तरीक़ों में भोजन करते हैं, अपने भोजन में से साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पोषण की अधिकतर मात्रा पाते, क्योंकि प्रत्येक प्रातः से अधिक-से-अधिक पोषण स्वीकृत जाता है और उस मनुष्य के मामले में, जो अपने भोजन को अपूर्ण कुछ कर और अपूर्ण स्तर मिश्रित करके निगल जाता है, उसका भोजन घटुत-सा पचता जाता है और सहता-गलती हुई दशा में शरीर से बाहर कर दिया जाता है। योगी के तरीक़ों में कोई चीज़ रही बना कर नहीं पेंकी जाती जब तक वह दर असल रही नहीं हो जाती, भोजन में से पोषण का एक-एक ज़रा तक खींच लिया जाता है, और अधिकांश अन्नप्राण उसके परमाणुओं ही से खींचा जाता है। भोजन चमाने से ज़र्रे-ज़र्रे हो जाता है और स्तर का द्रव उसके अंग-अंग में घुल जाता है, स्तर के पाचनकारी अंग अपना आवश्यक कार्य करते हैं, और अन्य द्रव (जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है) अन्न पर ऐसा असर डालते हैं कि उसमें वा माय स्वतंत्र हो जाता है और नादी-नाल द्वारा खींच लिया जाता है। अबदों, जिह्वा और गालों की जो भोजन संचालित होता है, वह नादियों के समुत्प



हुई) कि यदि एक अश्वगोश नृप गले में ले होकर वे मेरा दिया आन, तो वह दण्ड उगने ही नृप की घोड़ा, जो पंरे हो नृप गला है और अश्व-भा मुँह में शरकर आन से पुमन्नास गला है, पाने से अश्विक योगन और अश्वगोश नहीं देना। बस जो वे शरकर अश्वगोश योगन से जब नृप लीजना है, तो पर मुँह और जीम को पुमन्ना-पुमन्नाकर नृप लीजना है और उमड़े मुँह से भीतर की स्थितियों से दण्ड गला करना है, जो नृप में के प्राण की मुदनास देना आना है और नृप में मिथित होकर रासायनिक किया से उमड़े पावन-पावक बनाना जाता है; बस कभी नृप को पिना पुमन्ना, नहीं निगलना; यद्यपि वह बात ही है कि जब तक बच्चे के मुँह में दाँत नहीं निकलते, तब तक उमड़े मुँह से मखा नार नहीं गलता।

हम अपने शिष्यों को सलाह देते हैं कि अगर किसी हुई रीति से जीव करें। जब आपको भीक मिले, थोड़ा समय निकास खीजिए; तब धीरे-धीरे भोजन को मसलते हुए उसे मुख ही में गल जाने का अवसर दीजिए; और भोजन को तुरन्त निगल न जाएँ। यह भोजन का गलने देना सभी संभव होगा, जब कुचलते-कुचलते वह मलाई की भाँति हो जायगा, और बहुत अच्छी तरह से लार से मिल जायगा; और उसके कण अर्धपाचित दशा को पहुँच जायेंगे और उनमें से अन्नप्राण कुछ निकल जायगा। एक बार एक सेब या कोई फल इसी प्रकार खाने का बल कीजिए, उसी थोड़े ही खाने में आपको काफ़ी भोजन खाने की वृत्ति हो आयेगी, और आपको कुछ-कुछ बड़ी हुई शक्ति का अनुभव होगा।

हम समझते हैं कि योगी के लिये भोजन में इतना समय लेना और इस प्रकार खाना दूसरी बात है, और कामकाजी गृहस्थ के लिये दूसरी बात है; और हम अपने पाठकों से यह आशा

नहीं करते कि वे अपनी बरमों की आदत को एकदम बदल देंगे । परंतु हमें निश्चय है कि इस प्रकार भोजन करने में थोड़ा-सा भी अभ्यास करने से मनुष्य के ऊपर परिवर्तन आ जयगा; और हम जानते हैं कि इसी तरह थोड़ा-थोड़ा बख करते रहने से प्रतिदिन के भोजन के समझनेवाले तरीके में एक स्वामी उन्नति हो जायगी । हम यह भी जानते हैं कि शिष्य को एक नई स्वामी मालूम होगी—भोजन में अधिक स्वाद मिलेगा—और शिष्य “मेम” से भोजन करना सीख लेगा और प्राण को यों ही छट से निगल न जायगा । जो मनुष्य इस तरीके, का कुछ दिन अनुसरण करेगा, उसके स्वाद की एक नई दुनिया खुल जायगी और पहले की अपेक्षा अब भोजन करने में उसे बहुत अधिक सुख मिलेगा, उसके भोजन का पावन बहुत बढ़ा होने लगेगा और उस का जीवत बढ़ जायगा; क्योंकि उसके अधिक मात्रा में पोषण और अन्नप्राण मिलेंगे ।

जिनके पास समय और अवसर है कि हम तरीके को पूरा-पूरा बर्त सकें, उनके लिये संभव है कि वे थोड़ा भोजन से बहुत अधिक ताज्ज और पोषण प्राप्त कर सकें; क्योंकि उनका स्वादा दुबला अब बाँबाद न होगा; इसकी परीक्षा उनके मज की जीभ से हो सकती है । जो बड़बड़मी और नाताज्जना के शयी हैं वे तो अवरध-अवरध इस तरीके को पावन करके इसका लाभ उठवें ।

योगियों को खाना अल्पभोजी जानते हैं; परंतु वे ही पूरे तरह से पूर्णपोषण की महिमा और आवश्यकता समझने हैं, और शरीर को सर्वश्रेष्ठ और रचनाकारों सामग्रियों से युक्त रखने हैं । इसका रहस्य यह है कि वे भोजन में के पोषण को बढ़ाई नहीं करने, उसके सब पोषण को लीच लेते हैं । वे अपने शरीर में रहा पदार्थों का बोझ नहीं छोड़ रहते । जो शरीर की कज की गति में अवरोध होने के कारण उसके हल करने में रुक्ति का कारण हो । वे थोड़े-से-थोड़े भोजन से



हुई) कि यदि एक अथवा दो नूथ गले में से होकर नीचे में वा  
 दिया जाए, तो वह उग उगने ही नूथ की अवेदा, जो चारे की  
 चूमा गया है और चण-भर मुँह में रखकर जोम में घुमजाया गया  
 है, आधे से अधिक पोषण और अन्नप्राण अभी नहीं देता। बड़ा जो  
 के स्नान अथवा सोतज से जब नूथ खींचता है, तो वह मुँह और  
 जोम को घुमला-घुमलाकर नूथ खींचता है और उसके मुँह के  
 भीतर की क्रियाओं से द्रव बना करता है, जो नूथ में के प्राण को  
 छुटकारा देता जाता है और नूथ में मिश्रित होकर रामायनिक  
 क्रिया से उसे पाचन-योग्य बनाता जाता है; यथा कभी नूथ  
 को बिना घुमजाए नहीं निगलता; यद्यपि यह बात ठीक  
 है कि जब तक बच्चे के मुँह में दाँत नहीं निकलते, तब तक उसके  
 मुँह से सखा जार नहीं खेचता।

हम अपने शिष्यों को सलाह देते हैं कि ऊपर लिखी हुई रीति से  
 जाँच करें। जब आपको मौका मिले, थोड़ा समय निकाल लीजिए।  
 तब धीरे-धीरे भोजन को मसलते हुए उसे मुख ही में गल जाने का  
 अवसर दीजिए; और भोजन को तुरत निगल न जाए। यह भोजन  
 का गलने देना तभी संभव होगा, जब कुचलते-कुचलते वह मलाई  
 की भाँति हो जायगा, और बहुत अच्छी तरह से जार से मिल  
 जायगा; और उसके कण अर्धपाचित दशा को पहुँच जायेंगे और  
 उनमें से अन्नप्राण कुछ निकल जायगा। एक बार एक सेब या  
 कोई फल इसी प्रकार खाने का यत्न कीजिए, उसी थोड़े ही खाने में  
 आपको काफ़ी भोजन खाने की शक्ति हो जायगी, और आपको कुद-  
 कुद बढ़ी हुई शक्ति का अनुभव होगा।

हम समझते हैं कि योगी के लिये भोजन में इतना समय लेना  
 और इस प्रकार खाना दूसरी बात है, और कामकाजी गृहस्थ के लिये  
 दूसरी बात है; और हम अपने पाठकों से यह आशा

# ग्यारहवाँ अध्याय

## भोजन

साधारण्य का विचार हम बिनाकुल अपने शिष्यों के पसंद पर छोड़े देने हैं। अपने जिसे तो हम प्राप्त तीर का भोजन पसंद करते हैं, यह विरवास करके उनके लाने से उत्तम-से-उत्तम फल प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि जिंदगी-भर की क्या कई पीढ़ियों की, यही हुई आदत एक दिन में नहीं बदल सकती। और मनुष्य को अपने ही तज्जब और ज्ञान से काम करना, दूसरों की आज्ञा से काम करने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। योगी लोग निरामिष भोजन पसंद करते हैं, स्वास्थ्य के हित के लिये और मांस-भोजन से पूर्ण वर्द्धन के कारण भी अपने कामिल योगी फल आदि और बिना बूटे हुए गोदू की सारी रोटी अधिक पसंद करते हैं। परंतु जब वे उन लोगों की संगति में पड़ जाते हैं, जिनकी भोजन-विधि और ही है, तब वे अवसर के अनुकूल अपने को थोड़ा-बहुत बना खेने में बहुत परशेष नहीं करते; और अपने को दिती के ऊपर भार नहीं बनाते, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम मछी भोजि मगलकर लाना लार्सेगे, तो हमारा आमाशय हमारे भोजन की अच्छी सुधि छे खेगा। सब बात तो यह है कि वर्तमान भोजनों की कुछ दुष्प्राय चीजें भी लार् जा सकती हैं, यदि ऊपर जितनी हुई विधियों का अच्छी तरह से प्रयोग किया जाए।

हम हम अच्छा को अनुमतिर योगी के आच में बिलने हैं। हमारी इच्छा अपने शिष्यों पर भोजन विषयक अधिक द्वाय हाजने की रही है। मनुष्य को सब अपनी बुद्धि और तज्जब से काम

अधिक-से-अधिक पोषण प्राप्त करते हैं—थोड़ी सामग्री से अधिक अन्नप्राण खींचते हैं।

यदि आप पूरा-पूरा इस विधान को न बतं सकें, तो भी आप ठगर दिए हुए तरीकों से बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं। हमने साधारण मोटी-मोटी बातें लिख दी हैं—शेष आप स्वयं ही कर लीजिए—अपने लिये जाँच कर लीजिए—यही तरीका किसी बात को किसी तरह सीखने का है।

हमने इस किताब में कई जगहों पर बतलाया है कि प्राण के खींचने में मानसिक अवस्था का प्रधान प्रभाव पड़ता है। पर बात हवा ही से प्राण खींचने के विषय में नहीं है, बल्कि भोजन से भी प्राण खींचने के विषय में भी है। भोजन करते समय, सर्वदा यह प्रयास बना रहे कि "हम भोजन के प्राप्त का कुल प्राण खींचे लेते हैं" और इस प्राण की भावना के साथ-साथ पोषण की भावना भी रखिए, तब आपको ऐसा करने से, न करने की अपेक्षा, बहुत अधिक लाभ होगा।

---

# ग्यारहवाँ अध्याय


## भोजन

साधारणतया का विचार हम बिलकुल अपने शिष्यों के पसंद पर छोदे देने हैं। अपने जिसे तो हम छान सौर का भोजन पसंद करते हैं, यह विराम करके उनके खाने से उत्तम-से-उत्तम पक प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि जिंदगी-भर की क्या कई चीजों की, पक्षी दुई आदत एक दिन में नहीं बदल सकती, और मनुष्य को अपने ही तजर्बे और ज्ञान से काम करना, दूसरों की आज्ञा से काम करने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। योगी लोग निरामिष भोजन पसंद करते हैं, स्वास्थ्य के दिन के जिसे और मान-भोजन से पूर्वी पहेंड़ के कारण भी अपने कामिल योगी पक आदि और बिना बड़े हुए मोहों की भांती रोटी अधिक पसंद करते हैं। परंतु जब वे उन लोगों की संगति में पड़ जाते हैं, जिनकी भोजन-विधि और ही है, तब वे अचानक अपने को घोड़ा-बटुन बना देने में बहुत परोपेक्ष नहीं करते, और अपने को किसी के ऊपर भार नहीं बनाते, क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम मछी भोजन मगलकर खाना खाएंगे, तो हमारा आमात्य हमारे भोजन की अपनी मुक्ति से होगा। सब बात तो यह है कि वर्तमान भोजनों की कुछ दुष्प्राय चीजें भी खाई जा सकती हैं, यदि ऊपर जितनी दुई विधियों का अच्छी तरह से प्रयोग किया जाए।

हम हम अपनाप को सुभाजित योगी के साथ मिलाने हैं। हमारी दृष्टि अपने शिष्यों पर भोजन विषयक अधिक दृष्टि रखने की गयी है। मनुष्य को स्वयं अपनी बुद्धि और तजर्बे से काम



समझेंगे, पर हम करें क्या—तबयों में हमारे कथन की पुष्टि होगी।

यदि हमारे पाठकों का जो अनेक प्रकार के भोजनों के हानि-लाभ के विचारने में लगना हो, तो उन्हें हम विषय की कुछ ठन चप्पड़ों किताबों को पढ़ना चाहिए, जो हाथ हो में प्रकाशित हुई हैं। परंतु उन्हें हम विषय को खूब चारों ओर से मोच खेना चाहिए और किसी लोचक के द्वारा प्रवर्तित मत पर अंधे की भाँति न विश्वास कर लेना चाहिए। हमारे सामने जो भोजन आते हैं, उनकी हानि-लाभ के विषय में चप्पड़ी किताबों के पढ़ने से शिक्षा ही मिलेगी और ऐसी शिक्षा से शनैः-शनैः हमारे भोजन-दृष्टि भी परिवर्तित होने लगेंगे। परंतु ऐसे परिवर्तन विचारों और तबयों के द्वारा होने चाहिए न कि किसी मतवादी के केवल कह देने से। हमारी यह राय है कि हमारे शिक्षा इन प्रश्नों पर अवसर विचार दिया करें कि हम अधिक भाँस तो नहीं खा रहे हैं ? हम अधिक चर्बी तो नहीं खा रहे हैं ? हम काफ़ी कम खाते हैं कि नहीं ? क्या हमारे भोजन में बिना कूटे गेहूँ का कुछ रोटी रहे, तो अच्छा न होगा ? क्या हम बहुत पेचीदा तरीकों से पचाए खीर और खीर लानों की ओर तो नहीं मुकने जा रहे हैं ? यदि हममें कोई लाने के विषय में सखार पड़े, तो हम तो यही कहेंगे कि अनेक प्रकार का भोजन करो, पर पेचीदा रीतियों से पचाए हुए लाने से बचकर रहो, बहुत चर्बी मत खाओ, तख्तेवाली कढ़ाही से प्रबर्तार रहो, बहुत भाँस मत खाओ, प्रातः कर सुझर और रात का दोस तो कभी मत खाओ, धीरे-धीरे अपने भोजन की प्रवृत्ति को सोंधे-सादे लाने की ओर मुकाफ़ो, प्रमीर से बनी हुई रोटियों आदि को कम करो, गरम चपातियों को तो अपने भोजन से प्रातिज  कर दो, लाने चक्कर खूब धीरे-धीरे मसखो जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं;

करना चाहिए, ऊपर से दबाव डालना ठीक नहीं। यदि कोई मनुष्य जिसी-भर में मांस खाना आना हो, तो उसके लिये त्रिना मांस व भोजन करना बहुत ही कठिन हो जायगा; वैसे ही वो मनुष्य पशु-दुग्धा भोजन करता आया है, उसके लिये बिना पशुआ भोजन व आदि का खाना भी बहुत कठिन पड़ जायगा। आपसे हमें निश्चितता ही कहना है कि अगर हम विषय पर थोड़ा शौर का लें, तो जीवी आरकी प्रवृत्ति पड़े, वैसा करें; पर हाँ, यदि भोजन को बढ़ाने जायें, तो बहुत अशुद्ध है। यदि आप अपनी प्रवृत्ति ही पर भरोसा करेंगे, तो यह प्रायः आपसे वही वस्तु पसंद करावेगी, जो उस समय आपके लिये आवश्यक होगी; और हम प्रवृत्ति पर भरोसा करना, खाद्यान्ना के कठिन नियमों के पालन की अपेक्षा अशुद्ध समझते हैं। जितना आपको भावे आप खाइए, परंतु उसे धीरे-धीरे प्रबल कर लिये और अपने पसंद का प्रयोग बहुत-सी चीजों में कीजिए। इस अध्याय में कुछ ऐसी बातों का जिक्र करेंगे, जिन्हें बुद्धिमान मनुष्य स्वयं छोड़ देंगे; परंतु हम केवल साधारण सलाह की भाँति कहेंगे। मांस-भोजन के विषय में हम जोगों का विश्वास है कि शरीर-शरीर मनुष्य को मालूम हो जायगा कि मांस उसका स्वाभाविक भोजन नहीं है; परंतु हम जोगों का विश्वास है कि मांस का खाना वा त्याग करना मनुष्य की अपनी ही प्रवृत्ति से उपजना चाहिए न कि ऊपर से दबाव डालकर उससे कराना चाहिए। क्योंकि जब ठमड़ी प्रबल हथड़ा मांस खाने की हो गई, तो वह वस्तुतः मांस खाने के समान ही हो गया। जब मनुष्य की गति और आने होती, तो ठमड़ी मांस खाने की हथड़ा समाप्त हो जायगी; परंतु जब तक वह समय न आवे, तब तक दबाव डालकर उससे मांस का खाना छुड़वा देना कोई लाभ न करेगा। हम जानते हैं इस कथन को बहुत-से पाठक प्रचलित मत का विषय

हम अपने शिष्यों को भोजन के विषय में ऐसा भीर नहीं बनाया चाहते कि वे प्रत्येक ग्राम लौक्य, मार्ग और उमका तन्त्र निर्णय करें। हम हमको आस्थाभाविक तरीका समझते हैं। हमारा विश्वास है कि ऐसे तरीके से भोजन से भय उत्पन्न होता है और प्रकृति-मानस शक्त-नाशक भावनाओं से भर जाता है। हम इसी तरीके को अपना समझते हैं कि भोजन के पदार्थ के विषय में साधारण सावधानी और विचार से काम लिया जाय और तब हम विषय से निर्भ्रत हो जाया जाय; और पोषण तथा साज्जत का ध्यान करते भोजन किया जाय, भोजन को उसी प्रकार समझा जाय, जैसे हम कह पाए हैं और यह जानते रहें कि प्रकृति अपने काम को अपनी शक्ति कर लेगी।

जहाँ तक संभव हो, प्रकृति के मार्ग ही पर चने रहो, अपने ही न जाओ; उसी के उद्देश को उचित और अनुचित के पहचान में अपना प्रमाण बनाओ। बलवान्, स्वस्थ मनुष्य अपने भोजन से डरता नहीं; उसी प्रकार जो मनुष्य स्वस्थ बनना चाहता है, उसे भी अपने भोजन से डरना न चाहिए। प्रसन्न रहो, ठीक सीस को, ठीक रीति से भोजन करो, उचित रीति से रहो, तो तुम्हें प्रत्येक प्रास पर भोजन की रासायनिक परीक्षा करने का मौका ही न मिलेगा। अपनी प्रकृति पर भरोसा करने में डरो मत, क्योंकि स्वाभाविक मनुष्य की वह पद-प्रदर्शिका है।



भोजन से डरो मत, यदि तुम उसे उचित रीति से खाओगे, तो वह तुम्हारी हानि न करेगा, बरतें कि तुम उससे डरोगे नहीं।

बेहतर होगा कि सुबह का पहला भोजन हलका हो; क्योंकि सखेरे शरीर में मरुमत्त होने की बहुत आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि शरीर रात-भर आराम करता रहा है। यदि संभव हो, तो नारतार पहले कुछ व्यायाम कर लो।

यदि आप उचित रीति से भोजन करने की स्वाभाविक रीति को धारण कर लेंगे और उचित भोजन का मज्ञा पा जायेंगे, तो अस्वाभाविक भोजनातुरता की जो आवृत्ति पड़ गई है, वह आप ही छुट जायगी और स्वाभाविक भूख लौट आयेगी। जब स्वाभाविक भूख लौट आयेगी, तो प्रकृति केवल पोषणकारी ही भोजनों को चुनेगी, और तुम उसी वस्तु को चाहोगे, जिसको तुम्हें उस वक्त पोषण के निमित्त अत्यंत आवश्यकता होगी। मनुष्य की प्रकृति, यदि अर्थ के उन पुरुषानों द्वारा बिगाड़ न की जाय, जो केवल भोजनातुरता उत्पन्न करते हैं, तो वह वही पथदर्शिका होती है।

अगर आपकी तबियत कुछ खराब हो, तो एक वक्त भोजन न करने में परावेष मत कीजिए, आमाशय को अवसर दीजिए कि जो कुछ उसमें है, उन्हीं को दूर करे। बिना खाए हुए मनुष्य कई दिन तक बिना किसी भोजन के रह सकता है, परंतु हम बहुत लंबे उपवास की सलाह नहीं देते। हमारी यह राय है कि तबीयत खराब होने पर आमाशय को थोड़ा आराम दे देना बुद्धिमानी है। हमने मांमत्त करनेवाली शक्ति को अवसर मिलता है कि वह उस रही पदार्थ को निहाल बाहर करे, जो दुःख दे रहा है। आप देखेंगे कि जानवर जब बीमार पड़ने हैं, तो खाना छोड़ देते हैं, और तब तक पड़े रहने हैं जब तक स्वास्थ्य न आ जाय, और रहस्य होने पर वे गाने लगते हैं। हम उनमें यह पाठ सीखकर आचारा उठा सकते हैं।



# चारहवाँ अध्याय

## श्रेष्ठ की सिचाई

एकयोग-शास्त्र का प्रधान नियम एक यह है कि जीवों के जिये जे प्रकृति का महान् दान अन्न है, वनका विचार-पूर्ण प्रयोग किया जाय। मनुष्य का स्वाभाविक लक्ष्य का कायम रखने के लिये पानी एक प्रधान साधन है, इस बात पर मनुष्य के ध्यान को धारणित करने की आवश्यकता भी न होगी, परन्तु मनुष्य कृत्रिम सामानों, धातुओं, रसायन आदि का ऐसा दास बन गया है कि वह प्रकृति के नियमों को भूल गया। वह प्रकृति के मार्ग पर लौट आये, तभी वह कुछ लाभ कर सकता है। छोटा बच्चा अपनी प्रवृत्ति द्वारा पानी के लाभ को जानता है, और पानी पाने के लिये बड़ी चाह दिखलाता है। परन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, त्यों-त्यों स्वाभाविक आवृत्ति से दूर होता जाता है, और अपने इर्द-गिर्द के बड़े खोंगों की शक्ति आवृत्ति में पड़ जाता है। यह बात विशेष करके उन खोंगों के संबंध में ठीक-ठीक घटती है, जो लोग बड़े-बड़े नगरों में रहते हैं, जहाँ की कड़ों का गरम पानी बेस्वाद होता है, और इस प्रकार वे शनैः-शनैः पानी के स्वाभाविक प्रयोग से वृथक् हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य पानी पीने (या यों कहिए कि न पीने) का और प्रकृति की माँग को मुक्तवी कर देने की गई आदतों को धारण कर लेते हैं; और अंत में प्रकृति की माँग की उन्हें चेतना तक नहीं होती। हम मनुष्यों को ऐसा कहते अक्सर सुनते हैं कि "हमें पानी क्यों पीना चाहिए; हमें तो प्यास नहीं लगती।" परन्तु यदि वे प्रकृति के मार्ग पर बने रहते, तो उन्हें अवश्य प्यास लगती; और उन्हें प्रकृति की माँग सुनाई



कौन मनुष्य होगा जो क्रमोर्वर शोध को पूरी मिश्रता में पानी देगा ? परंतु मनुष्य पीछे और जानवर को तो वह पदार्थ देता है जिसकी उनके किये अपनी साधारण चरु से ज्ञात समझता। परंतु अपने ही को जीवनदायक द्रव से संबंधित रखता है; पर इमका फल यैमे ही भोगेगा, जैमे बिना पानी पाए पीछे और वे फल भोगने हैं। जब चाय पानी पीने के प्रदन पर विचार करने हों, तो पीछे और शोध के इम उदाहरण को स्मरण रखें।

अब यह देखना चाहिए कि शरीर में पानी किस-किस काम में आता है, और तब विचारा जाय कि इम विषय में हम स्वाभाविक जीवन जी रहे हैं कि नहीं। प्रथम तो हमारे शरीर का ७० प्रतिशत भाग पानी है। इस पानी का कुछ भाग हमारे संगठन में प्रयुक्त होता है, और लगातार हमारे शरीर से वृष्य होता रहता है, और मितना पानी खर्च हो जाता है, उतना ही पानी फिर शरीर में भर देना चाहिए, यदि शरीर को स्वाभाविक दशा में रखना स्वीकार हो।

यह शरीर-चर्म चमड़े के अगणित छिद्रों द्वारा देहवाष्प और पसीने के रूप में लगातार जल छोड़ रहा है। पसीना उस शारीरिक द्रव मल को कहते हैं, जो चमड़े के छिद्रों से इतनी शीघ्रता से फँका जाता है कि बिंदुओं के रूप में एकत्रित हो जाता है। देहवाष्प उसे कहते हैं, जो पानी शरीर के छिद्रों से लगातार और अज्ञात रूप से वाष्प-रूप में निकलता करता है। जोंब से मालूम हुआ है कि यदि चमड़े से वाष्प निकलना बंद कर दिया जाय, तो जंतु मर जाय। पुराने रोम के एक स्नोडार में एक लड़का सोने के पत्रों से सिर से पैर तक आच्छादित करके एक देवता की मूर्ति बनाया गया था—सोने के पत्रों के हटाने के पहले ही लड़का मर गया; क्योंकि चार्निश और स्वर्ण-पत्रों के कारण उसके देह का वाष्प निकल न सका। प्रकृति की क्रिया

में बाधा पहुँची और शरीर उचित रीति से कार्य न कर सका, इस-  
लिये जीव ने उस मर्मि-कुट को छोड़ दिया ।

परमने और देहवाण्ड के सामायनिक विश्लेषण से जाना गया है  
कि ये देहयंत्र के रही पदार्थों से भरें हुए होते हैं—मल और परि-  
त्यक्त वष से भरपूर होते हैं—ओ, यदि देहयंत्र में काँजी पानी न  
पहुँचाया जाय, तो शरीर ही में रह जायें, उसमें विष उत्पन्न कर दें  
और परिणाम में रोग तथा मृत्यु को बुला लें । शरीर की मरम्मत  
का काम सर्वदा हुआ करता है, बेकार और रही रंगे हटाए जाया  
करते हैं और उनके स्थान में नई ताज़ी सामग्री उस स्थिर में से,  
जिसने भीजन में से नई सामग्री संग्रह की है, जुटाई जाती है । यह  
रही अक्षरयमेव शरीर से बाहर निवालों जानी चाहिए, और प्रकृति  
हमें निवाजने में श्रुत साधधान रहती है—यह देहयंत्र में बूढ़े-बरबट  
का रखना कभी भी पसंद नहीं करती । यदि यह रही पदार्थ देहयंत्र  
ही में रहने दिया जाय, तो वह विष हो जाता है और रोग की अवस्था  
उत्पन्न कर देता है । यह, बीटाए, उनके बीज, अंडे-बच्चे इत्यादि का  
व्यवस्थित और चरमाह बन जाता है । बीटाए स्वयं और  
रक्त शरीर-यंत्र को अधिक हानि नहीं पहुँचाते, परंतु उसी ही से जल-  
हंसी मनुष्य के संपर्क में आते हैं, और उसके शरीर को रही और बूढ़े  
बरबट तथा जाना प्रकार की गंदगियों से भरा जाते हैं, त्यों ही से  
वहाँ ही बड़ा हाजकर अपनी बारंबाई शुरू कर देते हैं । हम हम  
विषय में कुछ और बातें भी ज्ञान के विषय के साथ बतलावेंगे ।

हरदोष के प्रति दिन के जीवन में पानी सर्वप्रधान कार्य करता  
है । पानी हमें भीतर और बाहर दोनों ओरि उपयोग करता है । वह  
व्यापक को व्यापक रखने के लिये हमका उपयोग करता है, और जहाँ  
रोग के शरीर की स्वाभाविक बिदा को निर्बंध कर दिया है, वहाँ पर  
बिना भी व्यापक व्यापित करनेवाले इसके गुणों की स्तुति की

शिखा देगा है। हम इस किताब के कई भागों में पानी के प्रयोग का जिक्र करेंगे। हम इस विषय की मुख्यता को बताने शिष्यों के हृदय में अंकित कर दिया चाहते हैं; और उनसे आग्रह के साथ निवेदन करते हैं कि इस विषय को बहुत ही सीधा-सादा जान कर सुख न समझ बैठ, और इसे छोड़ न जायें। हमारे प्रति इस पाठकों में ये भाव को हम सलाह की बड़ी आवश्यकता है। इसे धाँक न जाइए। सुना आपने? हम आप हों से कहते हैं।

देहवाष्प और पसीना दोनों इसलिये भी आवश्यक हैं कि इनके साथ-साथ देह की अतिशय गर्मी भी निकलती जाय, और शरीर का ताप उचित दर्जे का बना रहे। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, देहवाष्प और पसीना दोनों देहयंत्र के निष्क्रमण पदार्थों को निकालकर केंद्रे में भी सहायक होते हैं। चमड़ा गुँथों को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न है। बिना पानी के चमड़ा इस काम को करने के लिये असमर्थ हो जाता है।

स्वाभाविक शुष्क १½ पाइंट से लेकर २ पाइंट तक पानी २४ घंटे में पसीना और देहवाष्प के रूप में छोड़ता है, परंतु जो मनुष्य बहुत शारीरिक परिश्रम का काम करते हैं, वे और भी अधिक पसीना छोड़ते हैं। आर्द्र वायुमंडल की अपेक्षा शुष्क वायुमंडल में मनुष्य अधिक गर्मी सहन कर सकता है; क्योंकि शुष्क वायुमंडल में देहवाष्प इतनी शीघ्रता से उड़ जाता है, कि गर्मी बहुत जल्द और संपरता से प्रारिज हो जाती है। फेफड़ों की राह से भी बहुत-सा पानी प्रवास द्वारा बाहर फेंका जाता है। मूर्च्छित्यों तो अपना कार्य करने में बहुत ही ज़ियादा पानी बाहर निकालती हैं; स्वस्थ पुरुष ३ पाइंट पानी इस प्रकार प्रारिज करता है। इतना पानी फिर भी भरना होगा, तभी शारीरिक यंत्र उचित रीति से कार्य कर सकता है।

करूँ कारों के लिये शरीर में पानी आवश्यक होता है। ठमका पृष्ठ कार्य तो यह है ( जैसा ऊपर वर्णन किया गया है ) कि शरीर में जो लगातार उच्चतन-क्रिया हो रही है, ठमसी अधिष्ठाता को रोके और ठमसी नियमित दृष्टि में रखे। यह उच्चतन-क्रिया फेंकड़ों द्वारा थोड़े हुए दवा के ऑक्सीजन के भोजन के कार्यन के संघर्ष में धाने में होती है। लायों-चरोहों देहाणुओं में यह उच्चतन क्रिया होती रहता है और यही देहतात दृष्टि करती है। धामी जब देहयंत्र में होकर गुहरा करता है, जब आपमाध्य को स्थापित रख सकता है और ताप का बहाव नहीं होने पाता।

शरीर पार्यर्तरी के लिये भी पानी को काम में लाता है। यह हृदिरोपवाहक और हृदिरागवाहक धमनियों और शिराओं में होकर बहा करता है, और हृदिरागुओं तथा अन्य पोषण पदार्थों को शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों और भागों में पहुँचाया करता है, जिसमें वे रचना के कामों में, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, लाए जायें। शरीरयंत्र में द्रव की कमी के कारण हृदि में भी कमी आ जायगी। हृदि की वायसी यात्रा में, जब वह हृदिरोपवाहक शिराओं द्वारा झौटता है, द्रव निष्कामी रहियों को प्रहृत करता आया है ( इन रहियों का अधिष्ठांश विष हो जाता, यदि शरीर ही में पड़ा रहता ) और उन्हें गुदों के मल-रवागा अवयवों, चमड़े के छिद्रों और फेंकड़ों के हवाजे करता है, जहाँ से विप्रेर्यी मृतक सामग्री—और निष्कामी रहियों बाहर फेंक दी जाती हैं। बिना पुष्कल द्रव के, यह कार्य प्रहृति के उद्देश के अनुसार नहीं भिद हो सकता। और बिना काशी पानी के, लाए हुए भोजन को मोटी, शरीरयंत्र की राल, पुरीय चर्मात् मैत्रा चर्बु तह गोला नहीं रह सकता कि आपानी में मलाशय में से शरीर के बाहर निकल जाय; और परि-शाम में कोहबद और उयकी मंगिनी सोमारियों हो जाती है। योगी



शिक्षा देता है। हम इस किताब के कई भागों में पानी के प्रयोग का जिक्र करेंगे। हम इस विषय की सुलभता को धारण करने वालों के हृदय में अंकित कर दिया चाहते हैं; और उनमें आसानी के साथ निवेदन करते हैं कि इस विषय को बहुत ही सीधा-सादा जान कर सुलभ न समझ बैठें, और इसे छोड़ न जायें। हमारे प्रति इस पाठकों में से सात को इस सलाह की बड़ी आवश्यकता है। इसे छोड़ न जाइए। सुना आपने? हम आप ही से कहते हैं।

देहवाष्प और पसीना दोनों इसलिये भी आवश्यक हैं कि उनके साथ-साथ देह की अतिशय गर्मी भी निकलती जाय, और शरीर का ताप उचित दर्जे का बना रहे। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, देहवाष्प और पसीना दोनों देहयंत्र के निष्क्रमण पदार्थों को निष्काशक केंद्रों में भी सहायक होते हैं। चमड़ा गुदों को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न है। बिना पानी के चमड़ा इस काम को करने के लिये सराफ हो जाता है।

स्वाभाविक पुष्क १½ पाइंट से लेकर २ पाइंट तक पानी २४ घंटे में पसीना और देहवाष्प के रूप में छोड़ता है; परंतु जो मनुष्य बहुत शारीरिक परिश्रम का काम करते हैं, वे और भी अधिक पसीना छोड़ते हैं। आर्द्र वायुमंडल की श्वेता शुष्क वायुमंडल में मनुष्य अधिक गर्मी सहन कर सकता है; क्योंकि शुष्क वायुमंडल में देहवाष्प इतनी शीघ्रता से उड़ जाता है, कि गर्मी बहुत जल्द और सरलता से प्रसारित हो जाती है। फेफड़ों की राह से भी बहुत-सा पानी प्रवास द्वारा बाहर फेंका जाता है। गुरुत्वियों का अपना कार्य करने में बहुत ही ज़िपाश पाने, बाहर निष्काशनी है; स्वल्प पुष्क ३ पाइंट पानी इस प्रकार प्रसारित करता है। इनका पानी स्त्रि भां भरना होगा, तभी शारीरिक यंत्र उचित रीति से कार्य कर सकता है।

देहतर है कि हम साफ़ शब्दों में इसे कह सकें । ये सब बातें केवल रानी की कमी के कारण होती हैं । ज़रा ध्यान तो कोजिए आप अपने शरीर के बाहरी भाग को साफ़ करने के लिये तो इतने डबल रहें और भीतर इतना मैले से भरा रहे ।

मानव शरीर के सब भीतरी भागों में पानी की आवश्यकता रहती है । उसे लगातार सिंचाई की ज़रूरत रहती है, और यदि यह सिंचाई देह को न दी जाय तो देह को उसना ही भोगना पड़ता है जितना मिर्चाई के बिना भूमि को भोगना पड़ता है । स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक देहानु, रेशा और अवयव को पानी की ज़रूरत है । पानी सब पदार्थों को गलाने और घुलाने देना होता है इसलिये शरीर-धंत्र को हम योग्य बनाए रहता है कि वह पानी से घुले भोजन में से पोषण प्राप्त और नितरण कर सके और धंत्र के निकम्मे पदार्थों को दूर बढ़ा सके । यह अक्सर कहा जाता है कि दधिर ही जीवन है, और यदि ऐसा है तो पानी को क्या कहना चाहिए, क्योंकि बिना पानी के दूध भी कुछ नहीं ।

पुरुषों के लिये भी पानी आवश्यक है कि वे अपना मूत्रोत्सर्जन का काम कर सकें । हमकी ज़रूरत सार पित्त, पैनक्रियाटिक द्रव, आमाशयिक द्रव, और शरीर के अन्य द्रवों की बनावट में भी पड़ती है, और इन द्रवों के बिना पाचनक्रिया बिलकुल असंभव है । आप पानी पीना बंद कर दीजिए कम इन सब आवश्यक चीज़ों में कमी आ जायगी । अब आपका आपका ध्यान में ?

आगर आप इन बातों को धीमे-धीमे की कल्पना समझकर इन पर संदेह करें तो आपको उचित है कि आप शारीरिक शास्त्र (Physiology) की किसी अच्छी दैशनिक किताब को पढ़ें, जो किसी परिचित पुरातन विद्वान् की लिखी हो । आपको हमारे कथनों की पुष्टि और समर्थन मिल जायेंगे । एक नामी शारीरिक विज्ञान-

लोग जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण बद्धकोष्ठ की बीमारियाँ इसी कारण होती हैं—वे यह भी जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण बद्धकोष्ठ की बीमारियाँ बहुत शीघ्र दूर हो जायँ, यदि मनुष्य पानी पीने की स्वाभाविक आदत पर आ जाय। हम हम विरर घ घर्षण एक पूरे अध्याय में करेंगे, परंतु इस विषय पर हम अपने शिष्यों का ध्यान बार-बार आकर्षित किया चाहते हैं।

पानी की काफ़ी मित्रदार, रुधिर की उचित उत्तेजना और उसके पूरे संचार के लिये भी चाहिए—शरीर के निकलने वाले द्रव्यों को दूर करने में भी जल चाहिए—शरीर द्रव हो भोजन-रस को खींचता और प्रमाता है, इसलिये भी जल की आवश्यकता है।

जो मनुष्य काफ़ी पानी नहीं पीते, उनके देह में रुधिर के एकत्रित होने में भी त्रामी रहती है। वे बिना रुधिर के सूखे व पीजे नष्ट आते हैं। उनका चमड़ा सूखा उवराकांत-सा दिखाई देता है और उनके शरीर से देहवाष्प बहुत कम निकलती है। उनकी सूत अस्वस्थ मनुष्य की-सी होती है, जिसे देखकर सूखे हुए फूल पाद आ जाते हैं, जिन्हें जब पानी में भिगोने की आवश्यकता होती है, जिससे वे भरे और स्वाभाविक नज़र आवें। ऐसे मनुष्य कृत्रिम-कृत्रिम सर्वदा बद्धकोष्ठ का रोग भोगा करते हैं—बद्धकोष्ठ के साथ-साथ और भी अगणित रोग उसके संग पैदा करने हैं, जैसा हम अन्य अध्याय में दिखावाँगे। उनका बड़ी घेंतड़ी अर्धांग मलाराम मंदा और मीले से भरा रहता है; और उनके शरीरपत्र में उसी मलाशय के एकत्रित मीले से रस पहुँचा करता है, जिसे कि बुरी और दुर्गंध रसाम द्वारा बाहर फेंकने का यत्न प्रकृति द्वारा किया जाता है; अथवा बद्धकोष्ठ पसीना या देहवाष्प या अस्वाभाविक मूत्र द्वारा बाहर निकालने की चेष्टा होता है। यह सुगन्ध पाद नहीं है; परंतु बिना इन बातों के बड़े आपका ध्यान इधर आवेगा हो नहीं, इसलिये

दो घाटे रोज़ ! ज़रा हमे इयाज़ तो कीजिए । आप लोग तो केवल एक पाइंट या इससे भी कम पानी रोज़ पीते हैं । अब भी आपको आश्चर्य है कि क्यों आप इतनी शारीरिक पीड़ाओं को भोगते हैं ? अब जो आप बदनझमी, बदनकोष्ठ, रुधिराभाव, निर्यज्ञतादि आदि अनेक रोगों को भोगते हैं तो हममें आश्चर्य ही क्या है । आपका शरीर उन अनेक प्रकार के विपरीत द्रव्यों से भर गया है, जिनको पानी की कमी के कारण प्रकृति गुर्दों और यमकों के छिद्रों द्वारा बाहर न फेंक सकी । इसमें भी क्या आश्चर्य है कि आपका महाशय पुराने अमे हुए सख्त मल से भरा हुआ है और आपके शरीर को विषाक्त कर रहा है, जिसको प्रकृति अपने नियमानुसार साफ़ न कर सकी क्योंकि आपने उसे पानी ही नहीं दिया जिससे वह मल की नालियों को साफ़ कर सके । आपके पास खार और अमाशयिक द्रव की कमी है तो हममें भी क्या ताज्जुब है ? बिना पानी के प्रकृति उन्हें कैसे बना सकती है ? आपका रुधिर अचूका नहीं है तो इसमें भी क्या आश्चर्य ? प्रकृति कहीं से जलपावे कि अचूका रुधिर बनावे ? आपकी नादियाँ भी अस्वरय और अगरीत हैं तो क्या आश्चर्य जब सभी चीज़ें पानी बिना बिगड़ रही हैं ? यद्यपि आप मूर्ख हो रहे हैं तो भी बेकारो प्रकृति, जहाँ तक कर सकती है, करने में नहीं चूकती । वह आपके शरीर ही से थोड़ा पानी खींच लेती है कि जिसमें कल बिलकुल बंद न होने पावे, परंतु वह अधिक पानी खींचने की हिम्मत नहीं करती—इसलिये वह बीच का मागं पकड़ती है । वह वैसा ही करती है जैसा आप कुछ का पानी सूखने पर करते हैं अर्थात् जैसे आप थोड़े पानी से ज़ियादा काम लिया चाहते हैं और अधूरा ही काम करके सम करते हैं वैसे ही प्रकृति भी करती है ।

योगी लोग पूरुष पुच्छल पानी निन्द पाते हैं तनिक भी नहीं

पात्रों में कहा है कि स्थोमाविक शरीर के रेशों में इतना पानी रहता है कि यह बात स्वयंमिद की मूर्ति कही जा सकती है कि "यत् देहाग्नौ पानी ही में रहने दें।" और यदि पानी ही नहीं है तो जीवन और स्वास्थ्य कैसे रह सकते हैं ?

आपको यह बतलाया गया है कि २४ घंटे में गुर्दे ३ पाइंट द्रव त्यागते हैं जिसमें शरीर के निष्क्रम्य द्रव्य और विभिन्न रासायनिक पदार्थ देह-यंत्र से गुर्दों द्वारा खींचकर एकत्रित रहते हैं। इसके अलावे हम दिखला आए हैं कि चमड़े द्वारा भी रेंड पाइंट से दो पाइंट तक पानी पसीना और देहवाष्प के रूप में स्त्रारित किया जाता है। इतने ही २४ घंटे के समय में १० से १५ औंस पानी फेकने की प्रवृत्ति द्वारा बाहर फेंकते हैं। मल के साथ मिश्रित भी कुछ पानी निकलता है। कुछ थोड़ा पानी आँसू, यक्ष्म आदि के रूप में और भी बाहर निकलता है। अब इतने बाहर निकले हुए पानी के स्थान में कितने पानी की जरूरत पड़ेगी ? आइए देखा जाए। कुछ पानी तो भोजन में मिश्रित भीतर पहुँचता है; वह भी श्वास करके श्वास-श्वास धारों में; परंतु यह पानी उस पानी की अपेक्षा कम होता है जो मल के निकासने में जाता है। अच्छे-बख्खे आचार्यों की सम्मति है कि १ क्वार्टर से ४ पाइंट तक पानी औसत दर्जे नित्य पुरुष और स्त्री का स्वास्थ्य रखने के लिये आवश्यक है जिससे स्त्रारित हुए पानी की कमी पूरी होती रहे। यदि इतना पानी शरीर को न दिया जायगा तो शरीर अपने ही यंत्रों का पानी खींचने लगेगा और मनुष्य सूखी सूरत, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, धारण करने लगेगा। परिणाम यह होगा कि शारीरिक सब क्रियाएँ निर्वल होने लगेंगी और मनुष्य भीतर और बाहर दोनों ओर से सूखने लगेगा, शरीर के कल-पुत्रों में आर्द्रता और सकाई की बहुत कमी हो जायगी।

रात को सोने के समय थोड़ी भोग एक ग्लास पानी पी लेते हैं, इस पानी को देह-यंत्र मींच लेता है और रात में इसे शरीर की सफाई के काम में लाता है; रक्षित मूत्र के साथ सबेरे बाहर निकाल दिए जाने हैं। एक ग्लास पानी से सबेरे जगने ही पी लेते हैं, इसका विचार यह है कि भोजन के पहले यह आमाशय को साफ़ कर देता है और जो तलपट और रही उभमें रात को जमा हो रहते हैं उन्हें धो डालता है। वे प्रत्येक भोजन के पहले भी एक-एक ग्लास पानी पी लेते हैं और थोड़ी सुलायम कसरत भी कर लेते हैं, इससे यह विश्वास करते हैं कि पाचन अवयव भोजन के लिये तैयार हो जावेंगे और स्वाभाविक मूत्र जग उठेगी। भोजन के समय भी थोड़ा पानी पी लेने में वे नहीं डरते (इसको पढ़ते हुए बहुत-से स्वास्थ्यार्थ भवभीत हो उठेंगे) परंतु इस बात से सावधान रहते हैं कि उनका भोजन पानी से धो न जाय। पानी से भोजन को भीतर निकलने में केवल छार ही जलमिश्रित नहीं हो जाता, किंतु, जब तक भोजन भीतर जाने के लिये तैयार नहीं रहता सभी भीतर खला जाता है और थोड़ी सी भोजन मसलनेवाली क्रिया में बाधा पहुँचाता है (इस विषय के अध्याय को देखो)। योगियों का विश्वास है कि इसी भौति भोजन के साथ पानी पिया हुआ हानिकारक होता है और इसी कारण से भी—नहीं तो प्रत्येक भोजन के साथ वे थोड़ा पानी पी लेते हैं कि आमाशय में भोजन सुलायम हो जाय और वह थोड़ा पानी आमाशयिक द्रव आदि को निचेंल नहीं बनाता।

बहुत-से हमारे पाठक गंदी चीजियों के साफ़ करने में गरम पानी की महिमा को समझने होंगे। हम ऐसी आवश्यकता के अनुसार गरम पानी के प्रयोग को अच्छा समझने हैं, परंतु हमारा इरादा है कि अगर हमारे शिष्य जीवन के योगी विधान का सावधानी से बर्ताव, जैसा हम किताब में दिया गया है, करेंगे तो उनका आमाशय

करते, वे इस बात से नहीं डरते कि अधिक पानी पीने से सूत्र पतल हो जायगा, जैसा वे सूत्रे मनुष्य द्वारा किया करते हैं। यदि प्राश्रयकता से अधिक पानी कमी पी लिया जाय तो प्रकृति उसे तुरंत और शीघ्रता से निकाल देगी। योगी लोग बरुं के पानी की ओर सम्यता का अस्वीकारिक समाधान है, चाहना नहीं करते—उनको मज्जिमो तक का टंडा पानी प्रिय है। वे जब प्यासे होते हैं तभी पानी पी लेते हैं—उनका प्यास भी स्वाभाविक (अधिक) होती है, जिम्को सूत्रे मनुष्यों की प्यास की भाँति जगाना नहीं पड़ता। वे बार-बार पानी पीते हैं, पर ग्रन्थाल रक्षित कि वे एक ही बार बहुत-सा पानी नहीं पी लेते। वे पानी को एकबारगी पेट में उड़ेज नहीं देते क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा अभ्यास स्वतिकांत, अस्वाभाविक और हानिकारक है। वे थोड़ा-थोड़ा करके कई बार पानी पीते हैं। जब काम करते रहते हैं तब पानी भरा बर्तन पास रखते हैं, और बार-बार उसमें से थोड़ा-थोड़ा पानी पिया करते हैं।

जिन लोगों ने बहुत बरसों से अपनी प्रवृत्तियों पर ध्यान नहीं दिया है उन्होंने पानी पीने को प्राकृतिक आवेग को भुक्तवा दिया है, और उसे फिर प्राप्त करने के लिये खासे अभ्यास की ज़रूरत है। थोड़े अभ्यास से बहुत जल्द पानी पीने की माँग पैदा हो जावेगी, और समय पाकर स्वाभाविक प्यास जग उठेगी। अच्छा उपाय यह है कि एक ग्लास पानी अपने पास रखिए और थोड़ी-थोड़ी देर पर उसमें से पी लिया कीजिए और साथ ही यह ग्रन्थाल भी करते जाइए कि आप क्यों यह पानी पी रहे हैं। अपने मन में कहिए कि "मैं अपने शरीर को पानी दे रहा हूँ जिसकी उसको अपना काम अच्छी तरह से करने की ज़रूरत है, और वह हमें शरीर की स्वाभाविक दशा को वा देगा—हमें अच्छा स्वास्थ्य और बल देगा और हमें बलवान्, स्वस्थ और स्वाभाविक मनुष्य बना देगा।"

आप सब लोग स्मरण करेंगे कि कभी-कभी एक प्याला पानी पी लेने में वित्त कैसा उत्तेजित और ताज़ा हो जाता है और कैसे आप फिर अपने काम में लग जाने के योग्य हो जाते हैं। जब आप मुस्ती मालूम करें तो पानी को न भूलें। यदि धीमियों की स्वास क्रिया के संबंध में हमका प्रयोग किया जाय तो यह मनुष्य को अन्य वपायों की अपेक्षा शीघ्रतर ताज़ा शक्ति देगा।

पानी धूमने के समय चणु-भर ऊँचे मुँह की में धीमे झीजिए और तब पी जाइए। जिह्वा और मुँह की भाँड़ियाँ सबसे प्रथम और शीघ्रता से भाण्य लींचनेवाली होती हैं, और यह तरीका बहुत लाभदायक होगा विशेष करके जब मनुष्य थक गया हो। यह स्मरण रखने योग्य बात है।





गंदा ही न होगा कि उसे साफ करने की आवश्यकता पड़े वनध आमाशय अच्छा स्वस्थ रहेगा। विचार-पूर्वक भोजन करने की आदत के प्रारंभ में यदि आमाशयवाले मनुष्य को इस प्रकार गरम पानी के प्रयोग से लाभ हो जायगा। इसका सर्वोत्तम तरीका यह है कि एक पाइंट पानी सघेरे नारता के पहले थथवा दूसरे भोजनों के एक घंटा पहले धीरे-धीरे चूमकर पी लिया जाय, यह पाचन के अवयवों में मोसपेशियों की क्रिया को उत्तेजित करेगा, जिससे देह-यंत्र में एकत्रित हुआ मल उसमें से बाहर निकलने की चेष्टा करेगा जिससे गरम पानी से ठीका और पतला कर दिया है। परंतु यह अल्प ही काल के लिये उपाय है। प्रकृति का उद्देश सर्वदा गरम पानी पीने का नहीं है और स्वस्थ दशा में वह साधारण ठंडा पानी चाहती है—और स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये वैसे ही पानी की जरूरत है—परंतु जब प्रकृति के नियमों के उल्लंघन से स्वास्थ्य बिगड़ गया हो, तो गरम पानी अच्छा है कि फिर प्राकृतिक मार्ग पर आने के पहले सफाई कर ली जाय।

हम इस अध्याय के अन्य भागों में स्नान और पानी के ऊपरी प्रयोग के विषय में और अधिक कहेंगे—यह अध्याय पानी के भी-तरी ही प्रयोग के विषय में है।

पानी के ऊपर लिखे हुए गुणों, कार्यों और प्रयोगों के अतिरिक्त हम यह भी कहेंगे कि पानी में प्राण की मात्रा भी अधिक हुआ करती है, जिसके एक भाग को वह शरीर में छोड़ देता है, यदि शरीर को आवश्यकता हो और शरीर तलब करे। कभी-कभी मनुष्य को एक प्लाजा पानी की आवश्यकता केवल उरतेतना ही के लिये हो जाती है—कारण यह है कि किसी वजह से प्राण की साधारण मुह्यता कम पहुँचती है और प्रकृति यह समझकर कि मल से शीघ्रता और आसानी से प्राण मिल सकता है, पानी मोंगती है।

बीमारियों और अस्वस्थ दशाओं को भोग रहे हैं, जो उनकी इसी मूर्खता के कारण उपस्थित हो गई हैं । जो लोग इस अध्याय को पढ़ेंगे, उनमें से बहुतों को हमारा कथन एक नए ज्ञान का उद्घोष होगा—दूसरे लोग जो इन बातों में पढ़ते हो से अभिज्ञ हैं, वे हम किताब में मथी बातों के उद्घाटन का स्वागत करेंगे, यह समझते हुए कि बहुतों का ध्यान हम विषय की ओर आकर्षित होने से उनका भला हो जायगा । हमारा अभिप्राय देह-यंत्र की राख, शरीर से निकले हुए पुरीष के विषय में साक्र-माक्र बातें करने का है ।

ऐसी साक्र-माक्र बातों की आवश्यकता है, यह बात इसी से प्रमाणित होती है कि आजकल के मनुष्यों के तीन चौथाई, थोड़ा या बहुत बड़कोट की बीमारी और उसके दुःखदायी परिणामों को भोगते हैं । यह बात प्रकृति के विपरीत है और इसका कारण इतनी आसानी से दूर किया जाता है कि मनुष्य आश्चर्य करने लगता है कि क्यों ऐसी दशा ज़ायम रहनी जाती है । इसका एक ही उत्तर हो सकता है हमके कारण और हमके निवारण से अनभिज्ञता । यदि हम मनुष्य को इस विपत्ति के दूर करने के कार्य में सहायक हो सकें, और हम प्रसार मनुष्यों को प्रकृति के मार्ग पर पुनः लौटा जाने में स्वाभाविक दशा के स्थापित करने में समर्थ हो सकें, तो हम उन लोगों के, जो इस अध्याय से पृथ्वा करते हैं और इससे मुँह फेर लेते हैं, पृथ्वाप्यज्जक नाक भी सिंका-वने पर ध्यान न देंगे—और हमारी मनुष्यों को इस विषय के उपदेश को सबसे अधिक आवश्यकता है ।

जो लोग हम पुस्तक के पाठनेत्रियों-संबंधी अध्याय को पढ़ें हैं, वे स्मरण करेंगे कि हमने हम विषय को उस स्थान पर छोड़ दिया था, जहाँ भोजन पतलों चूल्हियों में पहुँच गया था और उसमें का रस देह-यंत्र द्वारा खींचा जा रहा था । अब आगे हम हम बात को

# तेरहवाँ अध्याय

## शरीर-यंत्र की राख और फुजला

यह अध्याय आप लोगों में से उन मनुष्यों को जो अब भी शरीर या उसके किसी अंग की नापाकीजगी और अरलीसता के प्रयात्नात से बच हैं—यदि हमारे शिष्यों में भी संयोग से ऐसे मनुष्य हों— यह अध्याय अरुचिकर लैवेगा। आप लोगों में से वे मनुष्य जो पार्थिव शरीर की कुछ प्रधान क्रियाओं के अस्तित्व पर ध्यान देना नहीं चाहते, और इस प्रमाण पर कि कुछ शारीरिक क्रियाएँ प्रतिदिन के जीवन की एक अंग हैं लज्जा मानते हैं, उनको यह अध्याय अरुचिकर मतीत होगा, और वे इस अध्याय को इस पुरतक का बखंभ समझेंगे। ऐसी बात कि जिसको छोड़ ही देना अवज्ञा था, जिस पर ध्यान ही नहीं देना उचित था। उन लोगों में से हमारा यह कहना है कि हम पुरानी कहानी के उस चतुरमूर्त की राय के अनुसरण करने में कोई लाभ नहीं देखते ( किंतु बड़ी हानि देखते हैं), जिन्होंने अपने व्याधों के भय से अपने सिर को बालू में गाड़ दिया था, और अतिष्ठ यात को अँत की ओट कर दिया था, और उनकी उपस्थिति पर ध्यान ही नहीं दिया था कि व्याधो उसके पास पहुँच गए और उसे पकड़ लिए। हम लोग कुछ शरीर और उसके कुछ भागों तथा क्रियाओं का इतना आदर करते हैं कि उनमें कोई नाशक या अत्यन्त बात नहीं देखते। और हम इन क्रियाओं के विषय में विचार करने या बातचीत करने में शृणा करने की राय में निवा मृत्गता के और कुछ नहीं देखते। अमुलकर विषयों में मुँह फेर देने के विधान का यह परिणाम हुआ है कि मानव जाति के बहुत-से मनुष्य उन

भाँचा ऊपर आता है, तब मुखर ऊपर-ही-ऊपर बाईं ओर जाता है, तब बाईं ही ओर भाँचा नीचे आता है, तहाँ एक विशेष प्रकार का मोड़ होता है, यहाँ से कुछ पतला होकर (जिसे पतली नाड़ी कहते हैं) गुदा में पहुँचता है, यहाँ शरीर का वह छिद्र है, जहाँ से मल बाहर हो जाता है।

मकाराण एक बड़ी मन्त्रपाहिनी नाडी है, इस मल को ग्राह्य तौर से बाहर निकाल बढ़ाना चाहिये। प्रकृति का उद्देश है कि मल बहुत जल्द निकाल दिया जाय और मनुष्य अपनी भौतिक अवस्था में, जानवरों की भाँति, इस मल को बहुत शीघ्र ही निकाल बढ़ाना है। परन्तु उधो-उधो वह अधिक सम्भव होता जाता है, क्योंकि उधो-उधो मल के बहा देने में कम सुविधा होती जाती है और इसलिये वह प्रकृति के हुक्म की पाबंदी को मुक्तरी कर देता है, अंत में वह हुक्म देने-देने तक जाती है, तब अपने अनेक कामों में से किसी दूसरे काम में लग जाती है। मनुष्य इस अवस्थाभाविक अवस्था को, पानी पीना कम करके और भी बढ़ा देता है और मल को मुलायम, नम, ढोखा बनाने के निमित्त ही आवश्यक पानी में कमी नहीं करता, किन्तु, शरीर-भर में पानी की इतनी कमी कर देता है कि प्रकृति निराश होकर शरीर के अन्य भागों में थोड़ा बहुत पानी पहुँचाने के लिये इसी मलाशय के रहे-सहे थोड़े पानी को मलाशय की दीवारों द्वारा खींचने लगती है। जब धरमे का पानी नहीं पाती, तब गंदी मोरियों के पानी से काम निकालती है। नतीजे की कल्पना आप ही कीजिए। मनुष्य जो इस मलाशय के मल को, पानी कम कर देने के कारण, निकाल नहीं सकता, उसी का परिणाम बढ़-कोष्ठ होता है और वह बढ़कोष्ठ अनेक अस्वस्थताओं का उत्पत्ति-स्थान है, जिसकी वास्तविक दशा पर किसी का ध्यान नहीं पहुँचता। बहुत-से मनुष्य, जिनका प्रतिदिन मलविसर्जन भी होता है, कोष्ठ-

वेद्योगे कि जब देह-यंत्र यथामाप्य कुल योग्यकारी रम को सौख्य है, तब भोजन की सीढ़ी का क्या होता है—उस पदार्थ का त्रिमेयंत्र काम में नहीं ला सकता।

होक हमी जगह यह कह देना मुनामिब होगा कि जो लोग योग के तरीके से अपने भोजन को खाते हैं, जैसा इस किताब में अन्य अध्यायों में बतलाया गया है, उनके भोजन की सीढ़ी रम मनुष्यों की सीढ़ी की अपेक्षा त्रिमेय भोजन थोड़ा ही बहुत पावर और अपना के योग्य बनकर आमाशय में पहुँचाता है, मित्रदा में बहुत कम होगी। मामूली मनुष्य अपने भोजन का कम से कम आधा भाग सीढ़ी के रूप में निकाल देता है—परंतु जो लोग योगी तरीके का अनुसरण करते हैं, उनको सीढ़ी बहुत ही थोड़ी और मामूली मनुष्यों की सीढ़ी की अपेक्षा बहुत कम बदबूदार होती है।

अपने विषय को ध्रुव समझने के लिये हमें शरीर के उन अवयवों को अच्छी तरह जान लेना चाहिए जिन्हें यह काम करना पड़ता है। यही अंतर्ही या मलाशय वह अंग है जिस पर ध्यान देना होगा।

मलाशय एक खंबी नाली है, जो क्रूरिब-क्रूरिब पाँच फीट लंबी होती है और जो पेट में दाहनी और नीचे से ऊपर उठती है और ऊपर ही ऊपर बाईं ओर ऊपर जाती है, तब बाईं ही ओर नीचे जाती है और यहाँ पर यह मोड़ खाती है और कुछ पतली हो जाती है और अंत में मल फेंकने के द्वार, गुदा में समाप्त हो जाती है।

पतली अंतर्ही खाए हुए भोजन की लुगदी को इस यही अंतर्ही या मलाशय में, दाहनी ओर नीचे की तरफ एक किवाड़दार द्वार से छोड़ देती है; यह किवाड़दार द्वार ऐसा बना रहता है कि उसमें से चीजें निकल तो सकती हैं, पर उसमें प्रवेश नहीं पा सकती। कीड़े की शकल का मांसखंड, जहाँ एपेंडिसिटिस-नामक बीमारी होती है, इसी द्वार के नीचे रहता है। पेट में दाहनी ओर

भी इतना घुरा हो जाता है कि हममें कीड़े पड़-जाने हैं और डग्री घंटे देने और घृष्टि करते हैं। जो मज पतली चीनदियों से मज्जा-य में आता है, वह गाढ़ी खेई की भाँति होता है और यदि मज्जा-य ग्राह्य और निकला हुआ और गति स्वाभाविक हुई, तो जरा-ग्रा और रोग और इसके रंग का होकर उम्मे शरीर के बाहर हो जाता जाहिए था। मज्जाशय में जितनी ही देर मज रहता है, उतना ही मज्जा और गुन्ना होना जाता है और उतना ही उसका रंग भी गाढ़ा हो जाता है। जब कारी पानी मही पिया जाता और प्रकृति के लक्षणों को प्रुरगत के लक्षण के लिये मुकनबा कर दिया जाता है और फिर भुजा दिया जाता है, मज गुन्ने और मज्जा होने की क्रिया प्रारंभ हो जाती है। और जब बहुत देर के परधान मज त्यागने की वम अदा की जाती है, तो मज का एक भाग बाहर जाता है, शेष मज्जाशय में चिरटने के लिये रह जाता है। हमारे दिन थोड़ा और भी मज हममें चिरट जाता है और हमी भाँति हुआ करता है, जब तक कि बीमारी बढकोट की बीमारी नहीं हो जाती, और उसके अनु-पारी रोग जैसे बढकोट, पिलाधिकता, बहुरोग, गुर्दे की बीमारीयों आदि नहीं हो जाती—बहुत देर मज्जाशय की मज अक्षय हो जाती बीमारियों को लक्षां पट्टेवती है और बहुत-सी बीमारियों को प्रायः हमी कारण से पैदा हो जाता है। बी रोगों से आये तो हमी अक्षय द्वारा संबंधित या अक्षय होते हैं।

हम मज को देह-यंत्र के रक्षि में निच जाने के दो तरीके होने हैं, पहले तो देह-यंत्र की पानी पाने की हथ्था, दूसरे प्रकृति का जो मोक्षर उपयोग कि मज को लीचकर पमाने, गुर्दों और केचरों की शह निहाल दे। प्रकृति के इस प्रकार उस मज के हूँ करने के उपयोग का, जो मज्जाशय द्वारा हूर होना जाहिए था, परित्याग दुर्गंध पानीश और दुर्गंध कील हुआ करते हैं। प्रकृति इस मज के अक्षय

यह रोग में फैले रहते हैं, यद्यपि उनको हमकी प्रशंसा भी होती रहती। मलाशय की रूपांतरों में जमा हुआ सफ़्त मल अकस्मात् चिपट जाता है और कुछ तो वहाँ बहुत दिनों से चिपटा पड़ा है, अकस्मात् चिपटे हुए मल के बीच में एक छोटे छिद्र द्वारा प्रतिदिन के मल का थोड़ा भाग बाहर निकल जाया करता है। बहुतों को इस रोग को कहते हैं, जिसमें मलाशय पूरा साफ़ और चिपटे हुए मल के कारण निर्वाध नहीं रहता।

जब मलाशय पुराने चिपटे हुए मल से भर जाता है, या अंश-मात्र भी भर जाता है, तो यह कुछ शरार के लिये विष उत्पन्न करता है। मलाशय की दीवारें होती हैं, जो मलाशय की चीजों का रस खींचा करती हैं। डॉक्टरों के बर्णनों से प्रत्यक्ष है कि मलाशय में दवा घोड़ने से यह सब शरीर में पहुँच जाती है। इस प्रकार दवा घोंकी हुई शरीर-बंधन के दूसरे भागों में पहुँच जाती है और जैसा पहले कहा गया है, मल के द्रव भाग को देह-बंधन खींच लेता है; मोरी का गंधा जल प्रकृति के काम में, शरीर में स्वच्छ जल कम पहुँचाने के कारण, काया जाता है। कोष्ठबद्ध मलाशय में कितने दिनों तक पुराना मल टहरेगा, जल्दी विश्वास में नहीं आता। ऐसी घटनाएँ लिखी हुई मिलती हैं कि जब मलाशय की सफ़ाई की गई है, तब उसमें से बहुत महीनों पहले खाए हुए फलों के बीज मल के साथ निकलते हैं। रेशक औषधियों से ऐसे पुराने और सफ़्त चिपटे हुए मल नहीं निकलते, क्योंकि रेशक औषधियाँ केवल आमाशय और पतली अंतर्दियों के द्रव्यों को ढीला करती हैं, और मलाशय में कुछ मनुष्यों के मलाशय में तो पुराने मल जमा होकर सुत्तायम पत्थर के कोयले की भाँति सफ़्त हो गए रहते हैं, यहाँ तक कि उनका पेट भी फूल जाता और सफ़्त हो जाता है। यह पुराना मल

करने और स्वाभाविक दशा प्राप्त करने के लिये हमें क्या करना चाहिए ?" अस्त्रा, हमारा उत्तर यह है—“पहले तो आप मल के स्वाभाविक जघ्नीरे को दूर कीजिए तब प्रकृति के पथ का अनुसरण करके अपने को मधुर, साक्र और स्वस्थ बनाइए। इस इन दोनों बातों के करने की तरफ़ीव मताने का पथ करेंगे।”

यदि मलाशय में थोड़ा मल जमा है, तो मनुष्य उसे पानी पीने में अधिकता करके और मल त्यागने की स्वाभाविक गति, इच्छा और चाहत को उन्नेजित करने से और मलाशय के देहाणुओं की चेतनता पर धमर पहुँचाने से ( जैसा आगे वर्णन होगा ) दूर कर सकता है। परंतु इन मनुष्यों में से जो मन-ही-मन हमसे यह प्रश्न कर रहे हैं, आपसे तो अधिक ऐसे हैं, जिनके मलाशय थोड़ा बहुत पुराने, सख्त, चिपटे हुए, हरे रंग के उस मल से भरे हुए हैं जो वहाँ महीनों, बरिद और भी अधिक समय से रखा है; इसके लिये तो विशेष उपाय बतलाना पड़ेगा। इस विपत्ति को बुझाने में चूँकि मैं प्रकृति के पथ से दूर चले गए हैं, इसलिए हमें पहले प्रकृति का महापता पहुँचाना चाहिए, जिससे अब तो हमें काम करने के लिये मात्र मलाशय मिले। उपाय के इशारे के लिये जानवर-योनि ॥ ईदना चाहिए। निश्चयों वचं हुए कि भारतवर्ष के निवासियों में देखा कि एक प्रकार की खर्बी टोंगोंवाली चिड़िया—जिसे बड़े-बड़े बोंब से—बड़ी दूर की यात्रा करके बड़ी बुरी अवस्था में छोड़ आई थी, जिसका कारण था तो कोहबर, जखल करनेवाले बखों का गाना या अहाँ गई थी वहाँ पीने के पानी की कमी थी—संभव है कि दोनों बातें रही हों। ऐसी चिड़िया बहुत ही लंबी दूरी दूर में नदी के तीरे पर पहुँची, जो निबंधना के कारण अब वह भी न सकती थी। चिड़िया ने तब अपने बोंब और मुँह को नदी के पानी से भर लिया और तब बोंब को मुँह में दालकर उसमें पानी भरने



रहने की सुराहियों को आमतौर पर, और इसलिये हम सब को दूरी  
 मार्गों से निष्काशने का प्रयत्न उद्योग करना है। चाहे हम उद्योग  
 में रुधिर और शरीर अर्द्धविशाल ही क्यों न हो जायें। मलाशय की  
 हल गुरवरण ही के कारण अनेक बीमारियाँ और पीड़ाएँ उत्पन्न  
 हो जाती हैं, इसका सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि जब कारण पकड़ा  
 गूर कर दिया जाता है ( अर्थात् मलाशय साफ़ कर दिया जाता  
 है ), तो मनुष्य ऐसी-ऐसी बीमारियों से बचने होने लगते हैं, जिनका  
 ज़ाहिरा कुछ भी संबंध कारण से नहीं था। मलाशय की गुरवरण  
 के कारण जो बीमारियाँ पैदा होती और बढ़ती हैं, उनके अलावे पर  
 बात भी बहुत हो साथ है कि ये मलाशयवाले के शरीर में छूट  
 की बीमारियाँ और टीकाइए और आदि की बीमारियाँ बहुत होती  
 हैं, क्योंकि उनका ऐसा सुरा मलाशय इन बीमारियों के बीजाणुओं  
 के अनुकूल शरीर को बना देता है। जो मनुष्य अपने मलाशय को  
 साफ़ रखता है, उसको इन बीमारियों में पड़ने का बहुत ही  
 कम भय रहता है। तनिक कहना तो कीजिए कि यदि हम  
 म्युनिसिपैलिटी की गंदी मलपवाहिनी सोरियों की गंदगी को  
 अपने शरीर के भीतर भर लें, तो क्या परिणाम हो—क्या यह कोई  
 आश्चर्य की बात है कि जिस गंदगी के बाहर पड़े रहने से बीमारियाँ  
 फैलती हैं, वही गंदगी नस-नस में फैली रहे और बीमारी न हो। मेरे  
 दोस्तों, अज्ञान से काम लीजिए।

अब हम समझते हैं कि हमने बहुत-सी विपत्तियों के कारण  
 ( गंदे मलाशय ) के विषय में बहुत कुछ कह दिया, ( हम इस वि-  
 षय में और भी कड़ी-कड़ी बातों से सीकड़ें सक्रहे भर दें पर ) शः-  
 यद् भाव ऐसी दशा में आ गए हैं कि पूर्वे—“अज्ञान में विश्वास  
 करता हूँ कि ये सब बातें सही हैं और जो बात मुझे सकारात्मक दे  
 रही है, वह बात बहुत समझ में आ गई, परंतु इस गंदगी को दूर

य फिर विष का भय न रह जाता रहा होगा। परंतु हम  
तने अधिक पानी के प्रयोग का उपदेश नहीं करते—स्मरण रखिए  
म लोग सब के पुराने कुत्रयाले मनुष्य नहीं हैं।

हाँ, अम्याभाविक द्वा के कारण मलाशय के इन गंदे द्रव्यों को  
दूर करने के लिये प्रकृति को अम्यायी महापता की आवश्यकता  
पड़ती है और उसे मल को दूर करने के लिये लंबी थोथोवाली  
विधियों और हिंदू-बुद्धपणियों के उद्देशरण का, इस योगवी शताब्दी  
के परिष्कृत औजारों द्वारा, अनुसरण करना ही सर्वोत्तम उपाय है।  
जित वस्तु की आवश्यकता है, वह एक रबर की सस्ती पिचकारी है।  
यदि आपके पास एनिमा-नामक पिचकारी हा, तो और भी अच्छी  
बात है, नहीं तो मामूली ही पिचकारी से, जिसमें रबर का गुला  
जगा हा, काम निकल सकना है। एक पाइंट गरम पानी लीजिए—  
इतना गरम हो कि जिसे हाथ आराम से सह सके। पानी को पिच-  
कारी द्वारा मलाशय में छोड़िए। कुछ चारों तक मलाशय में पानी  
को रोके रहिए और तब शरीर से निकाल डालिए। इस अभ्यास  
के लिये रात का समय बहुत अच्छा है। दूसरी रात दो पाइंट गरम  
पानी लीजिए और उसका भाँ वैने ही प्रयोग कीजिए। तब एक रात  
नागा कर दीजिए और बादवाली रात में तीन पाइंट पानी लीजिए।  
तब दो रात नागा कीजिए और तीसरी रात को ४ पाइंट पानी  
लीजिए। शर्तःशर्तः आपको मलाशय में पानी रोकने का अभ्यास हो  
जायगा और अधिक पानी से मलाशय खासी तौर से साफ हो जा-  
यगा। थोड़ा पानी पहले से ढीले मल को धो डालेगा और सफ़्त  
मल को दीवारों से छुड़ाकर उसे खड़-खंड कर देगा। चार पाइंट  
अर्थात् दो घाटे पानी से भय मत चाहिए। आपका मलाशय इससे  
भो अधिक पानी धारण कर सकना है, कोई-कोई मनुष्य तो चार  
घाटे पानी से खेते हैं, परंतु हम इतने पानी को अतिशय समझते

मगी, जिसमें थोड़े ही लोगों ने उम्मे आशाम मिशने लगा। ए  
 किया को बिबिया ने कई बार किया, जब तक उमकी चैतनी मिश्र  
 मात्र न हो गई। तब अपनी गह्र धैर्य आशाम करने लगी ज  
 तक उममें फिर जीव्य न आ गया; फिर मरी ने दूध पानी पी  
 कर रू और चंचल बनकर उड़ गई।

बुद्धपत्नियों और पुरोहितों ने जब इस घटना को और विद्वों  
 पर उसके आश्चर्यजनक प्रभाव को देखा, तो इस विषय में विचार  
 करने लगे और किसी ने कहा कि इसकी परीक्षा बुद्ध मनुष्यों  
 से किया पर का जानो चाहिए, जो परिधम की कमी  
 और बैठे रहने की आदत में प्रकृति के सीधे मार्ग में विचलित  
 हो गए थे और कोष्ठवद के रोग में पड़ गए थे। जब  
 उन लोगों ने पिपिकारी की मूर्ति का एक भीजार खंडी में सुरा-  
 वाली घास का बनाया और इसके द्वारा कोष्ठवदवाले बुद्धों की  
 चैतनी में पानी छोड़ने लगे। परिणाम क्या आश्चर्यजनक हुआ।  
 बुद्ध मनुष्यों को मानो जीवन का नया पहा मिल गया, उन लोगों  
 ने नई बुद्धि से विवाह किया और वे कुल के उधर्मों में लग गए  
 और फिर उन्होंने कुलपति का भार अपने सिर से लिया जिससे  
 नवयुवकों को बड़ा आश्चर्य हुआ जो इनके जीवन से पहले बहुत  
 निराश हो चुके थे। दूसरे कुलों के बुद्ध मनुष्यों तक ये समाचार  
 पहुँचे और वे नवयुवकों के कंधों पर चढ़कर इनके पास आने लगे—  
 और जब लौटे तब बिना सहायता के पैदल गए। तब का जो  
 वर्णन सुनने में आता है उससे अनुमान होता है कि उनकी विच-  
 कारी की किया कभी हिमाल की रही होगी, क्योंकि उसमें बहुत  
 अधिक पानी का वर्णन किया जाता है, और प्रयोग के समाप्त  
 होने तक उनका मन्त्राशय अच्छी तरह साफ हो जाता रहा  
 होगा और ऐसी दशा का हो जाता रहा होगा कि उसमें

देते—हम इसको स्वाभाविक आदत नहीं समझते, और हमारा यह विश्वास है कि यदि स्वाभाविक आदतों ही का अवलंबन किया जायगा, तो स्वाभाविक रीति से मज का त्यागना हुआ करेगा और पिचकारी के प्रयोग की आवश्यकता ही न पड़ेगी। हम पिछले ही जमा हुए मज की सहाई के लिये पिचकारी के प्रयोग का उपदेश करते हैं। महीने में एक बार यदि मज के बढ़ने की रोकने के लिये पिचकारी से सो जाय, तो उसमें हम हानि नहीं देखते। अमेरिका में बहुत-से ऐसे स्वास्थ्य-संस्था हैं, जो सर्पश पिचकारी के प्रयोग करने का उपदेश देते हैं। हम उनमें सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि हमारा सिद्धांत यह है कि “प्रकृति के पथ पर जाँट आओ” और हमारा विश्वास है कि प्रकृति नियम का पिचकारी का प्रयोग नहीं चाहती। योगियों का विश्वास है कि काशी ताजा छुड़ पानी पिया जाय, निश्चयानुद्ध मज त्यागता जाय और महागण से कुछ “बाग बह” की भाव, तो बहकोट से बने रहने के लिये जो कुछ आवश्यक है, सभी हो जाय।

एक द्रव्य की पिचकारी (धौनि) दिया के परचार (और हमसे पहले भी) जल्दी तरह से पानी पीना प्रारंभ करो, जैसा हम उस विषय के अध्याय में कह आए हैं। प्रतिदिन दो बार्ड पानी पिया करो, हमसे कुछेक क्षति हटाने देने लगेंगी। मजबूत निश्चय करके उनी समय पर नियम मज त्यागने के निमित्त आया करो बाँटे हाथन मालूम होती हो या न मालूम होती हो। धीरे-धीरे आपकी आदत गिर हो जायगी, क्योंकि प्रकृति आदत हाथने की नहीं बल्कि रहती है। संभव है कि आपकी मज त्यागने की आवश्यकता हो पर वह आपकी मालूम न पड़ता हो, क्योंकि आपसे तो बार-बार आदतपारी काहे नहीं की गेली जाती की प्रकृति कर दिया है, इसलिए आपसे वह गिरे से फिर प्रारंभ करवा

हैं। पानी लेने के पहले और पीछे पेट को मखिया और जड़ समाप्त हो जाय, तो योगी की पूरी सॉस का अभ्यास कर लेंगे, जिससे आपको उत्तेजना मिल जाय और स्थिर-संचार में लौट आ जाय।

इस प्रयोगों में जो मज निकलेगा, वह मातृक दिग्गज वालों को बहुत ही चरबिऊर होगा, परंतु धरम तो मज की मीठी के बिये दूर कर देने का है। इस प्रयोग में जो मज पहले आएगा वह बहुत ही दुर्गंध और पुष्पोन्मादक होता है, परंतु, जीवा-जीवात्मा न हो, शरीर के भीतर रहने की चपेला तो होने बाहर ही दिखाव देना अपना है। वह भीतर रहेगा, ता भी उलना ही टारावरहेगा, जिस बाहर निकलने पर है। इस ऐसी घटनाओं को भी जाने हुए हैं, जिसे बहुत मज के कड़े-कड़े टुकड़े, गणन और हरे, जैसे मृत्तिका के बॉ हों, मनुष्यों के शरीर में निकले हैं, और इनकी वरूप उगमे हैं निकली हैं, जिसमें कछा प्रयास मिल गया है। इसमें प्रयास रहने में किशमी हानि हो गई होगी। नहीं, वह बिल प्रयास करने काका पाद नहीं है, परंतु वह पाद या आनंदवक है कि पाद भीमों लकड़ी की मरिमा को ममक आर्ध। आरको देगा जान रहेगा कि जिस मगद में आरने मकराव का मात्र किया है, उस लकड़ी में आरको लामा-विद मज लामने की हासन कम वा विरुद्ध नहीं हुई है। इसकी कृप बिना नहीं है, क्योंकि पानी ने जल मज को भी बनाया है, जिसे आर मज लामने के ममक दिखावने। अब मज की लकड़ी की बिना मकान हो जायेगा, जो इसके पूं या नीव दिव हासन आरको लामा-विद लीन में मज लामने की हासन होने छोटी।

अब इसी प्रयोग में आरको लामने हासन हासन की आर दिखने है कि इस लकड़ी लामने दिखवाती के लामने का हासन नहीं

अब मेरे मित्रों, यदि आप को हृदय के रोग को भोगे हैं, और कौन नहीं भोगे हैं, तो आप ऊपर लिखी सलाह को लाभदायक मानेंगे। हममें फिर घड़ी गुजायी कपौज और सुंदर चमड़े हो पायेंगे—हममें स्थापन, यह खारदार जवान, यह दुर्गंध रक्षा, यह दुःखदायी यज्ञ और धरे मल्लाशय से जो-जो बीमारियों का परिवार न बचा होता है—यह अवरोधित मान्नी, जो सब रोगों की मूल—मय दूर हो जावेंगे। हम क्रिया को परीक्षा कीजिए, तो आप जीवन का शुभ भोगने लगेंगे और स्वामादिक स्वस्थ तथा स्वस्थ रूप हो जावेंगे। अब समाप्ति के समय करने ग्लान को चमकते 'ऊँ' दे पानी से भर छाँड़िए और हम स्वास्थ्य-प्राप्तता में सम्मिलित जाइए "यह स्वास्थ्य के लिये—पुष्टि स्वास्थ्य के लिये है।" र ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे पानी को पीजिए, मन-ही-मन यों कहते "यह पानी हमारे लिये स्वास्थ्य और बल का जानेवाला—यह स्वयं महतिदल पुष्टि और औषधि है।"

पड़ेगा । इस बात को भूलिए मत—यह सीधी परंतु शाली बात है ।

अब आप पानी पीने लगे, तब स्वतः सूचना दिया करें, तो उसे लाभकर पावेंगे । मन-ही-मन यों कहिए, “इस इस पानी को इस क्रिये पी रहे हैं कि यह हमारे शरीर-यंत्र में आग्नेयक द्रव उत्पन्न करे । यह हमारी शैतनियों का प्रकृति के उद्देश के अनुसार स्वतंत्रता से और नियमित रूप पर संचालित करेगा ।” आप अपने देह-रस में जो कार्य माया चाहते हों, उसका स्थान बनाए रखिए, तो जरूरी फल सिद्ध होगा ।

अब एक ऐसा बात है, जो आपको जब तक आप उसके पूरे विवरण को न समझेंगे, कर्जूल-सी मालूम हो सकती है । ( इस वर्य उसकी क्रिया-मात्र रेतें हैं, और उसके विवरण को आगे अन्य अध्याय में समझावेंगे ) । यह मन्त्राशय से “बात कहना” है । वेद पर, मन्त्राशय के स्थानों पर हाथ से मुद्रायाम धारिणी दो और उससे कहो, ( हाँ, बातें करो ) “देखो मन्त्राशय, हमने तुम्हारी अपनी तरह से सजाई कर दी है, और तुम्हें साक़ और ताज़ा बना दिया है—इस तुम्हें उचित रीति से अपना काम करने के लिये पानी दे रहे हैं—इस नियमित आदतें बाल रहे हैं, जिनसे तुम्हें काम करने का पूरा अवसर मिले—और अब तुम्हें काम करने में लग जाना चाहिए ।” मन्त्राशय के स्थान पर कई बार धारिणी दीजिए और कहा कीजिए “अब तुम्हें करना है पड़ेगा ।” और तुम्हें मालूम होगा कि मन्त्राशय उसे का छोड़ेगा । वाचक यह बात आपका ध्यान को शीघ्र-सी प्रतीत होगी है—आप इसके अर्थ को तब समझेंगे, जब आप अध्यात्म अध्ययनों के शासन-विषयक अध्याय को पढ़ेंगे । यह वैज्ञानिक बात के सिद्ध करने का माया उपाय है—प्रत्यक्ष शक्ति को प्रत्याक्षिप्त करने का सरल रीति है ।

बिना स्वामश्रि के उमका जीवन केवल कतिपय क्षण ही द्वारा माया जा सकता है ।

मनुष्य जीवन के लिये स्वाम पर ही अवलंबित नहीं रहता, किंतु वह सही मौन लेने की भावना पर अवलंब काता है कि जिससे लगातार जोश और रोगों से छुटकारा बना रहे । अपने स्वाम लेने की शक्ति पर विचार-पूर्वक अधिभार रखने से इस भूमि पर के हमारे आयु के दिन बढ़ जायेंगे, क्योंकि हमें अधिक जोश और रोगों से मुक्तिदान करने की शक्ति मिलती रहेगी; और इसके विपरीत अधिभार और अभावधानी की मौन से जोश घट जाने के कारण और रोगों के लिये द्वार खुले रहने से आयु के दिन घट जाते हैं ।

मनुष्य को उसकी स्वाभाविक अवस्था में स्वामश्रिया की शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी । नीच जंतुओं और पक्षियों की भाँति, वह स्वाभाविक और उचित रीति से मौन लेता था, परंतु सभ्यता ने उसे इस और अन्य विषयों में बिलकुल बदल दिया है । उसने चलने, खड़ा होने और बैठने की अनुचित रीतियों को धारण कर लिया है, जिन्होंने उसके स्वाभाविक और सही तरीके से मौन लेने के नैसर्गिक अधिकार को उससे छीन लिया है । उसने सम्यता का महंगा मूल्य दिया है । जंगली मनुष्य आज भी स्वाभाविक रीति से मौन लेता है, यदि सम्य मनुष्य की सम्यता की छूट से वह भी बलविक्रित न हो गया हो ।

उन सम्य मनुष्यों की भीमत, जो सही मौन लेते हैं, बहुत थोड़ी है, और इसका परियाम संकुचित छातियों, मुँह के हुए कंधों और स्वाम लेने के अवयवों की भयंकर बीमारियों की वृद्धि में जिसमें वह संघातक राक्षस भी शामिल है, जिसे चर्पी कहते हैं, प्रेरित होता है । प्रख्यात प्रमाण पुरखों ने कहा है कि सही मौन



# चौदहवाँ अध्याय

## योगियों की श्वासक्रिया

जीवन बिलकुल श्वास लेने की क्रिया पर अवलंबित है। "श्वास ही जीवन है।"

पूर्वाय और परिधमीय लोग विचारों और नामावलिओं में पाए कितना ही भेद करें, पर इन मूल-तत्त्वों में दोनों सहमत हैं।

श्वास ही लेना जाना है, और श्वास के बिना जीवन नहीं है। केवल उच्च योनि ही के जंतु जीवन और स्वास्थ्य के लिये श्वास पर अवलंबित नहीं रहते, किंतु नीच योनि के जंतुओं को भी जीवन के लिये श्वास लेना पड़ता है, और पौधों को भी अपनी खगातार सत्ता रखने के लिये हवा के आश्रित होना पड़ता है।

नवजात शिशु एक लंबी गहरी साँस खींचता है, उसे एक घण्टा तक की प्राणदायिनी शक्ति ग्रहण करने के लिये रोक रखता है, और तब फिर लंबी प्रश्वाम द्वारा उसे बाहर निकाल देता है, और अहा ! उसका इस धृष्ठी पर का जीवन शुरू हो जाता है। बुद्ध मनुष्य निर्बंध श्वास देता है, श्वास लेना बंद कर देता है और उसका जीवन समाप्त हो जाता है। नवजात शिशु की पहली साँस से लेकर मरते हुए मनुष्य की अंतिम साँस तक साँस लेने की लगातार कहानी रहती है। जीवन श्वासों ही की एक श्रृंखला है।

श्वास लेना, शरीर की क्रियाओं में से, सर्वप्रधान क्रिया समझी जा सकती है, क्योंकि यस्तुतः अन्य सभी क्रियाएँ इसी के आश्रित रहती हैं। मनुष्य बिना खाए कुछ समय तक रह सकता है; उससे भी अधुनार समय तक बिना पानी पिए रह सकता है, परंतु

नाम में जीवनशक्ति या प्राण को अधिक प्रवाह के साथ भेज सकता और उस इंद्रिय या भाग को अधिक दृढ़ और बलवान् बनाता है। वह सही समय लेने के विषय में उन सब बातों को जानता है जिन्हें हमके पश्चिमी भाई जानते हैं, परंतु, वह यह भी जानता है कि हमारे आक्मोजन, ईटोजन और मैटोजन के अन्तरे कुछ और भी है, और रुधिर में केवल आक्मोजन मिश्रित करने के लिए और बाक भी मिश्र की जाती है। वह प्राण के विषय में जानता है, जिसमें हमका पश्चिमी भाई अनभिज्ञ है, उस महान्शक्ति नाभ के प्रयोग की प्रकृति और रीति को ही तरह जानता है, और उसे पूरा जान है कि उस प्राण मानव शरीर और मन पर कैसा पड़ता है। वह कि लाखतुल्य रसाय ( प्राणायाम ) द्वारा मनुष्य पंच में अपने को मिला सकता है और अपनी गुप्त विरासत में महाप्राप्ति पहुँचा सकता है। वह जानता है कि ज्ञान द्वारा वह अपनी और दूसरों की रीति ही को सही दूर कर सकता, बिना, भय और भ्रमों को भी दूर कर सकता है।

य के विचार में वहने हमका उस संज्ञ की बारीगरी-गन देना होता, जिसके द्वारा रसाय की शक्ति। रसायविद्या की बारीगरी, ( १ ) चंद्रों की शक्ति की शक्ति और ( २ ) छात्रों के उस शक्ति के विचार से, जिसमें चंद्र रहते हैं, ऐतिहासिक और पंच के बीच के रिश्ते का वह जानते हैं ( जिसे छात्र का संवेदन्य कहते हैं ) होते हैं। वह ही की शक्ति, यथाविधि ही सुखायम शक्ति ( ३ ), की है

छेनेवालों की एक पीढ़ी भी मानवजाति का उद्धार कर दे, वे चांगरी इतनी बिरब हो जाए कि वह चारचर्य की दृष्टि में ते जागे लगे, चाहे वह पूर्वी या पश्चिमी दृष्टि से देगा जाए, तो मौन छेने और स्वास्थ्य का संबंध गुरुतः देखने में और समझने आ जाता है ।

पश्चिमी विद्या बतलाती है कि शारीरिक स्वास्थ्य बहुत ही मही मौन छेने पर अवलंबित है । पूर्वी आचार्य केवल यही नहीं स्वीकार करते कि उनसे पश्चिमी भाई मही हैं, किंतु कहते हैं कि उपरि मौन छेने की आदत ने शारीरिक मामों के अविरत मनुष्य की मानसिक शक्ति, ठमका मुर आत्माधिकार स्वा दृष्टि, सदाचार, और यहाँ तक कि ठसकी आध्यात्मिक उन्नति भी स्वास-विज्ञान को समझ लेने में हो सकती है । पूर्वीय दर्शन के सम्प्रदाय के सम्प्रदाय हर विज्ञान के आधार पर स्थापित हुए हैं, और इस विद्या को यदि पश्चिमीय जातिवाँ ग्रहण करेंगी और अपने विशेष गुण के कारण इसे कार्यरूप में परिणत करेंगी, तो उनमें आरच्यजनक परिणाम उत्पन्न कर देंगी । पूर्व देश के मंत्र पश्चिम के प्रयोग से जय मिलेंगे, तो यही उत्तम फल होगा ।

इस जगह योगियों के स्वास-विज्ञान का बंधन किया जाएगा, जिसमें केवल उतनी ही विद्या नहीं है, जो पश्चिमी शरीर-शास्त्रियों और स्वास्थ्यवाधियों को ज्ञात है, किंतु इसमें योग का गूढ़ विषय भी है । यह केवल शारीरिक स्वास्थ्य के मार्ग को उभी तरीके से नहीं बतलाती, जिसे पश्चिमी वैज्ञानिक गहरी साँस आदि कहते हैं, परंतु ऐसी तर्कों में भी प्रवेश करती है, जो बहुत कम लोगों को ज्ञात हैं ।

योगी ऐसे अध्यामों को करता है, जिससे उसे शरीर पर अधिकार — ये ज्ञात है और यह इस योग्य हो जाता है कि किसी इन्द्रिय या

रखने से फेफड़ों को उनकी चरम सीमा तक फैला सकते हैं और इस तरह हवा के प्राणदायक गुणों को अधिक-से-अधिक मात्रा में इस देह-यंत्र के लिये ग्रहण कर सकते हैं।

योगी लोग श्वासक्रिया को चार साधारण तरीकों में बाँटते हैं, अर्थात्—

- ( १ ) उच्च श्वासक्रिया ।
- ( २ ) मध्य श्वासक्रिया ।
- ( ३ ) नीची श्वासक्रिया ।
- ( ४ ) योगी की पूर्ण श्वासक्रिया ।

इस पहले तीन तरीकों को साधारण वर्णन कर देंगे और चौथे तरीके का, जिसके आधार पर योगी का श्वास्त्र-विज्ञान स्थापित है, अधिक विस्तार से वर्णन करेंगे।

### ( १ ) ऊर्ची श्वासक्रिया

इस प्रकार की श्वास को परिचामी लोग हँसकी की हड्डी की साँस कहते हैं। इस प्रकार से श्वास लेनेवाला मनुष्य पमलियों को उठा लेता और हँसकी की हड्डी और कंधों को ऊपर उभार देता है, साथ ही पेट को भीतर लींच लेता है, और उसमें की चीज़ों को ऊपर लींचकर छाती और पेट को घुपट्ट करकेबाँधी तरह से भिंका देता है, जो चरम भी ऊपर लिंच जाती है।

छाती और फेफड़ों का ऊपरी भाग, जो सबसे छोटा होता है, काम में लाया जाता है, और इसलिये कम-से-कम मात्रा में हवा फेफड़ों में जाती है। इसके अतिरिक्त श्वास की चरम का ऊपर उठ जाने से कम और फैलाव नहीं हो सकता। छाती की बनावट को अल्पकाल करने से मनुष्य के ध्यान पर यह बात बैठ जावेगा कि इस प्रकार श्वास लेने में अधिक-से-अधिक परिश्रम के प्रयोग से कम-से-कम लाभ होता है।

हड्डी और नीचे पेट और छाती को पृथक् करनेवाली मांस की चर्र से घिरा होता है। इसकी उपमा सब घोर से बंध पुण्येश्वर यन्त्र से दी गई है, जिसका कुट्टा ऊपर की ओर होता है, पीछा रीढ़ की हड्डी से बनता है, आगा छाती की हड्डी से और गालें पसलियों से बनती हैं।

पसलियाँ सख्या में २४ होती हैं, प्रत्येक बगल में बारह-बारह और रीढ़ की हड्डी की दोनों ओर से निचलती हैं। ऊपरी जोड़ियाँ तो सभी पसलियाँ कही जाती हैं, जो सीधे छाती की हड्डी से जुड़ी होती हैं; और निचली पाँच जोड़ियाँ मूठी पसलियाँ या हिलने-डोलनेवाली पसलियाँ कही जाती हैं, क्योंकि ये इन प्रकार जुड़ी नहीं होतीं; इनमें का भी दाँ ऊपरवाली तो मुलायम हड्डी (कुरी) द्वारा अन्य पसलियों से जुड़ी होती हैं। शेष में कुरी भी नहीं होती और उनके अगले बिरे बिलकुल छुटे होते हैं।

श्वासक्रिया में पसलियाँ ऊपरी दो सह मांसपेशियों से संबन्धित होती हैं। छाती और पेट के बीचवाली मांस की चर्र, जिसका दबन ऊपर हो चुका है, छाती के मोक्षने को पेट से पृथक् करती है।

श्वास भीतर खींचने की क्रिया में मांसपेशियाँ फेफड़ों को फैला देती हैं, जिससे फेफड़ों में रिक्तस्थान उत्पन्न हो जाता है, और उस स्थान को भरने के लिये प्रसथात भौतिक नियम के अनुसार बाहर से हवा भीतर आती है। श्वास लेने में जिन मांसपेशियों का काम पड़ता है, उन्हीं पर प्रत्येक श्वास-विषयक बात अवलंबित है, हमलिये उन मांसपेशियों को हम सुविधा के लिये "श्वासवाली मांसपेशियाँ" कह सकते हैं। बिना इन मांसपेशियों की सहायता के फेफड़े फैल नहीं सकते, और इन्हीं मांसपेशियों के उचित प्रयोग और उन्हें अपने आयत्त में रखने पर, श्वास-विज्ञान अधिकतर अवलंबित है। इन मांसपेशियों को उचित रीति से अपने आयत्त में

कहते हैं; और यह यद्यपि ऊँची साँस की अपेक्षा कम आपत्तिजनक है तो भी नीची साँस और योगी की पूर्ण साँस की अपेक्षा तो बहुत ही खराब है। मध्य श्वास में छाती और पेट के बीच की चद्दर ऊपर खिंच जाती है, और पेट मोतर खिंच जाता है। पसलियाँ कुछ ऊपर उठती हैं और छाती कुछ थोड़ा फैल जाती है। यह तरीका उन मनुष्यों में पाया जाता है जिन्होंने इस विषय का अध्ययन नहीं किया है। चूँकि हमने बेहतर दो तरीके और हैं इसलिए हम तरीके का बहुत थोड़ा ही वर्णन किया गया है और बड़ों को इसलिए कि आपका ध्यान उनकी गलतियों पर आकर्षित हो।

### ( ३ ) नीची साँस

साँस लेने का यह तरीका पहले कहे हुए दोनों तरीकों से बहुत ही अच्छा है और हाल सालों में बहुत-से परिचामी खेलकों ने इसकी बड़ी महिमा गाई है और इसकी प्रशंसा "पेट की साँस", "गहरी साँस" आदि नामों से की है; और लोगों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित होने से लाभ भी बहुत हुआ है, क्योंकि बहुत-से लोग जो पहले ऊपर किसी दुई दोनों रीतियों से साँस लेते थे, अब इस रीति से साँस लेने लगे। इसी नीची साँस के आधार पर बहुत-से नए तरीके निकाले गए और शिष्यों को इन नए ( १ ) तरीकों के लिये कड़ी प्रशंसा भी देनी पड़ी। परन्तु, जैसा हम कह चुके हैं, हमसे लाभ बहुत हुआ है, और अंत में उन शिष्यों को, जिन्होंने महँगी प्रशंसा दी, और निरुपेक्ष रीति को त्याग कर अच्छी रीतियों को धारण किया, प्रीति के अनुसार लाभ मिल गया।

यद्यपि बहुत-से परिचामी विद्वान् इस तरीके को सर्वोत्तम तरीका लिखते और कहते हैं, परन्तु योगी इसे जानते हैं कि यह उस तरीके का एक अंग-मात्र है, जिसमें वे सैकड़ों वर्षों से अभ्यास करते आते हैं, और जिसे "योगी की पूर्ण साँस" कहते हैं। यह बात स्वीकार करने

ऊँची श्वासक्रिया मनुष्य की जानी हुई क्रियाओं में से सबसे निकृष्ट है और इससे अधिक-से-अधिक शक्ति प्राप्त करने में आवश्यकता पड़ती है और थोड़ा-से-थोड़ा लाभ होता है। यह शक्ति धरणाद करनेवाला और कम लाभ देनेवाला तरीका है। यह पश्चिमी जातियों में बहुत प्रचलित है; बहुत-सी औरतें इसी श्वास में मुग्धिला हैं; और गवैय, पादरी, बक्रील और दूसरे लोग, जिनमें बेहतर ज्ञान होना चाहिए था, वे भी मूर्खता से इसी तरीके को बतते हैं।

शब्दोपपादक अवयवों और श्वास के अवयवों की बहुत-सी बीमारियाँ इसी धुरे तरीके से साँस लेने का सीधा नतीजा हैं। और इस रीति से साँस लेने में नाजुक अवयवों पर जो-जो तनाव पड़ता है, उसमें वे कधी और धुरी आघातों वैदा होती हैं, जो चारों ओर सुनाई दिया परती हैं। बहुत-से मनुष्य, जो इस प्रकार साँस लेते हैं, उन्हें से साँस लेने की धुरी आघात में प जाते हैं, जिसका पर्याय आगे चलकर किया जाएगा।

यदि शिष्य का कुछ भी संदेह इस प्रकार साँस लेने के नियम कही हुई बातों पर है तो उसे स्वयं परीक्षा कर लेनी चाहिए। पहले वह केफड़ों में से सब हवा निकाल दे, तब सीधा, गूदे होकर, जिसमें हाथ थालों में सटकर रहें, कंधों और हँसला की हड्डी को ऊपर उठावे और फिर साँस ले। उसे मालूम होगा की साँस ली हुई हवा की मित्रदार सामूहिक मित्रदार से बहुत ही कम है। अब फिर कंधों और हँसला की हड्डी को गिराकर साँस ले तब उसे श्वास लेने में ऐसी स्पष्ट शिष्टा मित्र जायगा जिसे वह धुरे और बोधे हुए शब्दों द्वारा प्राप्त शिष्टा की अपेक्षा बहुत दिन तक स्मरण रख सकेगा।

( २ ) मध्य नाभिक्रिया

साँस लेने के इस तरीके को परिचयान् चिन्तन पद्धान्ति की साँस

सारा फेकड़ा हवा से भर जाय यह तरीका अधिक-से-अधिक भारती-जन उपस्थित करने और अधिक-से-अधिक प्राण संचित करने के कारण मनुष्य के लिये अत्यंत हितकर है। योगी लोग जानते हैं कि पूरी साँस की रीति विज्ञान की जानी हुई सब रीतियों में सर्वोत्तम है।

### ( ४ ) योगी की पूरी साँस

योगी को पूरी साँस में ऊँची, मध्य और नीची सीनों प्रकार की साँसों के अर्धे गुण हैं और यह साँस सीनों प्रकार की साँसों के दोषों से बची हुई है। यह रीति साँस खेने के सारे यंत्र, फेकड़ों के प्रत्येक भाग, हवा की प्रत्येक कोठरी, और श्वास की प्रत्येक मांसपेशी को काम में लगा देती है। समस्त श्वास खेने का यंत्र, साँस की इस रीति में संचालित हो जाता है; और कम-से-कम शक्ति के ध्येय से अधिक-से-अधिक काम होता है। छाती का खोखला चारों ओर अपनी चरम सीमा तक फैल जाता है, और यंत्र के सब भाग अपने-अपने स्वाभाविक कर्तव्यों और क्रियाओं को करते हैं।

इस प्रकार साँस खेने में सबसे बड़ा यह गुण है कि श्वास खेने की मांसपेशियाँ पूरे तौर से काम में लगाई जाती हैं; और अन्य तरीकों में उनके एक भाग-यात्र प्रयोग में आते हैं। पूरी साँस खेने में और मांसपेशियों में के मांसपेशियों जिनका अधिकार पसलियों पर रहता है, जोर से काम करना है, जिसमें अवकाश बढ़ जाता है कि फेकड़े फैल सकें, और अश्वत्थों को मुनामिच सहारा, धावरयकना पहुँचे पर, मिल जाता है। कुछ मांसपेशियों को निचली पसलियों को उनके स्थान पर पकड़े रहनी है, और कुछ उन्हें बाहर की ओर दबानी है।

और फिर इस रीति में पेट और छाती के बीचवाली चर पूरे



के योग्य है कि पूरी साँस को समझने के पहले नीची साँस से शक्ति हो जाना ही चाहिए ।

एक बार फिर पेट और छाती को धृक् करनेवाली चर्र, पर धार दीजिए । यह क्या है ? हम लोग देख आए हैं कि यह एक मांसपेशी है जो पेट और उसके पदार्थों को छाती और उसके पदार्थों में धृक् करती है । जब यह स्थिर रहती है तो पेट की ओर से देखने में सामान की भाँति या छाता की तरह दिखलाई देती है; इसलिये वही ऊपर छाती की ओर से हम पर दृष्टि डाला जाय तो यह कुम्हार अर्थात् उभड़े हुए टीले की भाँति दिखलाई देती है । जब यह चर्र काम करने लगती है तो कुम्हार नीचे को दबता है और चर्र पेट के पदार्थों को दबाती है जिससे पेट कुछ आगे उभड़ जाता है ।

नीची साँस लेने में ऊपर लिखे हुए पहले तरीकों से साँस खेंने की अपेक्षा फेफड़ों को और भी स्वतंत्रता से काम करना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि अधिक हवा साँस में जाती है । इसी से अधिकतर परिचरमा विद्वान् इसी नीची साँस को ( जिसे वे पेट की साँस कहते हैं ) वैज्ञानिक सर्वोत्तम तरीका कहते और लिखते हैं । परंतु पूर्वाय योगी बहुत दिनों से हमसे भी अच्छे तरीके को जानता है और कुछ परिचरमी लेखक भी अब इस बात को समझने लगे हैं । योगी की पूरी साँस को छोड़कर अन्य रीतियों में यह एक बड़ा दोष है कि किसी तरीके में भा फेफड़ा हवा से भर नहीं जाता—जिवाश-से-जिवादा फेफड़ों का एक भाग-मात्र भरता है—वहाँ तक कि माँची साँस में भी । ऊँची साँस में फेफड़ों का ऊपरी भाग जाता है; मध्य साँस में मध्य भाग और कुछ ऊपरी भाग भरता है; नीची साँस में नीचेवाले और बीचवाले हिस्से भरते हैं । यह बात प्रष्ट है कि जिस तरीके में साँस फेफड़ा हवा से भर जाय वह तरीका अन्य तरीकों की अपेक्षा अधिक पसंद करने के योग्य है । जिस तरीके से

उठाना चाहता है तो उसे जो लगाकर इस क्रिया का और अभ्यास कर लेना चाहिये। श्वास-विज्ञान की क्रियाओं को करने में महत् फल प्राप्त होता है और जिसने इस को प्राप्त कर लिया है, वह इच्छा-पूर्वक अन्य तरीकों से फिर जायगा और अपने मित्रों से यही कहेगा कि "हमें अपने का पूरा फल मिल गया।" हम इन बातों को अभी कह कि आप हम योगीश्वासक्रिया के सिद्ध करने की आवश्यकता श्रमता को पूरी तरह से समझ जायें, और इसे छोड़कर इस की आगे लिखी हुई क्रियाओं में से किसी चित्ताकर्षक क्रिया लिपट जायें। हम फिर आपसे कहते हैं कि सही रीति से प्रारंभ कीजिए तो सही नतीजा मिलेगा; परंतु यदि आप नींव साथ लापरवाही करेंगे तो आपका सारा भवन, शीघ्र ही धा , बह जायगा।

योगियों की पूरी सौंस कैसे प्राप्त की जाय इसकी शिक्षा देने के यह बेहतर होगा कि पहले केवल श्वास ही के विषय में सरल श्रम दे दिए जायें और तब हमके परचान् उसके संबंध में साधा-प्यान देने योग्य बातें बतलायें और तब आगे बढ़कर छाती, पेशियों और फेफड़ों को, जो अपूर्ण सौंस लेने से संतुष्ट हैं, में पड़े हुए हैं, पूरा विकसित करने के लिये अभ्यास प्रदान करेंगे। ठीक इसी स्थान पर हम यह कह दिया चाहते हैं कि पूरी सौंस प्रचरदस्तो की, या अस्वाभाविक बात नहीं है, किन्तु, के विपरीत मूल नियमों पर झूटना, प्रकृति के मार्ग पर वापस आना है। स्वस्थ युवक अंगुली और स्वस्थ मध्यमा का बच्चा दोनों ही प्रकार सौंस लेते हैं; परंतु मध्यम मनुष्य ने जीवन की अस्वाभाविक रीतियों को रहन, बहान और बहाने पहनने आदि में प्रदूषित किया है और अपनी मैमनिक स्थिति को को दिया है। और

आयत्त में रहती है और अपने फायों को उचित रूप पर और भी बढ़ाती है कि अधिक-से-अधिक कार्य हो सके ।

ऊपर लिखी हुई वस्तुओं की क्रिया में नीचे की प्रक्रियाएँ इसे बाहर द्वारा अधिकृत रहती हैं, जो उन्हें थोड़ा नीचे खींचती हैं और अन्य मांसपेशियाँ उन्हें आगे स्थान पर पकड़े रहती हैं और प्रक्रियाओं के बीच की मांसपेशियाँ उन्हें बाहर की ओर प्रेरित करती हैं; इन संयुक्त क्रिया से छाती के बीच का खोखला पूरा-पूरा बढ़ जाता है । इन मांसपेशीक्रिया के अनिरीक ऊपर का प्रक्रिया भी वस्तुओं की बीचवाली मांसपेशियों द्वारा ऊपर को उठाई और बाहर की ओर फैलाई जाती है जिससे ऊपरी छाती का विस्तार भी पूरी तरह तक फैल जाता है ।

यदि आपने चाहे प्रकार की श्वसनक्रियाओं का विशेषताओं को अच्छी तरह अध्ययन कर लिया है, तो आपको तुरंत मालूम हो जाएगा कि पूरे शरीर में श्वसन तंत्रों के प्रकार की क्रियाओं की प्रक्रियाएँ आ जाती हैं और इनके अनिरीक यह लाभ होता है कि छाती के ऊपरी, मध्य, और नीचेवाले भागों की संयुक्त क्रिया से और भी लाभ बढ़ जाता है और श्वसनक्रिया लाभ प्राप्त हो जाता है ।

श्वसन की पूरी शक्ति सम्पूर्ण श्वसन-विज्ञान की मूलधार श्वसन-क्रिया है और श्वसन को हमने यहाँ भी अभिज्ञ हो जाना चाहिए और इसे पूरी तरह से सिद्ध कर देना चाहिए सभी यह बातें लिखी हुई अन्य क्रियाओं से एक प्राप्त करने की धारणा कर सकता है । इसे अपना ही करने से संतुष्ट न होकर जानना चाहिए, परंतु जो खयाल कर श्वसन करने रहना चाहिए, जब तक कि यह श्वसन करने का श्वसन-विज्ञान तक न बन जाए । इससे सिद्ध है सम्पूर्ण और श्वसन की धारणा करना शीघ्र, परंतु इन बातों के बिना तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता । श्वसन विज्ञान का मूलधार कोई श्वसन नहीं है और श्वसन

भाग तक, जो हँसली की हड्डी के स्थान में है, समगति से फैलता जाता है। हिचक-हिचककर साँस मत खींचना। धीमी लगातार एक क्रिया बनाने का यत्न करो। अभ्यास द्वारा, इस साँस की क्रिया को तीन भागों में बाँटने की इच्छा हट जायगी और एक रस खगा-तार साँस हो जायगी। थोड़े ही अभ्यास के बाद आप दो सेकंड में पूरी साँस भीतर खींच सकेंगे।

( २ ) श्वास को भीतर ही कुछ जगह तक रोक रखो।

( ३ ) छाती को स्थिर दशा में रखकर धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालो, श्वास बाहर निकलते समय ज्यों-ज्यों हवा बाहर निकले त्यों-त्यों पेट भीतर दबता जाय, जब हवा कुछ निकल जाय छाती और पेट को ढीला कर दो। थोड़े अभ्यास से कसरत का यह भाग आसान हो जायगा; और जब एक बार गति प्राप्त हो जायगी तब परचाय् तनिक इच्छा करने से यह आप-से-आप हुआ करेगी।

यह बात देखने में आवेगी कि साँस के इस तरीके से श्वास छेने का सारा यंत्र काम में आया जाता है, और फेफड़ों के कुछ भागों को। जिनमें दूर-दूर की भी हवा की कोठरी शामिल हैं, कसरत मिल जाती है। छाती का खोलखा चारों ओर फैल जाता है। आप यह भी देखेंगे कि पूरी साँस वस्तुतः बीबी, मध्य और ऊँची तीनों साँसों की मिश्रण है जो ऊपर दिष्ट हुए क्रम से एक दूसरे के परचाय् शीघ्रता से इस तरह जारी रहती है कि जिससे एक सम, लगातार, पूरी साँस बन जाती है।

यदि आप बड़े शरीर के सम्मुख इस श्वास का अभ्यास करेंगे तो आपको बड़ी सहजता मिल आवेगी, और यदि आप हाथों को पेट के ऊपर रखेंगे तो आपको गति भी मालूम देगी। श्वास खींचने के क्षण में कभी-कभी बंधों को थोड़ा ऊपर उठा देना अच्छा होता है, इस तरह हँसली की हड्डी उठ के जाने से दहने फेफड़े की

हम पाठकों को यह भी स्मरण दिवाया चाहते हैं कि पूरी साँस का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक श्वास में फेफड़े पूरी तरह से हवा से भरे जायें। मनुष्य श्वास द्वारा हवा की साधारण ही मात्रा, एक पूरी साँस की क्रिया द्वारा खींचकर, चाहे हवा की मात्रा दोरी हो या बहुत हो, फेफड़े के सब भागों में वितरित कर सकता है। परंतु दिन में कई बार तो अचर्य, जब-जब अवसर मिले, शरीर-मंत्र को अच्छी तरह तीव्र और दृढ़ता में रखने के निमित्त धीरे-धीरे हवा भरना पूरी-पूरी साँस लेना ही होगा।

नीचे लिखी हुई सादी कसरत से आपकी साँस विदित हो जायगी कि पूरी साँस क्या चीज़ है—

( १ ) थककर सोचे खड़े हो जाओ या बैठो। नाक के द्वारा धीरे-धीरे हवा भीतर खींचो, पहले फेफड़ों के नीचेवाले भाग को हवा से भरते, जो पेट और छाती को घुंथकरनेवाली चट्टन को काम में लाते से होता है, जिससे पेट के अग्रभागों पर थोड़ा दबाव पड़ता है और पेट का अग्रका भाग जरा बाहर आगे की ओर निकल आता है, तब फेफड़ों के मध्य भाग में, नीचेवाली पसलियों, छाती की हड्डी और छाती को फैलाकर हवा भरते। फिर ऊपरी छाती को आगे निकालकर, और इस तरह से छाती को ऊपर उठाकर जिसके माथे ऊपरी १ इंच से ऊपर पसलियों के भी हों, फेफड़ों के ऊपरी भाग में हवा भरते। अंतिम क्रिया में पेट का नीचेवाला भाग कुछ भीतर की ओर ढल जायगा, जिस गति से फेफड़ों को आधार मिल जायगा और फेफड़ों के ऊँचे-ऊँचेवाले भाग के भरने में भी सहायता मिल जायगी।

पहले पढ़ने में तो ऐसा मामूली होगा कि इस रसाग में घुंथ-घुंथ तीन गति हैं। परंतु यह बात सही नहीं है। श्वास का खींचना लगातार होता रहता है, छाती का पूरा गोलना, नीचे की हुई पूर्व-कठिन चरम से लेकर ऊपर छाती के मध्य के ऊपरवाले

## पंद्रहवाँ अध्याय

### सही साँस लेने का प्रभाव

पूरी साँस लेने से जो लाभ होने हैं उनकी महिमा गिननी ही नहीं जाय पौड़ी है। जिस शिष्य ने पहले के सत्रों को ध्यान से पढ़ लिया है उसको जो हम समझने हैं कि हम कामों को गिनाने की शायद ही आवश्यकता हो।

पूरी साँस के अध्ययन से पुष्ट या खी खरी रोग और अन्य रोगों के रोगों से निर्भव हो जाने हैं, यही नुस्खा होने की संभावना ही नहीं रहती और हमें सावर रक्त की नलियों के रोगों का भय जाना रहता है। खरी रोग दोष जीवर के कारण, जो रक्त में कम हुआ लीजने से हो जाता है, होता है। जीवर की खीखना से शरीर-रक्त, बीटाएल्लों के हमलों के बिने अपना हार खोव देता है। अपूर्ण साँस लेने से रंगरों का एक बड़ा भाग नि-  
विर हो जाता है, और ऐसे ही भाग बीटाएल्लों को म्योता देने हैं, जो पहले निर्भव रोगों पर हमला करके बहुत रोग बर्बादी की भूमि बना देने हैं। रंगरों के अपने रक्त से बीटाएल्लों से बच जाने हैं, और रंगरों के रोगों को अपने और स्वयं बनाये का एक-एक बचाव करी है कि रंगरों से अनुचित कार्य किया जाय।

खरी रोगवाले अनुभव बाद, सब संकीर्ण दातां के होने हैं। इसका बड़ा कार्य है। इसका संभव करी कार्य है कि वे अनुभव अनु-  
चित रोगों से भीत लेने को अपना है वह रूप के और हमारे हक-  
दातां व जो विवर्तित हो भरी और वही सही। जो अनुभव पूरे  
रोग का अध्ययन रहता है उसका पूरी और दातां होता है, संकीर्ण

ऊपरी छोटी ललरी में भी हवा प्रवेश कर जाती है ; यही स्थान हमें  
कभी ट्यूबरकुलोसिस ( *Tuber culosis* )-नामक बीमारी  
फैलने की जगह है ।

अभ्यास के शुरू में पूरी साँस को प्राप्त करने में कुछ थोड़ी बहुत  
विकृत मालूम देगी, परंतु थोड़े ही अभ्यास से बाद पछे हो जायेगी  
और जब आप इसे एक बार प्राप्त कर लेंगे तब फिर साँस की इन  
रीतिर्यों में न जायेंगे ।

---

रसग्रहण की क्रिया स्वाभाविक और ठीक नहीं रहती, तब शरीर के पोषण में दिन-पर-दिन कमी होती जाती है, भूख मंद पड़ जाती है, शारीरिक बल घट जाता है और शक्ति क्षीण हो जाती है और मनुष्य सूखने और हीन होने लगता है। ये सब बातें उचित साँस के अभाव से होती हैं।

अनुचित साँस से नाड़ियाँ अर्थात् ज्ञान और शक्ति के तंतु भी हानि उठाने हैं, क्योंकि मस्तिष्क, मेरुदंड, नाड़ीकेंद्र और स्वयं नाड़ियाँ भी, जब रुधिर द्वारा अभूत पोषण पाती हैं तब शक्ति की धाराओं को उत्पन्न करने, भंडार करने और प्रवाहित करने का अयोग्य भीजार बन जाती हैं। और यदि पुष्कल आरसीजन फेफड़ों द्वारा ग्रहण न किया जायगा तो वे अवश्य अणुएँ रह जाएँगी। इस विषय का एक और भी पटल है कि यदि उचित साँस न ली जायगी तो नाड़ियों की शक्ति धाराएँ, बरिक्तियों की भाँति कि स्वयं वह शक्तियाँ जिनमें कि धाराएँ उत्पन्न होती हैं, क्षीण हो जाती हैं; परंतु यह एक पृथक् ही विषय है जिनका वर्णन इस किताब के अन्य अध्यायों में किया गया है; और यहाँ हमारा यह अभिप्राय है कि आपके ध्यान को इन बातों की ओर आकर्षित करें कि अनुचित साँस के कारण नाड़ीजात्र की कारीगरी शक्ति संचालन करने की क्रिया में असमर्थ होती जानी है।

पूरी साँस के अभ्यास करने के अभ्यास में श्वास द्वारा हवा भीतर खींचने समय, छाती और पेट को पृथक् करनेवाली चर मित्रुहरी है और यही, आमतौर पर अन्य अवयवों पर इतना दबाव डालती है; जो क्रिया फेफड़ों की गति के साथ से मिलकर इन अवयवों को मुद्रावमियत से अर्द्धन किया करती है, और उनकी क्रियाओं को उत्तेजित करती है। और उनके स्वाभाविक कार्यों को उत्साहित करती है। प्रत्येक श्वास का खींचना हम भीतरी, ऊसर में ग्राह्यता



घातीयाका मनुष्य भी यदि इस रीति में साँस लेने का अभ्यास शुरु तो उसकी घाती भी विकसित होकर स्वाभाविक विस्तार को प्राप्त जायेगी। ऐसे मनुष्य यदि अपने जीवन का आधार करते हैं तो उनकी घाती के खोरखे को विकसित करना चाहिये। जब कभी आराम मालूम हो कि आप अनुचित रीति से सर्दी खा रहे हैं और जुकाम होने की संभावना है तो आप तुरन्त जोर से पूरी साँस का अभ्यास करके जुकाम को रोक सकते हैं। यदि बहुत सर्दी खा गए हों तो कुछ मिनट तक खूब अच्छी तरह पूरी साँस खींचिए जिससे आपका सारा शरीर समतपता आयगा। बहुत-से जुकाम पूरी साँस और बहुत भोजन द्वारा अच्छे किए जा सकते हैं।

रुधिर की उत्तमता अधिकांश उसकी केन्द्रों में उचित रीति से आक्सीजन से मिश्रित होने पर अवलंबित है, यदि उसमें आक्सीजन थोड़ी मात्रा में मिलता है तो वह खराब हो जाता है, और अनेक प्रकार की गंदगियों से भर जाता है, और शरीर-यंत्र पोषण के अभाव से हानि उठाता है और रुधिर से गंदगियों के न दूर होने के कारण अस्तुनः जियेला हो जाता है। चूँकि सारा शरीर, प्रत्येक इंद्रिय और प्रत्येक अवयव पोषण के लिये रुधिर पर अवलंबित है, इसलिये अस्वच्छ रुधिर का प्रभाव सारे शरीर-यंत्र पर अवश्य बहुत बुरा असर डालेगा। उपाय बहुत सरल है—योगी की पूरी साँस का अभ्यास कीजिए।

अनुचित साँस लेने से आमाशय और अन्य पोषण के अवयव हानि उठाने हैं। आक्सीजन की कमी के कारण केवल वे अणु ही नहीं रहते, किन्तु, चूँकि पचने और शरीर में अपनाए जाने के पहले भोजन का रुधिर में से आक्सीजन लेना अत्यंत आवश्यक है, इसलिये यह बात स्पष्ट है कि अधूरी साँस से पाचन और अपनाने की क्रियाएँ बिलकुल निरर्थक हो जाती हैं। और जब अपनाया अर्थात्

प्रचीले तरीकों से स्वास्थ्य को तलाश में भंडार का भंडार धन खर्च कर देते हैं। स्वास्थ्य तो द्वार पर अवस्थित है, और वे ध्यान नहीं देने। सच है जिस पत्थर को खूबई अस्वीकार करता है, वही पत्थर स्वास्थ्य-मंदिर के प्रधान कोने पर का पत्थर है।

---

पहुँचाता है और पोषण तथा मज्जत्वांग के अवयवों में स्वभाविक रुधिर संचार करके मदद करता है। ऊँची और मध्य सर्तों में इस भीतरी मर्दन के जाओं से अवयव वंचित हो रह जाते हैं।

आजकल परिचामी संसार शारीरिक शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दे रहा है, यह बड़ी अच्छी बात है। परंतु अपने इस प्रयत्न उत्पन्न में यह इस बात को न भूल जाय कि बाहरी ही मांसपेशियों की कसरत ही सब कुछ नहीं है। भीतरी अवयवों को भी व्यायाम की आवश्यकता है, और इस व्यायाम के लिये प्रकृति का उद्देश्य पूरी सर्त का खेना है।

प्रकृति का प्रधान औज़ार, इस व्यायाम के लिये, छाती और पेट के बीचवाली भांस की चदर है। इसकी गति से पोषण और मज्जत्वांग के प्रधान-मधान अवयव संचालित होते रहते हैं; और यह प्रत्येक स्वाम और प्रद्वाम में उन्हें दबली और मर्दन करती है, उनमें रुधिर प्रवाहित करती और फिर निचोड़ कासती है, जिससे अवयवों में शक्ति भरी रहती है। कोई अवयव या शरीर का भाग क्यों न हो, यदि उसका व्यायाम न होगा तो वह शून्य-शून्य बेकाम हो जायगा, और अपना काम न करेगा; और चदर की क्रिया द्वारा भीतरी व्यायाम को न कराने से बीमारी की दशा उत्पन्न हो जाती है, पूरी सर्त कथित चदर को मुनासिब हरकत देती है और मध्य तथा ऊपरी छाती को काम देती है। यह अपनी क्रियाओं द्वारा सब कुछ "पूरी" है।

केवल परिचामी ही शरीरशास्त्र की दृष्टि से, विना पूर्वीय विज्ञान और दर्शनों के संबंध के, यह योगियों की पूरी सर्त की क्रिया, प्रत्येक पुण्य, श्री और वर्य के लिये, जो स्वास्थ्य को प्राप्त और संवित किया चाहता है, अर्थात् आवश्यक है। इसकी सरलता ही के कारण सहजों अनुरूप इस पर ध्यान नहीं देने, और चेबोदे तथा





में हवा को प्रवाहित कर देने की आवश्यकता होती है। वे अपनी और स्वासक्रियाओं के प्रत्येक अभ्यासों के अंत में भी इसे करते हैं, और हमने इस किताब में इसी रीति का अनुसरण किया है। यह सफाई की स्वासक्रिया फेफड़ों को साफ करती है और उनमें हवा प्रवाहित कर देती है; और यह फेफड़ों की हवावाली कोठरियों को उत्तेजित करती है और स्वास लेने के अवयवों को चौकड़ा बनाकर उनको स्वस्थ दशा में रखने की चेष्टा करती है। इन बातों के अतिरिक्त यह क्रिया मारे शरीर को बहुत ताज़ा कर देनेवाली पाई गई है। वक्ता लोगों और गधियों के जब स्वास के अवयव थक जायें तब इसे वे बहुत सुखदायिनी पावेंगे।

( १ ) पूरी साँस भीतर खींचो।

( २ ) कुछ सेकंड तक हवा को भीतर ही रोक रखो।

( ३ ) अपने छोठों को बैठा बना लो जैसा सीटी बजाने में बनाते हो ( परंतु गालों को मूठ कुमाओ ) तब छोठों के बीचवाले छिद्र से थड़े जोर से थोड़ी हवा बाहर फेंको। छण-भर ठहर आओ, हवा रोके रहो, और फिर थोड़ी और हवा जोर से फेंको। तब तक थोड़ा रुक-रुककर यही क्रिया करते आओ, जब तक कुल हवा निकल न जाय। याद रखो कि छोठों के बीच के छिद्र से हवा निवालेने में बहुत बड़ा जोर लगाना चाहिए।

जब मनुष्य थककर सुस्त हो गया हो उस समय यह क्रिया बहुत ही ताज़गी देनेवाली पाई आयगी। एक बार परीक्षा करने में शिष्य उसके गुणों को अच्छी भाँति समझ लायगा। इस कमरत का तब तक अभ्यास करने आओ जब तक यह स्वाभाविक रीति से और सरलता-पूर्वक न होने लगे; क्योंकि यह इस किताब में दी हुई धनेकों कमरतों में प्रत्येक के अंत में की जाती है, और इसलिये इसे बहुत धैर्यी तरह से मिला कर लेना चाहिए।

# सोलहवाँ अध्याय

## श्वास के अभ्यास

हम नीचे श्वास की तीन रीतियाँ बनाने दें, जो योगियों की बहुत प्यारी हैं। पद्यों में विष्णुवात योगियों की, साक्र करनेवाली श्वासक्रिया है जिसके द्वारा योगियों के फेफड़े इतने मुहक और बलवान् हो जाते हैं। ये लोग इस साक्र करनेवाली श्वासक्रिया द्वारा प्रत्येक श्वास के अभ्यास को समाप्त करते हैं, और हमने इस किताब में इसी तरीके को अनुसरण किया है। इस योगियों के उस अभ्यास को भी देते हैं, जिससे नाभियों में शक्ति संचाक्षित होती है, और जो अभ्यास युगों से उनमें प्रचलित चला आता है, और जिसमें परिचामी स्वास्थ्याचार्य लोग कुछ भी अधिक न जोड़ सके, यद्यपि कुछ लोगों ने योगाचार्यों से लेकर इसे अपनी पद्धति में मिला लिया है। इस योगियों की आवाज़ साक्र करनेवाली कमरत को भी देते हैं, जो अच्छे पूर्वी योगियों की मधुर और प्रबल बाष्पी का कारण है। हम भी यह समझते हैं कि यदि हम किताब में इन तीन कसरतों के अलावा और कुछ न होता तो भी यह किताब हमारे शिष्यों के लिये बहुमूल्य होती। इन कसरतों को हमारी ओर से उपहार या प्रसाद समझकर ग्रहण कीजिए और इनका अभ्यास कीजिए।

योगी की साफ करनेवाली श्वासक्रिया

योगी लोग एक प्रकार की श्वासक्रिया का, बड़े मन से, उस समय अभ्यास करते हैं जब उन्हें फेफड़ों को साक्र करने या फेफड़ों

में हवा को प्रवाहित कर देने की आवश्यकता होती है। वे अपनी और श्वामक्रियाओं के प्रत्येक चम्प्यासों के अंत में भी इसे करते हैं, और हमने इस बिनाश में इसी रीति का अनुसरण किया है। यह चट्टाई की श्वामक्रिया फेफड़ों को साफ़ करती है और उनमें हवा प्रवाहित कर देती है; और यह फेफड़ों की हवाभाली कोठरियों को उत्तेजित करती है और श्वाम लेने के अवयवों को चौकता बनाकर उनकी स्वस्थ दशा में रहने की चेष्टा करती है। इन बातों के अतिरिक्त यह क्रिया सारे शरीर को बहुत ताज़ा कर देनेवाली पाई गई है। बच्चा जोगों और गवियों के जब श्वाम के अवयव थक जायें तब इसे वे बहुत सुखदायिनी पावेंगे।

( १ ) पूरी सॉस भीतर गोंघो।

( २ ) कुछ संबंध नक हवा को भीतर ही रोक रखो।

( ३ ) अपने ओठों को बैसा बना लो जैसा सीटी बजाने में बनाते हो ( परंतु गालों को मत फुलाओ ) तब ओठों के बीचवाले द्विद्र से बड़े जोर से थोड़ी हवा बाहर फेंको। रुक-भर ठहर जाओ, हवा रोके रहो, और फिर थोड़ी और हवा जोर से फेंको। तब तक थोड़ा रुक-रुककर यही क्रिया करते जाओ, जब तक कुल हवा निकल न जाय। बाद रखो कि ओठों के बीच के द्विद्र से हवा निकालने में बहुत बड़ा जोर लगाना चाहिए।

जब मनुष्य थककर सुस्त हो गया हो उस समय यह क्रिया बहुत ही ताज़गी देनेवाली पाई जायगी। एक बार परीक्षा करने से शिष्य उसके गुणों को भली भाँति समझ जायगा। इस कसरत का तब तक चम्प्यास करते जाओ जब तक यह स्वाभाविक रीति से और मरलता-पूर्वक न होने लगे; क्योंकि यह हम बिनाश में दी हुई धनेश्वर कपूरों में प्रत्येक के अंत में की जाती है, और इसलिये इसे बहुत अच्छी तरह से निद्व कर लेना चाहिए।



## योगियों की नाड़ी-बलविधायिनी श्वासक्रिया

यह योगियों की भली भाँति जानी हुई कसरत है; वे इसे मनुष्य के लिये सबसे बढ़ी नाड़ियों को उत्तेजित करनेवाली और शक्ति देनेवाली क्रिया ( महापथि ) समझते हैं । इसका अभिप्राय नाड़ीबल को उत्तेजित करना और नाड़ीबल शक्ति, तथा जीवट को विकसित और सुष्ट करना है । इस अभ्यास से नाड़ीकेंद्रों में उत्तेजक दबाव का प्रभाव पड़ता है, जिससे सारा भाड़ीबल उत्तेजित और शक्तिमय हो जाता है, और जिससे सारे शरीर में नाड़ीबल का अधिक प्रभाव फैल जाता है ।

( १ ) सीधे खड़े हो ।

( २ ) पूरी साँस खींचो और उसे रोक रखो ।

( ३ ) अपनी भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, वे हलकी रहें, बहुत तनी न रहें, उनमें केवल इतना ही बल दिया जाय कि वे फैली रहें ।

( ४ ) धीरे-धीरे हाथों को कंधों की ओर खींचो, शनैः-शनैः मांसपेशियों को संकुचित करते जाओ और उनमें बल देते जाओ, जिससे कि कंधों तक पहुँचते-पहुँचते मुठियाँ इतनी कड़ी बँध जायँ कि उनमें कैपकैपी की गति आ जाय ।

( ५ ) तब मांसपेशियों को कड़ी ही रखते हुए, मुठियों को धीरे-धीरे आगे फैलाओ, और बड़ी तेज़ी से पीछे खींचो ( कड़ी ही रखते हुए ) ऐसा कई बार करो ।

( ६ ) मुँह की राह जोर से हवा छोड़ दो ।

( ७ ) फेफड़ों को साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया कर जाओ ।

इस कसरत की दूसरी मुठियों की पीछे खींचनेवाली तेज़ी पर, मांसपेशियों में लगाए हुए जोर पर और फेफड़ों को हवा से भरे रहने पर अवलंबित है । इस कसरत की परीक्षा करके तो इसकी

महिमा का अनुभव होगा। यह विश्वास देने में अद्वितीय है, जैसा कि परिचयी मित्र कहा करते हैं।

### योगियों की वाणीविधायिनी श्वासक्रिया

योगी लोग वाणी शुद्ध करने के लिये भी एक रीति की श्वास-क्रिया करते हैं। वे अपनी आरम्भजनक आवाज़ के लिये विख्यात होते हैं, जो हृद, मुचिकन, साक और गुरही के शब्द की भाँति दूर तक पहुँचनेवाली होती है। वे इसी विशेष रूप की श्वासक्रिया का अभ्यास किए हुए हैं जिसमें उनकी आवाज़ मधुर, सुंदर और उच्च हो गई और उसमें वह अत्यन्त तीव्र विशेष प्रवाहिनी होने का गुण आ गया है और इसकी शक्ति भर गई है। नाथों की हुई कसरत एक समय में उन सब गुणों को देखेगी यदि शिष्य जो अगाध इस क्रिया का अभ्यास करेंगे। यह बात समझ रखना चाहिए कि इस रीति की श्वासक्रिया का कभी-ही-कभी अभ्यास करना चाहिए और इसे रसातल सेना का एक तरीका ही न बना लेना चाहिए।

( १ ) पूरी मौन बहुत धीरे-धीरे पर अगानारनाक द्वारा लीची, और रसातल लीचने में जितना समय लेते बने, को।

( २ ) कुछ लेखक तक उसे रोक रखते।

( ३ ) बड़े जोर से एक ही शब्दों में कुछ हवा पूरा मुँह फैलाकर छोड़ दो।

( ४ ) साक करनेवाली श्वासक्रिया द्वारा चेहरों को आराम दे दो।

बोझने और गाने में बीने शब्द अत्यन्त किया जाता है उसके विषय में योगियों के गहन विचारों में प्रवेश न करके हम यह करना चाहते हैं कि तबसे से उन्हें बिदिन हुआ है कि आवाज़ का स्वर, राग और शक्ति केवल गले के सांत्विक अवस्थाओं ही पर अवलंबित नहीं है, किन्तु, चेहरे की मांसपेशियों आदि भी इस विषय में अधिक

प्रभाव रगर्ता हैं । बहुत-से चौड़ी छातीवाले केवल भीमी आवाज पैदा करते हैं और अन्य छोटी छातीवाले आश्चर्यजनक बल और गुण का आगाज पैदा करते हैं । यह एक मनोहरजक उदाहरण परीक्षा करने के योग्य है । एक आदमी के सामने खड़े हो, और मुँह बंद कर मीठी बजाओ और मुँह की मूरत और चेहरे की आकृति को स्मरण रखो, तब थोड़ो समय गाओ, जैसा तुम स्वभावतः बोला या गाया करते हो और तब उनके अंतर पर ध्यान दो । तब फिर कुछ क्षण तक सीटी बजाओ और तब बिना ओठों और चेहरे की स्थिति बदले हुए कुछ गाओ और देखो कि कैसा खचीला, मधुर, साफ और सुंदर स्वर उत्पन्न होता है ।

नीचे लिखी हुई योगियों की सात कमरतें फेफड़ों, मांसपेशियों, ग्रंथियों और हवा की कोठरियों आदि को विकसित करनेवाली हैं । वे बहुत ही सरल पर आश्चर्यजनक रीति से लाभदायिनी हैं । इसकी सरलता के कारण तुम इनसे विमुक्त मत हो, क्योंकि ये योगियों की लावधानी की परीक्षाओं और अभ्यासों का प्रतिफल हैं और अनेक पेचीदा कसरतों का सारांश हैं ; अनेक कसरतों के अनावश्यक भागों को छोड़कर केवल आवश्यक भागों से ही ये कसरतें बनी हैं ।

### ( १ ) श्वास का रोकना

यह बहुत ही मुख्य कसरत है जो श्वास लेनेवाले अवयवों और फेफड़ों को विकसित और पुष्ट करती है और इसके अधिक अभ्यास से छाती भी फैलती है । योगियों को यह बात विदित हुई है कि कभी-कभी फेफड़ों को हवा से भ्रूय भरकर श्वास को रोक रखने से बड़ा ही लाभ होता है, केवल श्वास ही लेने के अवयवों को नहीं, किंतु, पोषण के अवयवों, नाड़ीजाल और रुधिर को भी । उन्हें यह विदित हो गया है कि श्वास को समय-समय पर रोक रखने से उम

हवा की सहायता हो जाना है जो पहली साँसों को हवा फेफड़ों में रोप रह गई रहती है; और रुधिर में अस्थी तरह से आक्सीजन मिश्रित हो जाना है। वे यह भी जानते हैं कि हृय प्रकार से रोकी हुई हवा कुल रही वसायों को घटोर लेती है और जब श्वास बाहर निकाली जाना है तो अरने माथ गरीर-यंत्र के इन निम्नमे द्रव्यों को बाहर छिप जाना है और फेफड़ों को उम्मी प्रकार साफ़ करना है जैसे अंत-दियों को शुद्धास साफ़ करना है। योगी ज्ञान हृय कपरत का उप-देश आमागव, बहुत और रुधिर के अनेक विकारों में करते हैं, और यह भी जाना गया है कि हृयमें साँस का बदलान, जो फेफड़ों में कम हवा जाने से उत्पन्न होता है, दूर हो जाना है। हम शिष्यों से आग्रह करते हैं कि वे इन अभ्यास पर अस्थी तरह से ध्यान दें क्योंकि हृयमें बड़े-बड़े गुण हैं। नीचे लिखी हुई शिक्षाओं से इन क्रिया का साफ़ अनुभव होगा—

( १ ) नीचे लड़े हो।

( २ ) पूरी साँस भीतर खींचो।

( ३ ) तब तक श्वास को भीतर ही रोके रहो जब तक उसे आराम से रोक सको।

( ४ ) मुँह से श्वास को बाहर निकाल दो।

( ५ ) साफ़ करनेवाली साँस की क्रिया कर डालो।

पहले तुम बहुत थोड़े अर्से तक श्वास को भीतर रोक सकोगे, परंतु थोड़े अभ्यास में तुम्हें बहुत उत्थति जान पड़ेगी। यदि अपनी उत्थति जानना चाहते हो तो यही ले लो।

( २ ) फेफड़ों की कोठरियों को उत्तेजित करना

यह कसरत फेफड़ों की हवावाली कोठरियों को उत्तेजित करने के अभिप्राय से की जाती है; परंतु प्रारंभिक शिष्यों को हममें अधिकता न करना चाहिए और बड़े होर से तो हमें कभी भी न करना चाहिए।

दिमी-किसी को पहले हृय क्रिया से चढ़ा जाने जगेगा, ऐसा दश में उन्हें कसरत छोड़कर थोड़ा उसी जगह टहल खेना चाहिए।

( १ ) मोधे राहें हो ।

( २ ) धीरे-धीरे शनैः-शनैः श्वास भीतर रहींगे ।

( ३ ) श्वास भीतर रहींघते समय हाथों की अँगुलियों के धों से धाती को जरा-जरा ठोंकते जाघो और ठोकने के स्थान को थकते रहो ।

( ४ ) जब फेफड़े भर जायें हवा को भीतर रोक रखो और धाती पर हथेलियों से धीरे-धीरे धापी दो ।

( ५ ) साक्र करनेवाकी क्रिया कर टाको ।

यह कसरत सारे शरीर को सुख देनेवाकी और उत्तेजित करनेवाकी है और यह योगियों का विख्यात अभ्यास है । अधूरी साँस लेने से फेफड़ों की बहुत-सी हवा की कोठरियाँ क्रियाहीन हो जाती हैं और हृमी से मृतप्राय हो जाती हैं । जिसने बरसों से अधूरी साँस लिया है उसे इन सब विगड़ी हुई हवा की कोठरियों से पूरी साँस द्वारा पुन्यारगी पूरा काम लेना और उन्हें कार्य में उत्तेजित करना बहुत सरल न होगा, परंतु इस कसरत से धीरे-धीरे वह अभीष्ट सिद्ध हो जायगा । यह कसरत अभ्यसन और अभ्यास के योग्य है ।

( ३ ) पसलियों की लचाला बनाना

इस समझा थाय है कि पसलियों सुलायम हड्डी ( फुरी ) द्वारा जोड़ी गई हैं, जिनमें बहुत फैलाव हो सकता है । उचित साँस लेने में पसलियाँ प्रधान काम करती हैं, और उन्हें कभी-कभी विशेष अभ्यास दे देने से और उनके लचीलेपन को ठीक रखने से अभ्यास ही होगा । अरवाभाविह रीति से और बैठने और खड़े होने के कारण, जैसा कि रिवाज हो गया है, पसलियाँ लपट और बेकचीकी हो जाती हैं । इस कसरत से वह दोष दूर हो जायगा ।

( १ ) सीधे खड़े हो ।

( २ ) हाथों को दोनों बगलों पर एक-एक करके इतने ऊँचे कानों के पास रखो जितने ऊँचे आराम से रख सको, अँगूठे पीछे की ओर हों, हथेलियाँ छाती की बगलों पर हों और अँगुलियाँ आगे की ओर छाती पर हों ।

( ३ ) पूरी साँस भीतर खींचो ।

( ४ ) हवा को भीतर ही थोड़ी देर रोक रखो ।

( ५ ) तब धीरे-धीरे छाती को दबाना शुरू करो और साथ ही रवास को भी छोड़ने आओ ।

( ६ ) सज्जाई की बिचा कर ढाको ।

इस अभ्यास को थोड़ा ही करना, इसमें अधिकता न करना ।

( ४ ) छाती का फैलाना

अपने काम पर मुँह के रहने से छाती संकीर्ण हो जाया करती है, इस कमरत से स्वाभाविक दबाव प्राप्त होता है और छाती फैलती है ।

( १ ) सीधे खड़े हो ।

( २ ) पूरी साँस भीतर खींचो ।

( ३ ) हवा को भीतर ही रोक रखो ।

( ४ ) दोनों हाथों को आगे फैलाओ और दोनों बंद मुठ्ठियों को कंधों की उँचाई के समान उँचाई पर रखो ।

( ५ ) दाँव भोंका देकर भुजाओं को सीधा पीछे बगलों की ओर कंधों की साथ में आओ ।

( ६ ) तब फिर स्थिति ४ में आओ, फिर स्थिति ५ में आओ । ऐसा कई बार करो ।

( ७ ) सुले मुँह से जोर से साँस छोड़ दो ।

( ८ ) सज्जाई की बिचा कर ढाको ।

इसका कम-ही-कम अभ्यास करना, प्रतिरुध न करना ।

## ( ५ ) टहलनेवाली कमरत

( १ ) गिर जैसा, झुड़ी तनिक भीतर निचो डूँ, कंधे पीछे से हों पैगी स्थिति में बराबर कदमों से टहलो ।

( २ ) पूरी साँस भीतर खींचो, गिनते आधो (मन-ही-मन) १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, एक गिनती एक कदम पर तिसरे की गिनती तक श्वास का खींचना पूरा हो जाय ।

( ३ ) नाक द्वारा धीरे श्वास को छोड़ो, पहले की भाँति गिनते आधो—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८—एक कदम पर एक गिनती ।

( ४ ) श्वासों के बीच में बिना श्वास के रहो, चलना जारी रखो और गिनते आधो १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ एक कदम पर एक गिनती ।

( ५ ) तब तक करते आधो जब तक थकावट न मालूम होने लगे । फिर थोड़े अर्ध तक आराम कर लो, और फिर छुटी हो तो शुरू करो । दिन में कई बार ऐसा करो ।

कोई-कोई योगी १, २, ३, ४, की गिनती तक श्वास को भीतर ही रोके रहते हैं और फिर ८ तक की गिनती में छोड़ते हैं । जो तरीका अधिक पसंद पड़े उसी का अभ्यास करो ।

## ( ६ ) प्रातःकाल की कसरत

( १ ) जंगी तरीके से सीधे खड़े हो, सिर जैसा, झालें सामने, कंधे पीछे दबे, घुटने कड़े और हाथ बगलों में हों ।

( २ ) पैर की अँगुलियों पर धीरे-धीरे अपने शरीर को उठाओ, साथ-ही-साथ पूरी साँस भी भीतर खींचते आधो ।

( ३ ) श्वास को भीतर ही कुछ सेकंड तक रोक रखो, उसी स्थिति में बने रहो ।

( ४ ) धीरे-धीरे पहली स्थिति में आओ, साथ ही धीरे-धीरे नाक द्वारा श्वास भी छोड़ते आओ ।

( ४ ) गजार्धवाली शॉम की जिन्ना कर दालो ।

( ५ ) बर्द बार ह्म त्रिपा को करो, कभी कबेरी बाई टोंग मे काम लो, कभी कबेरी दाहनी टोंग मे ।

( ७ ) दधिरसंचार का उन्नेजिन करना

( १ ) गीये नदे दो ।

( २ ) पूरा शॉम लीजो और होको ।

( ३ ) घोरा चालो मुचो और एक लुदी या बेंग को दाला मे पकड़ो, और गनैःगनैः अपने कुछ बल को उग्र पकड़ में लगा दो ।

( ४ ) पकड़ को छोड़ दो, पदली गिरि में का आधो और धीरे-धीरे श्याम को छोड़ो ।

( ५ ) बर्द बार देगा करो ।

( ६ ) गजार्धवाली त्रिपा में गमास कर दालो ।

यह क्रमशः विना लुदी और बेंग के भी हो सकती है, केवल कल्पित लुदी को पकड़ो परंतु बल पूरा लगाओ । यह क्रमशः दधिर-संचार को उन्नेजिन करने के कारण योगियों को बहुत प्यारी है, क्योंकि हममें दधिरावस्थाक धमनियों का दधिर छोड़ों की ओर दीवता है, और दधिरावस्थाक शिराओं का दधिर हृदय और फेफड़ों की ओर दीवता है, जिससे यह उस आक्सीजन को ग्रहण कर सके जो दबा के साथ श्वास द्वारा लींचा गया है । अधूरे संचार की दशा में फेफड़ों में पूरा दधिर ही नहीं होगा कि जो आक्सीजन को ग्रहण कर सके और शरीर-यंत्र पूरी सॉस का पूरा काम नहीं उठा सकता । ऐसी दशाओं में विशेष करके, ह्म क्रमशः का कभी-कभी पूरी शॉम की कसरत के साथ अभ्यास कर लेना बहुत लाभदायक होगा ।



# सत्रहवाँ अध्याय

## नाक और मुँह से श्वास लेना

योगियों के श्वासविज्ञान में पहली शिक्षाओं में सबसे प्रथम शिक्षा यह है कि नाक द्वारा सर्वदा साँस लेना चाहिए, और मुँह के द्वारा साँस लेने की आदत छोड़ देना चाहिए।

श्वास लेने के अवयव मनुष्य के शरीर में ऐसे बने हुए हैं कि नाक और मुँह दोनों द्वारों से साँस ले सकता है, परंतु किस द्वार से वह साँस ले यह विषय बहुत ही प्रधान है, क्योंकि एक द्वार से साँस लेने से तो स्वास्थ्य और बल का लाभ होता है और दूसरे द्वार से लेने से रोग और निर्बलता मिलती है।

मनुष्य के बिले साँस लेने का उचित तरीका नाकों ही द्वारा साँस लेने का है, हम बात की शिक्षा देने की आवश्यकता न पड़ती, परंतु खेद है कि इस सीधी सादी बात में भी सम्य मनुष्यों की मूर्खता आश्चर्यजनक है। हम सब प्रकार की जीविका के मनुष्यों में ऐसे मनुष्यों को पाते हैं जिनकी आदत मुँह ही से साँस लेने की है, और ये मनुष्य अपने बच्चों को भी मुँह से साँस लेने की पूरी इजाजत-सा दे देते हैं जिससे उन्हें भी मुँह ही से साँस लेने की आदत पड़ जाती है।

सम्य मनुष्यों की बहुत-सी बीमारियाँ निश्चय इसी मुँह से साँस लेने की प्रचलित रीति के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। जिन बच्चों को मुँह से साँस लेने की सुविधा मिल जाती है, वे शीघ्र जीवट और निर्बल संगठन के साथ पूरि पाते हैं, और बीवनाश्रय में स्वास्थ्य में गिर जाने हैं और जीवन रोगी हो जाते हैं। पहरी प्रत्यक्ष की मता बेहतर बताव करती है, क्योंकि वह स्वाभाविक प्रकृति

का अनुसरण करती है, और वह अपने बच्चों को ऐसी रीति से रखती है कि वे अपने छोटे ओठों को बंद किए रहते हैं और नाक ही से साँस लेने हैं। जब बच्चा सो जाता है तो वह उसके सिर को आगे की ओर थोड़ा मुका देती है, जिस स्थिति से घन्चे का मुँह बंद हो जाता है। और उसे नयनों की से साँस लेना आवश्यक हो जाता है। यदि हम खोगों की सम्य मातृपै भी इसी तरीक़ीय को ग्रहण कर लेतीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार हो जाता।

मुँह से साँस लेने की पृथित आदत से बहुत-सी सांफ़िक बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, इसी कारण से जुकाम और फेफड़े-संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न होती पाई गई हैं। बहुत-से मनुष्य जो दिलावट के लिये दिन को मुँह बंद किए रहते हैं, रात को मुँह ही से साँस लेते हैं और इस तरह बहुधा बीमारी बुझा लेते हैं। भावधानी से की गई वैज्ञानिक परीक्षाओं द्वारा जाना गया है कि वे जंगी बिपाही और जहाज़ी जो अपना मुँह खोलकर सोते हैं, सांफ़िक बीमारियों के आक्रमण में उन खोगों की अपेक्षा अधिक पड़ा करते हैं, जो नयनों द्वारा उचित साँस लेने हैं। एक उदाहरण में यह वर्णन किया गया है कि एक बार एक जंगी जहाज़ में जो विदेशी पा, शीतला की बीमारी बुरा रूप में फैली, और इस बीमारी से जितनी मौतें हुईं सब उन्हीं मनुष्यों की हुईं जो मुँह से साँस लेनेवाले थे, नाक से साँस लेनेवाला एक मनुष्य भी मरा।

रवास लेने के अवयवों की रक्षा करने के साधन छद्मा और धूँधनिवारक आदि नयनों की में बने हैं। जब साँस मुँह से ली जाती है, तो मुँह से लेकर चेहरे तक हवा को छाननेवाली या हवा की धूल और अन्य पदार्थों को रोक रखनेवाली कोई चीज़ नहीं है। मुँह से चेहरे तक धूल धक्कड़ और गंदी चीज़ों के बिचे साफ़ रास्ता है और रवास लेने का सारा जीहार अवहित है।

इसके प्रतिरिक्त ऐसी अनुचित सोम से बहुत सदाँ हवा भी फेंकी  
तक पहुँच जाती है। और उन्हें हानि पहुँचाती है। रवाय के  
अवयवों का सूख जाना प्रायः मुँह से ठंडी हवा को साँस लेने  
से होता है। जो मनुष्य रात को मुँह से साँस लेता है वह सते  
ठठते ही मुँह में जलन और गले में सूखेपन का अनुभव करता है।  
यह प्रकृति के नियमों में से एक प्रधान नियम का उल्लंघन कर  
रहा है और बीमारी का बीज बो रहा है।

एक बार फिर स्मरण कर लीजिए कि रवाय के अवयवों को  
रक्षित रखने के लिये मुँह में कोई साधन नहीं है; सदाँ हवा, धूल  
धकड़, तरह-तरह की खराब चीजें और कीटाणु सरलता से ठम  
द्वार में होकर फेफड़ों तक पहुँच सकते हैं। इसके विपरीत गणों  
और नाक के भीतर की गलियों में प्रकृति ने इस विषय के संबंध  
में बड़ी सावधानी से इतजाम कर दिया है। नथने बहुत संकीर्ण हुमा  
करते हैं और धूम-धुमास के साथ गलियों द्वारा बने हैं, और द्वार प  
ऐसे खड़े-खड़े भग्नित बाल रखते हैं जो हवा को कूड़े करकट से सा  
करने के लिये छद्म और चलनी का काम देते हैं, जब रवास बा-  
आती है तब इस कूड़े करकट को लेती आती है। नथने केवल इसी  
मुख्य बात को नहीं करते, किन्तु वे रवास में ली हुई हवा को गरम  
कर देने का भी एक प्रधान काम करते हैं। लंबी, लंग और टेढ़ी-मेढ़ी  
गलियाँ गरम लसखसी मिट्टी से बनी होती हैं, और जब हवा इनमें  
आती है तो गरम हो जाती है, जिससे वह गले और फेफड़ों के ना-  
जुक अवयवों को हानि पहुँचावे।

मनुष्य को जोड़कर और कोई जानवर मुँह खोलकर नहीं सोता  
और न मुँह से साँस लेता, और अगल में यह विरवास किया जाता  
है कि केवल सम्य ही मनुष्यों ने प्रकृति की क्रियाओं का अवलोकन  
किया है, और बहरी जगत् तो सर्वदा सही साँस लेती है। या

संभव है कि मनुष्यों ने यह अस्वाभाविक आदत अस्वाभाविक रहन, निर्बलकारी विज्ञान और अधिक उष्णता के कारण प्राप्त की हो।

मयनों के साक्र करने, छानने और चालनेवाले यंत्र के कारण हवा गले और फेफड़ों के जात्रुक अवयवों में जाने के योग्य हो जाती है; क्योंकि जब तक यह प्रकृति के साक्र करनेवाले यंत्र ने साक्र नहीं की जाती तब तक वह इन अवयवों में पहुँचने के योग्य नहीं होती। जो बूझा करकट मयनों की चक्रनियों और धार्म स्थितियों द्वारा रोक लिए जाने हैं, वे बाहर आनेवाली मौम के साथ बाहर निकाल दिए जाने हैं, और यदि वे बहुत शीघ्रता से एकत्र हो जायें या चक्रनियों से बचकर भीतर चले जायें तो प्रकृति धीरे पैदा करके, जो बूझा देकर उन्हें बाहर निकाल फेंकती है, हमारा रचा करती है।

हवा जब फेफड़ों में प्रवेश करती है तो बाहरी हवा से उतना भिन्न हो जाती है, जितना भभके से साक्र किया हुआ पानी बहसपे के पानी से भिन्न होता है। मयनों की पेचीदा साक्र करनेवाली कारीगरी, जो हवा की गंदगियों और मील को बाहर ही एकद्वर रोक रखती है, उतनी ही प्रधान है, जितनी मुँह की त्रिया छोटे चूर्णों के बीज और मल्लिकियों के बीजों आदि को एकद्वर आमाशय में जाने से रोक रखने में प्रधान है।

मुँह से स्वास लेने में और एक यह दोष है कि मयनों की गड़ियों कम व्यवहार में आने के कारण साक्र और निर्बलक नहीं रह सकती और वे मीठी होकर बंद रह जाती हैं और बीमारी में मुक्ति हो जाती है। जैसे आवागमन न होने से मयनों पर आम और आदम्लता बसा आते हैं, वैसे ही व्यवहार में न आए जाने से मयने भी बंद कर-कट से भर आते हैं।

जिन मनुष्यों को नाक ही से साँस लेने की आदत है वह बंद और बंदी हुई नाकों से दुःखी नहीं हो सकना, परंतु उनके काम के

लिये, जो थोड़ा बहुत मुँह से साँस लेने के आदी है, और जो स्वाभाविक और सही तरीके से साँस लिया चाहते हैं नयनों के साक़ करने का रास्ता बतला देना अच्छा होगा कि नयने साक़ और पूरा करकट से रहित हो जायें।

योगियों की प्रचलित रीति यह है कि नाक से थोड़ा पानी ऊपर को चढ़ा लें और उसे गले में उतार दें, जहाँ से यह मुँह की राह बाहर निकाल दिया जा सकता है। कोई हिंदू योगी पानीभरे बर्तन में अपना चेहरा डुबो देते हैं और नाक से पानी खींचते हैं, परंतु इस तरीके में अधिक अभ्यास की आवश्यकता है, और पहली रीति इससे अधिक आसान और इतनी ही लाभदायक है।

दूसरी अच्छी विधि यह है कि खिड़की खोल लें और उसके पास बैठकर पूर्य स्वर्णदता से साँस लें, एक नयने को उँगली या धाँगूठे से बंद करके दूसरे से हवा भीतर खींचें, फिर उसे बंद करके पहले से हवा खींचें। इसी प्रकार नयनों को बदलते हुए बड़ी देर तक साँस लेते रहें। यह रीति भी नयनों को बाधाओं से रहित बना देगी।

हमने शिष्यों से नाक द्वारा साँस लेने का, यदि उनकी आदत ऐसी न हो तो, आग्रह करते हैं और उन्हें समझा देते हैं कि इस बात को बहुत छोटी बात समझकर इसमें लापरवाही न करें।

# अठारहवाँ अध्याय

## शरीर के अणुजीव

हरयोग यह सिद्ध करता है कि जैसे भौतिक जड़ पदार्थ परमाणुओं से बने हैं वैसे ही यह शरीर देहाणुओं ( Cells ) से बना है, और प्रत्येक देहाणु अपने में एक अणुजीव धारण किए हैं, जो देहाणु की क्रियाओं पर शासन करता है। ये जीव, अल्पमात्रा में विकारा पाए हुए चैतन्य मानस के अल्प अंश को धारण करते हैं जिसकी चेतना से प्रत्येक देहाणु अपना कार्य उचित रीति से करता है। ये चेतनाश मनुष्य के केंद्रवर्ती मन के आधीन होते हैं, इसमें संदेह नहीं। और जब कभी चेतनापूर्वक या अचेतनावस्था में सदा से आशा होती है तो उसका पालन करते हैं। ये अणुजीव चेतनाएँ अपने-अपने कार्यों में पूरी योग्यता दिखवाती हैं। इन देहाणुओं की पुनर्निर्वाही क्रिया, जिसके द्वारा वे रधिर से आवश्यक पोषण को लो लींच लेते हैं, और अनावश्यक द्रव्यों को छोड़ देने हैं, इस चेतना का एक अच्छा उदाहरण है, पाचन और रसाकरण आदि की क्रिया देहाणुओं की चैतन्यता दिखवाती है, ये देहाणु चाहे पृथक् पृथक् या अनेक समुदायों में मौल बंधे हों। जत अर्थात् जलम का पूरा करना, देहाणुओं का शरीर के उभर और दीवना जहाँ उनकी अत्यंत आवश्यकता है, और ऐसे मैकड़ों उदाहरण जो परीक्षा करने-वालों को विहिन हैं, कोमिहों को यह सूचिन करने हैं कि प्रत्येक देहाणु में जीव है। कोमि की दृष्टि में प्रत्येक देहाणु एक जीवित वातु है जो अपना स्वतंत्र जीवन निर्वाह कर रही है। ये देहाणु - ने समुदाय बंध विद्या करने हैं, और प्रत्येक

गमुदाय अपनी गामुदायिक धैर्यता दिखता है, जब तक कि यह समुदाय बंधा रहता है। ये गमुदाय फिर एकत्रित होकर वे वेधीदा-वेधीदा संगठन बनाने दें, जिन संगठनों में कुछ उस कोटि की चेतनाएँ दुष्का करती हैं।

जब पार्थिव शरीर की मृत्यु होती है तब ये देहाणु पृथक् और विघ्न-गिर हो जाते हैं और तब मरना शुरू हो जाता है। वह बल, जिससे ये देहाणु एकत्र रहते गए थे, अब ख़त्म गया; और अब ये देहाणु स्वतंत्र हो गए कि अपनी-अपनी राह लें अथवा नए समूह स्थापित करें। कुछ तो आय-पाम के पौधों के शरीर में खड़े जाते हैं, और अंत में घूम-फिरकर किसी जानवर के शरीर में आ जाते हैं; दूसरे पौधों ही की देह में बने रहते हैं, कुछ ज़मीन में पड़े रहते हैं; परंतु इन देहाणुओं के जीवन में अनंत और अनवरत परिवर्तन हुआ करते हैं। एक नामी लेखक ने कहा है कि "भौत केवल जीवन का रूपांतर है, और एक पार्थिव रूप का नाश होना दूसरे के बनने की प्रस्तावना है।" हम इस देहाणु जीवन की प्रकृति और क्रियाओं का संक्षिप्त वर्णन अपने शिष्यों को सुना देंगे कि शरीर के इन जीवाणुओं का जीवन कैसा होता है।

शरीर के देहाणुओं में तीन तत्त्व होते हैं—( १ ) द्रव्य, जिसे वे मनुष्य के खाए हुए अन्न से प्राप्त करते हैं; ( २ ) प्राण अर्थात् जीवित शक्ति, जिससे वे कार्य करने में समर्थ होते हैं, और जिसे वे हमारे साथ, हुए अन्न, पिए हुए पानी और साँस की हुई हवा से लाभ उठाते हैं; ( ३ ) चेतना या चित्त जो सर्वव्यापक मन से प्रदत्त किया जाता है। हम पहले इन अणुओं के जीवन के भौतिक अंग का वर्णन करेंगे।

जैसा हम ऊपर कह आए हैं, प्रत्येक जीवित शरीर नन्हे-नन्हे देहाणुओं का समूह है। यह शरीर के प्रत्येक भाग के संबंध में—

सफ़्त हड्डियों से लेकर मुलायम-से-मुलायम रेशों तक—दाँत की कड़ी मदन से लेकर आर्द्र मिट्टी के नाज़ुक भागों तक—सही है। इन देहाणुओं की भिन्न-भिन्न शकलें होती हैं, जो उनके विशेष कार्यों तथा क्रियाओं के अनुकूल होती हैं। प्रत्येक देहाणु, सब प्रकार से पृथक्-पृथक् व्यक्ति होते हैं, यद्यपि ये देहाणु समूह की चेतना के अधीन होते हैं; बड़ा समूह छोटे समूह पर शासन करता है; और अंत में मनुष्य का केंद्रस्थ मन सबके ऊपर निरीक्षण रखता है। संगठन का कार्य, या कम-से-कम उसका अधिकांश भाग, प्रवृत्ति-मानस के अधिकार में होता है।

ये देहाणु सर्वदा कार्य में लगे रहते हैं, शरीर के सब कर्तव्यों का पालन किया करते हैं, प्रत्येक के जिम्मे अलग-अलग काम होता है जिसे वे अपनी योग्यतानुसार पूरा-पूरा करते रहते हैं। कुछ देहाणु कालत रहते हैं और वे आशा की प्रतीक्षा किया करते हैं और अकस्मात् जो कार्य या आय उसे करने के लिये तैयार रहते हैं। अन्य देहाणु क्रियाशील कामकाजी होते हैं और नाना प्रकार के स्त्रावों और द्रवों को बनाया करने हैं, जिनकी आवश्यकता देह की भिन्न-भिन्न क्रियाओं में पदा बरती है। कुछ देहाणु एकरथानीय होते हैं—दूसरे आशा की प्रतीक्षा में स्थायी रहते हैं पर आशा पाते ही गमन कर देते हैं। कुछ देहाणु सर्वदा यात्रा किया करते हैं; इनमें कुछ यात्रा ही करते काम करते हैं और कुछ अणु अंतर दे देकर यात्रा करते हैं। इन यात्री अणुओं में कुछ तो भारवाहक होते हैं, कुछ यात्रा किया करते हैं, और मार्ग में जहाँ आवश्यकता देखते हैं वहाँ कार्य करके फिर आगे बढ़ते हैं, कुछ सत्राई के काम में लगे रहते हैं; कुछ के जिम्मे पुनर्निर्माण का काम रहता है। देहाणुओं का जीवन, जब उनके कुछ समूहों पर दृष्टि डाली जाय तो एक उपनिवेश की गवर्नमेंट के समान दिखलाई पड़ता है, जो गवर्नमेंट की सहकारिता और सह-



योगिता के सिद्धांतों पर चलाई गई हो। प्रत्येक देहाणु अपने कार्य को समूह-भर के लाभ के लिये करता है, प्रत्येक अणु सबकी भलाई के लिये काम करता है, और सब मिलकर परस्पर भलाई का काम करते हैं। नाडीमांस के देहाणु शरीर के प्रत्येक भाग की प्रत्येक मस्तिष्क को पहुँचाते हैं, और मस्तिष्क की आज्ञा शरीर के प्रत्येक आवश्यक भागों में पहुँचाते हैं, ये मारचक्री के जीवित तार हैं। नाबियाँ मन्दे-मन्दे देहाणुओं में बनी हुई हैं, इन देहाणुओं में सूँच के सार कुछ भाग निकला रहता है, एक की सूँच दूसरे को और दूसरे की तीसरे को स्पर्श किए रहती हैं, इस प्रकार श्रृंखला बन जाती है और इसी श्रृंखला द्वारा प्राण गति करता है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में लाखों-लाखों, करोड़ों-करोड़ों, देहाणु भारवाहक, चलाने कामकाजी, पुलिसमैन, सिपाही आदि का काम करते रहते हैं; यह अनुमान किया गया है कि एक घन इंच रुधिर में कम-से-कम ७५००००००००० केवल जाल-जाल देहाणु हैं। औरों के लेखों को छोड़िए ! यह बड़ी विस्तृत जाति है।

रुधिर के जाल देहाणु, जो भारवाहक होते हैं, रुधिरपवाहक धमनियों और रुधिरोपवाहक शिराओं में बड़ा करते हैं, फेफड़ों से आरसीजन लेकर शरीर के अंगों और अंगों में पहुँचाया करते हैं, जिससे उन अंगों-प्रत्यंगों को जीवन और शक्ति मिलता बनती है। जब रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा ये वापस आते हैं तो देह-अंग के निम्नमे द्रव्यों को लेते आते हैं, जिन्हें फेफड़ा बाहर फेंक देता है। तितारती जहाज़ की भाँति ये आते और आते दोनों यन्त्र में योग्य लाते हैं। अन्य देहाणु धमनियों और शिराओं की दीवारों और रेखाओं में होकर प्रसृत होते हैं और मरम्मत आदि का कार्य, जिसके लिये वे भेजे गए हैं,

कई प्रकार के देहाणु रक्षि में होते हैं। इनमें पुलिममैन और सिपाही बड़े ही मनोरंजक होते हैं। इन देहाणुओं का कार्य है कि ये देह-यंत्र को उन कीटाणुओं से सुरक्षित रखें जिनसे शरीर में धीमारी या पीड़ा पहुँचने की आशंका हो। ज्यों ही कोई पुलिम देहाणु ऐसे कीटाणु को पाता है त्यों ही वह इससे लिपट जाता है और इसे निगल जाने की चेष्टा करता है, यदि यह बहुत बड़ा न हो। यदि यह बहुत बड़ा हुआ तो वह अन्य देहाणुओं की मदद के लिये बुलाता है, और यह संयुक्त सेना उन कीटाणु को पकड़े-पकड़े देह-यंत्र के किसी छिद्र के पास ले जाती है और उसे बाहर निकाल देती है। कोड़े, फुंसियाँ आदि इसी प्रकार के कीटाणुओं के निकाले जाने के उदाहरण हैं, जहाँ ये शरीर-यंत्र के पुलिममैन विपैले कीटाणुओं को निकालते हैं।

रक्षि के लाख कीटाणुओं को बहुत काम करना पड़ता है। वे शरीर के अंगों में आवश्यकता पहुँचाते हैं, वे अन्न से ग्रहण किए हुए पोषण को शरीर के उन अंगों में पहुँचाते हैं जहाँ नई रचना या मरम्मत के लिये इसकी आवश्यकता होती है। वे पोषण में से उन्हीं-उन्हीं तत्वों को खींच लेते हैं जिनसे आमाशयिक द्रव, खार, पेनक्रियाटिक द्रव, पित्त, दूध इत्यादि-इत्यादि बनते हैं और फिर इन पदार्थों को कार्य के अनुकूल उचित परिमाण में मिलाते हैं। वे हजारों काम किया करते हैं और सर्वदा काम में लगे रहते हैं, जैसे चौदियों सर्वदा काम में लगी रहती हैं; पूर्वीय आप्तार्थ बहुत दिनों से इन अणु जीवों को जानते आए हैं और इनके अस्तित्व और इनकी क्रियाओं के विषय में अपने शिष्यों को शिक्षा देने आए हैं। परंतु वह बात पश्चिमी विज्ञान के लिये खोज रहा गई है कि वह इसका रहस्य और सुविस्तृत वर्णन करे।

इस अंगों के जीवन के प्रत्येक क्षण में ये देहाणु उत्पन्न हुआ और मरा करने हैं। ये देहाणु कुछ बढ़कर तब फिर अंगों में विभक्त हो

जाने के कारण नमरे देहाणुओं को जन्माते हैं, पहला देहाणु  
 पूलने लगता है और पूलते-पूलते दो भागों में हो जाता है, और बीच  
 में जोड़नेवाली कमर रहती है, फिर यह कमर टूट जाती है और एक  
 देहाणु के स्थान में दो देहाणु हो जाते हैं। फिर नया देहाणु दो  
 भागों में विभक्त होता है, इस प्रकार क्रिया जारी रहती है।

ये देहाणु शरीर को अपने आप नया बनाए रखने की क्रिया  
 करने के लिये समर्थ बनाए रहते हैं। मानव शरीर का प्रत्येक भाग  
 लगातार परिवर्तित हो रहा है और इसके रेशे बदल जाया करते हैं।  
 हमारा घमड़ा, हड्डियाँ, घाल, मांसपेशियाँ इत्यादि सबमें अनवरत  
 मरम्मत हुआ करती है और ये ठीक बनाई जाया करती हैं। हमारे  
 नखों को नष्ट हो जाने में करीब-करीब चार महीने लगते हैं, घमड़े के  
 नष्ट होने में ४ मसाह लगते हैं। हमारे शरीर का प्रत्येक अंग  
 लगातार रही हुआ करता और नया बना करता है, मरम्मत जारी  
 रहती है। और ये नन्हे-नन्हे कारीगर देहाणु उन मज़दूरों के दल हैं,  
 जो इस आश्चर्यजनक कार्य को किया करते हैं। इन नन्हे-नन्हे कारी-  
 गरों के करोड़ों-करोड़ों के दल घूम-घूमकर और एक जगह पर स्थित  
 हो होकर हमारे शरीर में रही रेशों की जगह पर नई सामग्री छुटाया  
 करते और पुराने निकम्मे हानिकारक कणों को शरीर-यंत्र के बाहर  
 किया करते हैं।

नीच जंतुओं में प्रकृति प्रवृत्तिमानस को पूरा अवकाश और विलुप्त  
 चेष्टा देती है; परंतु ज्यों-ज्यों जीवन उच्च पदवी धारण करता है (अर्थात्  
 ऊँची योनि में आता है) त्यों-त्यों बुद्धि विकसित होने लगती है और  
 प्रवृत्तिमानस का चेष्टा संकुचित होता जाता है। उदाहरण के लिये  
 कीड़ों और मकोड़ों को देखो, तो वे नई टोंगों, पत्रों इत्यादि को जितने  
 जमा छेवे में समर्थ होते हैं। सोचे तो अपने सिर के कुछ भागों को  
 भी नया बना छेते हैं, यहाँ तक कि यदि उनकी आँखें नष्ट

आप, तो नई चीजें भी पैदा कर लेते हैं। कोई-कोई मधुलियाँ अपनी नई पूँख पैदा कर लेती हैं। छिपकली आदि नई पूँछें, हड्डियाँ, मांसपेशियाँ और अपनी रीढ़ की हड्डी के भी कुछ भागों को नया पैदा कर लेती हैं। नीचातिनीच जंतु को अपने खोए हुए अंग को फिर से पैदा करने की अधिक-से-अधिक सामर्थ्य है, और वे अपने को बिलकुल नया बना सकते हैं यदि उनके शरीर का छोटा-से-छोटा भाग भी बचा हो, जिस पर वे नए भागों को पैदा कर सकें। उच्च जंतु ज्यों-ज्यों उँचाई की सीढ़ी पर चढ़ते हैं, त्यों-त्यों उनकी यह शक्ति खींच होती जाती है। चूँकि मनुष्य सबसे ऊँचा है, हमलिये इसने तो अपनी रीढ़ आदि की कुरीतियों से सबसे अधिक शक्ति ली है। कुछ अधिक मित्र योगियों ने इस प्रकार के कुछ आश्चर्यजनक कार्य कर दिए हैं, और कोई भी हो, यदि धैर्य के साथ अभ्यास करता रहे तो, प्रकृतिमानस और देहाणुओं पर अधिकार जमाकर शरीर के रोगी अंगों और निर्बल भागों को खगा कर सकता है।

साधारण मनुष्य को भी खगा करने की शक्ति है और वह शक्ति सर्वथा काम करती है, पर अधिकांश मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देते। किसी ज्ञान के अन्तर्गत होने के उदाहरण पर विचार कीजिए। आइए देखें कि ज्ञान किस तरह पूरा होता है। वह बात आरंभ स्थान देने और अध्ययन करने के योग्य है। वह इतनी प्रकट बात है कि हम इस पर ध्यान ही नहीं देते, परंतु वह इतनी आश्चर्यजनक बात है कि हम पर और करने से दिव्य को विदित हो जायगा कि ज्ञान को खगा करने से योग्यता की कितनी बड़ी महिमा प्रकट होती है।

कल्पना कीजिए कि किसी मनुष्य का शरीर जलमी हुआ है—कच्ची कड़ी बर गया है या किसी बाहरी चीज़ के जग जाने से बर गया है। ऐसे, चंदा और रुधिर बहाने की बजिरों, दूधवादी

मोक्षार्थ, मोक्षार्थियों, नादियों और कभी-कभी इन्द्रियों संरित हो जाती है और उनकी मृगमा दृष्ट जाती है। जन्म में रुधिर बरने लगता, उसका मूत्र विपुल हो जाता और पीया होने लगती है। नादियों हम समाचार को मग्निरुद्ध में पहुँचानी है और मृत महापता पाने के लिये मोर मचाती है, और प्रवृत्तिमानस शरीर में इस-उपर प्रचो भोजने लगता है और मरम्मत करनेवाले देहाणुओं की उपयुक्त सेवा को तत्पर करता है, जो कष्टकर प्रलो के मुक्तम पर पहुँचती है। हम यमें में जन्मी रुधिर की नलियों से यह-यहकर रुधिर, भीतर पुने हुए बाहरी पदार्थों को घो बहाता है या घो बहाने की चेष्टा करता है, ये बाहरी पदार्थ धूल, मैदा और कीटाणु इत्यादि दुष्का करते हैं और यदि भीतर रह जायें, तो विष उत्पन्न कर दें। रुधिर जब बाहर की हवा के संपर्क में आता है, तो जम जाता है, और सरोम की भाँति जसजसा पदार्थ बन जाता है, और जन्म पर पपकी हास देने की नींव डालता है। करोड़ों देहाणु, जिनका कर्तव्य मरम्मत करना है, मौत्र पर दौड़कर पहुँचते हैं और रेशों को जोड़ने लग जाते हैं, और अपने काम में आरक्ष्यजनक चेतन्यता और कर्मव्यपता दिलाते हैं। जन्म के दोनों ओर के रेशों, नादियों, रुधिर की नलियों के देहाणु बढ़ने लगते हैं और करोड़ों नए देहाणुओं को पैदा कर देते हैं, जो दोनों ओर से आगे बढ़कर अंत में जन्म के बीच में मिल जाते हैं। पहले तो इन देहाणुओं का बढ़ना चेक्रायदे और निष्प्रयोजन की वृद्धि-सा प्रतीत होता है। परंतु थोड़े ही अर्से में शामक मानस और उसके अधीनस्थ प्रभाव केंद्रों का हाथ प्रकट होने लगता है। रुधिर की नलियों के नए देहाणु उस पार के उसी प्रकार के देहाणुओं से मिलने लगते हैं और नई नाली बन जाती है, जिसमें रुधिर फिर बढ़ने लगे। जोड़ने-वाले रेशों के देहाणु अपनी ही भाँति के अन्य देहाणुओं से मिल जाते हैं।

और चारों ओर से जलम को भरने लगते हैं। नादियों के नए देहाणु प्रत्येक पृथक् मिश्रों पर बनने लगते हैं और बाल-सदृश रेशों को आगे बढ़ाकर शनैः-शनैः तार जोड़ देने हैं और फिर बिना बाधा के समाचार आने-जाने लगते हैं। जब यह भीतरी कुल काम समाप्त हो जाता है, और शरीर की नाडियाँ, नादियाँ और जोड़नेवाले रेशे अब अच्छी तरह से सम्मिलित हो आते हैं तब चमड़े के देहाणु काम उत्तम करने में लिपट जाते हैं, और चमड़े के नए देहाणु बनने लगते हैं और जलम के ऊपर नया चमड़ा बन जाता है, जो जलम कि अब तक पूरा हो गया रहता है। ये सब बातें बड़ी तरतीब से होती हैं, जिससे चेतना और सुरीली कलकती है। जलम के चंगा होने में जो जादिरा बड़ा सादा काम मालूम होता है—सावधान निरीक्षक सर्वव्यापक प्रकृति की धैर्यता को प्रत्यक्ष देखता है—सृष्टित्रिया का प्रत्यक्ष उदाहरण पाता है। प्रकृति सर्वदा दृष्ट्युक्त रहती है कि अपने पक्षों को हटा छे और हम लोगों को भीतरी कोठरी की कारवाहियों को देखने दे; परंतु हम बेचारे मूर्ख लोग उसके निर्मग्न की परवाह नहीं करते, बल्कि बिना ध्यान दिए ही चले जाते हैं और मूर्खता को बातों तथा हानि-कारक कामों में अपने मानसिक बल को नष्ट करते हैं।

यहाँ तक तो देहाणु के विषय में हुआ। देहाणु का मानस सर्व-व्यापक मानस का—जो विश्व का महत् भंडार है—खंडा है, और देहाणुओं के वैदूर्यज के मानस से संबंध रखता है और उन्हीं के द्वारा प्रेरित हुआ जाता है। ये वैदूर्यज के मानस और उच्चमानस के आधीन होने हैं, पर निष्कामिता तक तक चला जाता है, जब तक अंत में मनुष्य के प्रकृतिमानस तक नहीं पहुँच जाता। परंतु देहाणु मानस बिना अन्य दोषों लक्षों—भौतिक दृष्टि और प्राण के—अपने को प्रकट करने में समर्थ नहीं हो सकता। इसे अच्छी तरह से पचाए हुए अन्न से लट्ठी सामग्री प्रकट करने की आवश्यकता होती है कि वह अपने प्रकट होने का

साधन बना थे। इसको प्राण धर्मात् जीवत-शक्ति की भी आवश्यकता होती है कि वह गति और कार्य कर सके। जीवन की आवश्यकता—मानस, प्रण और शक्ति—देहाणु तथा मनुष्य दोनों में आवश्यक है।

इस पहले के अध्यायों में पावन के विषय में और शक्ति में पुष्ट पोषणकारी मुख्य सामग्री उपस्थित करने की प्रधानता में, जिस में वह शरीर की मरम्मत और उसके भागों की रचना प्रण की ताकत कर सके, बहुत कुछ कहा था। इस अध्याय में हम यह बतला गए हैं कि कैसे देहाणु उस सामग्री को शरीर के बनाने में व्यवहार करते हैं—कैसे वे उसका व्यवहार अपने ही बनाने में करते हैं और फिर कैसे वे अपने ही को बना लेते हैं। स्मरण रखो कि वे देहाणु, जो हड्डियों की भाँति प्रयुक्त होते हैं, अपने चारों ओर प्रस से प्राप्त सामग्री को लपेट लेते हैं और अपने लिये मानो शरीर बना लेते हैं; तब वे छोटा प्राण ले लेते हैं और उस जगह पहुँचते हैं, जहाँ इनकी आवश्यकता होती है, जहाँ वे अपने को बनाते हैं और स्वयं अपने नष्ट रेशे, हड्डी या मांसपेशी आदि का भाग बन जाते हैं। अपनी देह बनाने के लिये बिना समुचित सामग्री पाए वे देहाणु अपना काम नहीं कर सकते, सब तो यह है कि जी ही नहीं सकते। वे मनुष्य जो अपने ही आचरणों से जीव हो गए हैं और जो अपूर्ण पोषण का दुःख भोग रहे हैं, उनके शरीर में काफ़ी देहाणु नहीं होते और इसलिये उनके शरीर की क्रिया उचित रीति से नहीं होती। देहाणुओं को सामग्री मिलनी चाहिए कि जिससे वे देह बना सकें, और एक ही तरीका है जिससे उनको सामग्री मिल सकती है—कि भोजन से पोषण प्राप्त किया जाय। जब तक देह-भंग में काफ़ी प्राण न होगा, तब तक वे देहाणु अपने कार्यों के करने में पूरी शक्ति नहीं लगा सकते, जिससे सारे शरीर में जीवत की कमी प्रकट होने लगती है।

कभी-कभी मनुष्य की बुद्धि इस प्रवृत्तिमानस को इतना तंग कर देती है और इतना धुँधली है कि बेचारा बेहूदा मार्ग ग्रहण कर लेता है और बुद्धि में भय जाने लगता है और अपने निम्न के कार्यों को उचित रीति में नहीं कर सकता तथा देहाणु ठीक नहीं पैदा किए जाते। ऐसी दशाओं में जब बुद्धि अमल बात को समझ जाती है, तब अपनी पिछली भूलों को सुधारना चाहती है और प्रवृत्तिमानस को हादम देने लगती है कि "तुम तो अपने काम को बहुत अच्छी तरह समझने दो, और अब तुम्हें अपना राज करने का पूरा अधिकार मिलेगा, निश्चय रखो।" और फिर इसके बाद हिम्मत दिखाने, तारीफ़ करने और उसमें विरवास रखने के शब्द कहे जाते हैं, तब प्रवृत्तिमानस अपने चित्तस्थैर्य को धारण कर लेता है और अपने घर का प्रबंध करने लगता है। कभी-कभी यह प्रवृत्तिमानस अपने मालिक तथा अन्य बाहरियों के विपरीत पूर्व विचारों से इतना अभिभूत हो जाता है कि वह धररा उठता है और फिर इसके असली अवस्था में जाने में बहुत समय लगता है कि यह ठीक शासन कर सके। ऐसी दशा में अक्सर यह होता है कि मातृहत्या के देहाणु, केंद्रों के मानस, वस्तुतः बगावत कर जाते हैं और सत्तर की आज्ञाओं को नहीं मानते। इन दोनों दशाओं में मनुष्य के दृढ़ संकल्प की—निश्चित आज्ञा की—ज़रूरत पड़ती है कि सारे शरीर में फिर से अमन-वैव फैल जाय और मुनासिब काम होने लगे। स्मरण रखिए कि प्रत्येक इंद्रिय अवयव और भाग में किसी-न-किसी प्रकार की चेतना होती है और दृढ़ इच्छा की अच्छी प्रबल आज्ञा से विकृत अवस्थाओं में भी प्रायः सुधार हो जाता है।



# उन्नीसवाँ अध्याय

## शासनातीत अंगों पर अधिकार

इस विभाग के पिछले अध्याय में हम आपको समझा चुके हैं कि मानव शरीर करोड़ों नन्हे-नन्हे देहाणुओं से बनता है, प्रत्येक के आधीन काफ़ी सामग्री रहती है कि वह अपना काम कर सके; काफ़ी प्राण रहता है कि उसे आवश्यकतानुसार बल मिलता रहे और पर्याप्त चेतना रहती है कि जिससे वह अपने कार्य को ठीक पथ पर कर ले जाय, प्रत्येक देहाणु एक संप्रदाय या वंश से संबंध रखता है, और उस देहाणु की चेतना उस संप्रदाय या वंश के प्रत्येक देहाणु की चेतना से लगाव रखती है; संप्रदाय या वंश की सम्मिलित चेतना संमस्त संप्रदायमानस बनती है। ये संप्रदाय भी एक बड़े समुदाय के अंग हुआ करते हैं, और इसी तरह दर्जे-बदर्जे बना जाता है, जब तक सारे शरीर-भर का एक राज्य प्रवृत्तिमानस के अधिकार में होने के दर्जे तक नहीं पहुँच जाता, इन संप्रदायों और समूहों पर शासन रखना प्रवृत्तिमानस के कर्तव्यों में से है और वह प्रायः अपना काम अच्छी ही तरह से करता है, यदि बुद्धि उसमें हस्ताक्षेप न करे, जो कभी-कभी अपने भय के खयालात प्रवृत्तिमानस के पास भेज देती है या किसी दूसरे ही प्रकार से उसे मूढ़ बना देती है। कभी-कभी इसके कार्य में बुद्धि इस प्रकार बाधा पहुँचाती है कि वह पार्थिव शरीर को नियमित रखने के लिये देहाणु चेतना को विपरीत और प्रतिद्वन्द्व आंदोलें पकड़ा देती है। उदाहरण के लिये कोष्ठबद्ध के रोग पर ध्यान दो, बुद्धि दूसरे काम में फँसे रहने के कारण, शरीर को प्रवृत्तिमानस की आज्ञा — पृष्ठी १ का पालन न करने देगी, जो कि मज्जाशय के

देहाणुओं की पुकार पर जारी की गई है, और न पानी की मँगों पर ध्यान देगी तो परिणाम यह होगा कि प्रवृत्तिमानस उचित आशाओं का पाबन नहीं कर सकता और यह तथा देहाणु संप्रदायों में से कुछ ये दोनों घबराकर किर्तन्यविमूढ़ हो जाते हैं। स्वाभाविक आदत के ध्यान पर बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं और कभी-कभी किसी-किसी देहाणु संप्रदाय में एक प्रकार की बगावत उठ खड़ी हो जाती है। इसमें संदेह नहीं कि इसका कारण उनकी स्वाभाविक क्रियाओं में बाधा पहुँचाना रहता है अथवा उनके लिये और विपरीत रिवाजों का पैदा करना होता है, जिससे गड़बड़ उपस्थित हो जाती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे समूहों में से कुछ (और कभी-कभी तो बड़े समूहों में से कुछ) हड़ताल कर देते हैं, और अनभ्यस्त तथा अनुचित कार्य जब उनके जिम्मे दिए जाते हैं, या उचित से अधिक काम छिपा जाता है, या ऐसा ही कोई अन्याय होता है कि उन्हें उचित पोषण नहीं मिलता, तो वे बगावत कर देते हैं। वे मन्दे-मन्दे देहाणु उसी तरह से कार्य करते हैं जैसे उसी दशा में मनुष्य कार्य करते हैं; देखनेवाले और जाँच करनेवाले को दोनों की समानता आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। यदि सुप्रबंध न कर दिया जाय, तो यह हड़ताल और बगावत फैल जाय; और जब कभी अपूरा ही प्रबंध कर दिया जाता है, तो ये देहाणु काम को तो करने लगते हैं, परंतु अपनी योग्यतानुसार उत्तम कार्य करने के ध्यान पर ब्रह्मयोगिता से बहुत थोड़ा काम करते हैं; सो भी जब कभी मन में आता है तब स्वाभाविक दशाओं को पुनः स्थापित करने से, अथवा और बारी पोषण देने से, उन पर उचित ध्यान रखने से शनैः-शनैः सुखवाया प्राप्त होगी, परंतु हड़ संकल्प से सीधा दुःख देहाणु-समूहों को देने से

गोप्यता होती है। इस तरीके से दिननी पित हो जाती है उसे देखने से आश्चर्य

होगा है। जैसे योगी शायन में बाहर के देह-मंत्र पर चारचरित्रनक अभिचार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी दृष्टमान रखते हैं। भारगवर्ष के नगरों के योगी भी, जो मूठे योगी से योगी ही बेहतर होंगे हैं, और जो पैरों के लिये अपनी क्रियाएँ दिशन्तापा करते हैं, अपने देहाणुओं पर प्रभाव रखने के बहुत ही मनोमग्न उदाहरण दिए जा सकते हैं; इनकी कोई-कोई प्रशिक्षण तो मातृक दिमागावाओं को पृथ्वास्पर्श और सच्चे योगियों के लिये दुस्त-दायी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योगक्रिया इस प्रकार भ्रष्ट की जा रही है।

अध्याग से बलवती बनी हुई दृष्टि इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल साधारण धारणा द्वारा असर डालने में समर्थ हो जाती है; परंतु इस रीति के प्रयोग करने में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है। दूसरे तरांजे भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी दृष्टि को कतिपय शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से एकप्रकार के उसका असर पहुँचा सकता है। पश्चिमी लोगों की स्वतः मंत्रणाएँ और प्रतिज्ञाएँ इसी प्रकार काम देती हैं। शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से ध्यान और आकांक्षा पीढ़ा के स्थान पर जम जाती है, और शनैः-शनैः हस्ताजवाले देहाणुओं में अमन-चैन स्थापित हो जाती है; वहाँ पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। साथ-ही-साथ पीढ़ित स्थान का रुचिर-संचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है।

पीढ़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रयत्न आशा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणायुक्त आकांक्षा का प्रयोग,

बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं। यह सरल विधि यह है कि बायीं अंग या अवयव से "बात की जाय" उसे इस तरह की आज्ञा दी जाय, जैसी स्थूल के लदकों के एक मुँद या पलटन के रंगस्थों के एक स्काट को दी जाती है। आज्ञा को स्पष्टता और दृढ़ता के साथ दो; अवयव से वही बात कहो, जो तुम उसमें कराया चाहते हो, आज्ञा को हाकिमाना लीर से कई बार दुहराओ। उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के अंग पर मुद्रायम धानी देने से वहाँ के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आकर्षित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर ठोक देने से वह दृढ़कर तुम्हारी ओर मुँह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब यह मत प्रयाज कर लो कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के कान होते हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना लीर से कहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रकट की हुई मानसिक मूर्ति की वक्ष्यना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सहानुभावी भाषी में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणुसमूहों तथा देहाणु-व्यक्तियों पर विदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, अधिर और प्राय की अधिक पहुँच भी वहाँ हो जाती है, क्योंकि आज्ञा देनेवाले मनुष्य के धारणागच्छ ध्यान का उन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोग-विचारक का आज्ञा भी दी जा सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस आज्ञा को ग्रहण करके उसे देहाणुओं की वातावरण के स्थान पर पहुँचा देता है। यह बात हमारे शिष्यों में बहुतों को लदकों के श्रेष्ठ-सी प्रतीत होती; परंतु इसके समर्थन के लिये अल्प-अल्प वैज्ञानिक प्रमाण और कारण हैं। योगी लोग इसे देहाणुओं तक आज्ञा पहुँचाने का बहुत ही सरल तरीका समझते हैं। जब तक इसकी परीक्षा न कर लो तब तक इसे बहुत समझकर कहें न हो। यह दृष्टान्तों

होगा है। जैसे योगी शायम ने बाहर के देह-मंत्र पर धारचर्यजनक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी दृष्टिमान रहते हैं। भारगवर्ण के नगरों के योगी भी, जो मूठे योगी से थोड़ा ही बेहतर होते हैं, और जो पीने के लिये अपनी क्रियाएँ दिव्यज्ञाया करते हैं, अपने देहाणुओं पर प्रभाव रहने के बहुत ही मनोव्रतक उदाहरण दिव्यज्ञा मन्त्रों हैं; इनकी कोई-कोई प्रदर्शनी तो मातृक दिग्मातायाओं को ध्यानास्पद और सच्चे योगियों के लिये दुःखदायी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योगक्रिया हम प्रकार भ्रष्ट की जा रही है।

अभ्यास से बलवती बनी हुई हठ दृष्टि इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल साधारण धारणा द्वारा अस्तर डालने में समर्थ हो जाती है; परंतु इस रीति के प्रयोग करने में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है। दूसरे तरीके भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी हठ दृष्टि को कतिपय शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से पृथक् करके उसका अस्तर पहुँचा सकता है। पश्चिमी लोगों की स्वतः संप्रणाएँ और प्रतिज्ञाएँ इसी प्रकार काम देती हैं। शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से ध्यान और आर्कांश पीड़ा के स्थान पर जन जाती है, और शमैः-शमैः हठतालवाले देहाणुओं में अमन-धैन स्थापित हो जाती है; वहाँ पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। साथ-ही-साथ पीड़ित स्थान का रुधिर-संचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है।

पीड़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रयत्न आशा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणायुक्त आर्कांश का प्रयोग,

बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं। यह सरल विधि यह है कि चाही अंग या अवयव से "बात की जाय" उसे हम तरह की आज्ञा दी जाय, जैसी स्कूल के लड़कों के एक झुंड या पलटन के रंगस्टों के एक स्काउट को दी जाती है। आज्ञा को स्पष्टता और दृढ़ता के साथ दो। अवयव से वही बात कहो, जो तुम उससे कराया चाहते हो, आज्ञा को हाकिमाना सौर से कई बार दुहराओ। उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के अंग पर मुलायम धारी देने से वहाँ के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आकर्षित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर ठोक देने से वह दृक्कर तुम्हारी ओर मुँह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब वह मत ध्यात कर लो कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के जान होते हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना सौर से बहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रकट की हुई मानसिक मूर्ति की बरूपना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सद्व्यनुभावी नाडी में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणुमूहों तथा देहाणु-व्यक्तियों पर बिदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, दृष्टि और प्राण की अधिक पहुँच भी वहाँ हो जानी है, क्योंकि आज्ञा देनेवाले मनुष्य के धारणावस्त्र ध्यान का उन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोग-निवारक को आज्ञा भी दी जा सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस आज्ञा को ग्रहण करके उसे देहाणुओं की बलाघत के स्थान पर पहुँचा देता है। यह बात हमारे शिष्यों में बहुतों को खदकों के खेज-सी प्रतीत होगी, परंतु इसके समर्थन के लिये कष्ट-कष्ट वैज्ञानिक प्रमाण और कारण हैं। योगी लोग हमें देहाणुओं तक आज्ञा पहुँचाने का बहुत ही सरल तरीका समझने दें। जब तक इसकी परीक्षा न कर लो तब तक हमें बहुत समझकर चेंद न हो। यह शताब्दियों

होगा है। जैसे योगी शासन में बाहर के देह-बंध पर चारचर्यजनक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी हस्तमन रखते हैं। भारतवर्ष के मगरों के योगी भी, जो मूठे योगी में घोड़ा ही देहतर होते हैं, और जो पीने के लिये अपनी क्रियार्थ दिग्गतापा करने हैं, करने देहाणुओं पर प्रभाव रखने के बहुत ही मनोरंजक उदाहरण दिग्गता सज्जते हैं, इनकी कोई-कोई प्रदर्शनी तो नाट्यक दिग्गतापाओं को नृणाप्य और सच्चे योगियों के लिये दुःखदायी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योगक्रिया इस प्रकार भ्रष्ट की जा रही है।

अभ्यास में बलवती बनी हुई हठ हृष्टा इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल आभारय धारणा द्वारा असर डालने में समर्थ हो जाती है, परंतु इस रीति के प्रयोग करने में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है। दूसरे तरीके भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी हठ हृष्टा को कतिपय शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से मुकाबल करके उसका असर पहुँचा सकता है। परिचामी लोगों की स्वतः मंत्रणाएँ और प्रतिज्ञाएँ इसी प्रकार काम देती हैं। शब्दों के ध्यानपूर्वक आप से ध्यान और आकांक्षा पीड़ा के स्थान पर जन्म जाती है, और शनैः-शनैः हठतालवाले देहाणुओं में अमन-चैन स्थापित हो जाती है; वहाँ पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। साय-ही-साय पीड़ित स्थान का रुधिर-संचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है।

पीड़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रबल आज्ञा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणायुक्त आकांक्षा का प्रयोग,

बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं। यह सरल विधि यह है कि बायीं चंग या अक्षयव में "बात की जाय" उसे इस तरह की आज्ञा दी जाय, ज़मीनी शब्दों के लक्षकों के एक झुंड या पकड़न के रंगरूटों के एक शराब को दी जाती है। आज्ञा को स्पष्टता और शक्ति के साथ दो; अक्षयव से वही बात कहो, जो तुम उससे कराया चाहते हो, आज्ञा को हाकिमाना तौर से कई बार दुहराओ। उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के चंग पर सुझावम थापी देने में वहाँ के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आकर्षित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर टोंक देने से वह हककर तुम्हारी ओर मुँह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब यह मत छ्याल कर लो कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के जान होने हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना तौर से कहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रकट की हुई मानसिक मूर्ति की कल्पना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सहानुभावी नाड़ी में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणुसमूहों तथा देहाणु-व्यक्तियों पर विदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, वहिर और प्राण की अधिक पहुँच भी वहाँ हो जाती है, क्योंकि आज्ञा देनेवाले मनुष्य के आश्वासनकाल ध्यान उन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोग-नि

सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस

लुप्तों की चलावत के स्थान पर पहुँचा

में जो लक्षकों के खेल-मी

अच्छे वैज्ञानिक प्रमाण

आज्ञा पहुँचाने का

ही परीक्षा न कर

हो। यह शताब्दियों



के जोंच में घटत बना हुआ है, और इसमें बढ़कर और कोई तराज अब तक काम करने का नहीं पाया गया है।

यदि तुम अपने शरीर के किसी भाग पर इस तरीके का प्रयोग किया चाहते हो, या किसी अन्य के शरीर पर इसको आत्म-भाषा चाहते हो, जो कि पूरा काम नहीं कर रहा है, तब उस भाग पर अपनी हथेली से धीरे-धीरे धापी दो और (उदाहरण के लिये) यों कहो कि "मुनो यकृत, मुझे अपना काम अच्छी तरह करना पड़ेगा—तुम इतने सुस्त हो कि मेरे सुभाक्रिय नहीं हो, मैं बड़-भाषा करता हूँ कि अब से तुम अच्छा काम करोगे, बल्लो काम करो, हम कहते हैं इस मूर्खता को छोड़ो।" ठीक ये ही शब्द आवश्यक नहीं हैं, आपको जो शब्द आवें उन्हीं का प्रयोग कीजिए, परंतु उनमें हाकिमाना स्पष्ट भाव और आज्ञा होनी चाहिए कि अवश्य अपना काम करने लगे। इसी तरीके से हृदय के काम भी उत्तम हो सकते हैं; परंतु हृदय को आज्ञा देने में बहुत मुलायमियत रखनी चाहिए। क्योंकि हृदय के देहाणुसमूह यकृत के देहाणुसमूहों की अपेक्षा अधिक चेतनाशक्तिवाले हैं और इनके साथ अर्द्धर का व्यवहार करना चाहिए। हृदय को स्मरण दिला दीजिए कि "मैं बेहतर काम की आज्ञा करता हूँ"; परंतु आदर से कहिए; यकृत की भौंति इस पर शुद्धकी मत चलाइए। सब अवयवों की अपेक्षा हृदय का देहाणुसमूह बहुत चेतना-विशिष्ट है। यकृत का देहाणुसमूह बड़ा मूर्ख है, उसमें चेतना की कमी है, उसका स्वभाव स्वरचर का है; हृदय तो अच्छे कुलीन घांड़े की भौंति चैतन्य और चौकता रहता है। अगर आपका यकृत बड़ाबत करे, तो उसको डाँटकर आज्ञा दो, उसके स्वरचर स्वभाव को याद रखो। आमाशय भी घ्रास्ता चैतन्य है, यद्यपि हृदय की समता में नहीं है; मलाशय बड़ा क्रमाधिकार है; यद्यपि इसके साथ बड़ा जुलूम होता है, पर यह

धीर बना रहता है। यदि आप मजाराय को आज्ञा दें कि हम इतने धीरे धीरे रोज़ मजरायना चाहते हैं। धीरे धीरे दीजिए और ठीक ठीकी वक्त पर मजरायना जाया कीजिए, अपने वचन को पूरा करते रहिए, तो थोड़े ही दिनों में आपको मालूम हो जायगा कि मजाराय आपकी आज्ञा की ठीक पाबंदी कर रहा है। परंतु स्मरण रखिए कि बेचारे मजाराय के साथ बड़ा दुर्ग्यबहार हुआ है और उसको आपके वचनों का विश्वास करने में कुछ समय लगेगा। धर्मों का अनियमित मासिकधर्म नियमित बनाया जा सकता है और स्वाभाविक आदत प्राप्त की जा सकती है। इसमें थोड़े ही महीने लगेंगे। जिस तारीख को मासिकधर्म होना चाहिए उस तारीख को स्मरण कर लें, और प्रतिदिन उसी रीति से बर्ताव करके, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, मासिकधर्मवाले देशानुसमूहों से कहें कि “अब मासिकधर्म के लिये इतने दिन और बाड़ी है, तुम तैयार रहना, अपने काम करने जाओ कि जब समय आये सब ठीक रहे”, जब समय बहुत निकट आ जाय, तो कहो कि “समय अब थोड़ा रह गया है, काम ठीक किए जाओ।” मजाराय की भीति आज्ञा मत दो, बिना ऐसा कहो कि मानो तुम दिवांगत से कहते हो, और तब उस आज्ञा का पावन होगा। बहुत से अनियमित धर्मों को एक से लेकर तीन महीनों में इस रीति से अर्पण होते पाया है। यह आपको हास्यजनक जान पड़ेगा, पर हम यही कहेंगे कि आप परीक्षा करके उसको जांच लीजिए। हमको यहाँ इतना अवकाश नहीं है कि प्रत्येक रोग के लिये अलग-अलग प्रयोग बतलावें, पर आप ऊपर कितनी बातों से समझ जाए कि बीबा-बचन पर किस अवस्था का देशानुसमूह का अधिकार है और तब उसको आज्ञा दीजिए। अगर आप हम बात को धीरे धीरे कर लें कि बीबा-बचन गहरा मचाए है, तो आप कम-से-कम

के जोर में चरच बना हुआ है, और इनमें बहुत और कोई तरीका अब तक काम करने का नहीं पाया गया है।

यदि तुम करने शरीर के किसी भाग पर हृदय तरीके का प्रयोग दिया चाहते हो, या किसी अंग के शरीर पर हृदयको आन-माया चाहते हो, जो कि पूरा काम नहीं कर रहा है, तब उस अंग पर चरच की हथेली से धीरे-धीरे धारण दो और (उदाहरण के लिये) बोलो कि "तुमो यक्ष, तुम्हें अपना काम अच्छी तरह करना पड़ेगा—तुम इनने तुल्य हो कि मेरे मुष्माजिज्ञ नहीं हो, मैं हठ आशा करता हूँ कि अब से तुम अच्छा काम करोगे, सबो काम करो, हम कहते हैं इन शूरता को छोड़ो।" ठीक ये ही शब्द आचरणक नहीं हैं, आपको जो शब्द आवें उन्हीं का प्रयोग कीजिए, परंतु उनमें हाकिमाना स्वष्ट भाव और आशा होनी चाहिए कि अवश्य अपना काम करने लगे। इसी तरीके से हृदय के काम भी उन्नत हो सकते हैं, परंतु हृदय को आशा देने में बहुत मुत्तायमित रहनी चाहिए। क्योंकि हृदय के देहाणुसमूह यक्ष के देहाणुसमूहों की अपेक्षा अधिक चेतनाशक्तिवाले हैं और इनके साथ आदर का व्यवहार करना चाहिए। हृदय को स्मरण दिया दीजिए कि "मैं बेहतर काम की आशा करता हूँ"; परंतु आदर से कहिए: यक्ष की भक्ति इस पर तुम्हकी मत चलाइए। सब अवयवों की अपेक्षा हृदय का देहाणुसमूह बहुत चेतना-विशिष्ट है। यक्ष का देहाणुसमूह बड़ा मूर्ख है, उसमें चेतना की कमी है, उसका स्वभाव प्रवचन का है; हृदय तो अच्छे कुलीन घांटे की भक्ति चैतन्य और चौकता रहता है। अगर आपका यक्ष बलावत करे, तो उसको रोककर आशा दो, उसके प्रवचन स्वभाव को याद रखो। आमाशय भी प्राप्ता चैतन्य है, यद्यपि हृदय की समता में नहीं है; मलाशय बड़ा क्रमांबद्ध है; यद्यपि इसके साथ बड़ा जुद्ध होता है, पर यह



पीड़ा के स्थल को तो जान सकते हैं, फिर शरीर के उसी भाग को आज्ञा दीजिए । आपके लिये यह आवश्यक नहीं है कि आप प्रत्येक रोगी अवयव के नाम जानें, आपको केवल उस स्थल पर आज्ञा देना चाहिए, यों कहिए “सुनो जी..... ।” यह किताब रोगों को दूर करने के लिये नहीं उद्दिष्ट , इसका अभिप्राय रोगों को न जाने देकर स्वास्थ्य ठीक रखने का है; परंतु तो भी कुछ थोड़ी बातें बाली अवयवों को मार्ग पर लाकर आपको सहायता पहुँचाने के लिये लिख दी गई हैं ।

ऊपर लिखी हुई रीतियों और उनके रूपांतरों के प्रयोग से जो आपको अपने शरीर पर अधिकार प्राप्त होगा, उसको देखकर आपको आश्चर्य होने लगेगा । तुम सिर से रुधिर नीचे बहाकर सिर की पीड़ा दूर कर सकते हो; आप ठंडे हाथ-पैर में अधिक रुधिर संचार की आज्ञा दे सकते हैं, और रुधिर-संचार करके उसे गर्म कर सकते हैं । हाँ, रुधिर के साथ प्राण भी अवश्य जायेगा । प्राण रुधिर-संचार में समता ला सकते हैं, जिससे सारा शरीर उत्तेजित हो जाय । आप शरीर के धके भाग को विद्याम पहुँचा सकते हैं । सब तो यह है कि यदि आप इस तरीके को धैर्य के साथ और ही और ठीक बर्तना सीख लें, तो इनका कार्य इस तरीके के प्रयोग से कर सकते हैं, जिसकी हद नहीं । अगर आप यह नहीं ठीक कर सकते कि कौन-सी आज्ञा दें, तो आप उस भाग से बर्तन करें—“सुनो जी, आये हो आओ, हम चाहते हैं कि यह पीड़ा ॥ जाय, हम चाहते हैं कि तुम आज्ञा काम करो ।” या वेगें डी और बाल नहो । हमने संदेह नहीं कि इनमें अख्याय और धैर्य का आवश्यकता है, पर इनके बिना तो यह क्या, कोई भी बात प्राप्त नहीं होगी ।

# बीसवाँ अध्याय

## प्राणशक्ति

जब शिष्य इस किताब को पढ़ेगा, तो उसे मालूम हो जायगा कि हठयोग के आन्तरिक और बाह्य दो पटल हैं। आन्तरिक से हमारा यह अभिप्राय है कि केवल उन्हीं लोगों के लिये, जो विशेष शिष्टता की कुंजी पाए हुए हैं, और बाह्य से हमारा अभिप्राय ऊपरी, सर्वगण का है। हम विषय का बाह्यपटल भोजन से उचित पोषण प्राप्त करना, पानी से शरीर-यंत्र की सिंचाई और मैलों की धुलाई करना, सूर्य की किरणों से वृद्धि और स्वास्थ्य का लाभ उठाना, व्यायाम प्राप्त करना, उचित श्वास से लाभ उठाना, स्वप्न और ताप हवा से प्रत्यक्ष लाभ उठाना है। ये बातें परित्यक् और पूर्वी दोनों दुर्गम मार्गों को मालूम हैं, योगी और अयोगी दोनों पर विदित हैं। हम अभ्यास से लाभ होते हैं, उनसे दोनों अभिज्ञ हैं। परंतु इसका और भी पटल है, जो योगियों और थोड़े पूर्वी लोगों को तो मालूम है, पर परित्यक् लोगों को और उनको, जो योग के विषय से अनभिज्ञ हैं, बिलकुल अज्ञात है। इसके आन्तरिक पटल का आधार प्राण योगी लोग जानते हैं कि मनुष्य अपने भोजन से प्राण और पोषण प्राप्त करता है, पीने के पानी से प्राण प्राप्त करता है और सफाई का काम करता है; व्यायाम से प्राण और शारीरिक विकास प्राप्त करता है, सूर्य की किरणों से प्राण और ताप दोनों ग्रहण करता है—सबसे प्राण और आभोजन दोनों लेता है। यह प्राण का निम्न सारे हठयोग शास्त्र में बिना दृष्टा है और शिष्यों को हम गंभीर विचार करना चाहिये। जब प्राण हमारी शक्ति

है, तो इस प्रश्न पर विचार कर लेना चाहिए कि "प्राण क्या वस्तु है?"

हमने प्राण की प्रकृति और उसके लामों का वर्णन "स्वास्-विज्ञान"-नामक छोटी किताब में कर दिया है। और हम इस किताब के सफ़ाहों में भी वे ही बातें भरकर इसे पूरा नहीं किया चाहते, जो बातें एक किताब में प्रकाशित हो चुकी हैं। परंतु इस विषय और कतिपय अन्य विषयों को जो एक बार लिखे जा चुके, दुरा-कर लिखना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि संभव है कि बहुत-से मनुष्य, जो इस किताब को पढ़ रहे हैं, उस किताब को न पढ़ें हों। और प्राण का वर्णन न लिखना अनुचित है। और फिर भी दृढयोग की पुस्तक और उसमें प्राण का वर्णन ही नहीं, कैसी अनर्थ की बात है। हम इस वर्णन में बहुत अवकाश न लेंगे और इस विषय के कुल भागों के देने का यत्न करेंगे।

सब युगों और देशों के गूढ़ाचारियों ने अपने कुल पुने हुए शिष्यों को सर्वदा यह उपदेश दिया है कि हवा, पानी, भोजन, सूर्य के प्रकाश में और सर्वत्र एक ऐसा तत्व या पदार्थ पाया जाता है, जिससे तमाम क्रिया, शक्ति, बल और जीवत प्रकट होते हैं। इस तत्व के नाम देने में लोगों में भेद हुआ है और कहीं इसके सिद्धांतों की व्याख्या में भी अंतर पड़ा है, परंतु असल तत्व सब गूढ़ उपदेशों और शास्त्रों में पाया जाता है और सैकड़ों वर्ष से पूर्वीय योगियों की शिष्याओं और अभ्यासों में मिलता है। हमने इसका प्राण ही नाम रक्खा है, जिस नाम से यह दिव्य गुरु और शिष्यों को विदित है, इसका अर्थ परमशक्ति है।

गुरु माधनों के आचार्य लोग कहते हैं कि प्राण, शक्ति अर्थात् बल का सर्वव्यापक तत्व है, और सब शक्ति या बल इसी तत्व में अर्पित होगी तब से कई रूपों में प्रकट होते हैं। इन

विचारों से हमारे पुस्तक के इस विषय से संबंध नहीं है, और हम इतना ही समझकर आगे बढ़ने हैं कि प्राण शक्ति का तत्त्व है और सब जीवित चीजों में पाया जाता है और यही उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न करता है। हमें जीवन का म्रियावान् तत्त्व—या आप पसंद करें, तो जीवत-वस्तु प्रवास कर सकते हैं। यह सब प्रकार का जीवन कोई से लेकर मनुष्य पर्यंत में पाया जाता है—पौधों के सादे जीवन से लेकर जानवरों के उच्चतम जीवन तक में पाया जाता है। प्राण सर्वव्यापक है। यह सब जीवित वस्तुओं में पाया जाता है, और चूँकि रहस्यशास्त्र बतलाते हैं कि जीवन प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक परमाणु में पाया जाता है—बुद्ध वस्तुओं की जाहिरि निर्जीवता केवल अल्प विकास के कारण है, इसलिये हम उनके उपदेशों का यह अर्थ समझते हैं कि प्राण सर्वत्र है, सब पदार्थों में है। प्राण को जीवन से न निकलवाना चाहिए—जीव परमात्मा का अंग है और उसी पर द्रव्य और शक्ति आवरण रूप में छिपटती है। प्राण शक्ति का एक रूप है, जिसे जीव अपने पार्थिव विकास में काम में लाता है। जब जीव शरीर को छोड़ देता है, तब प्राण उसके अधिकार में न रहने से, व्यक्तिगत परमाणुओं की, या परमाणु-समूहों की जिनसे शरीर बना है, आशा-का पावन करता है; प्रत्येक परमाणु इतना प्राण ले लेता है कि नए समूह बना सके, अप्रयुक्त प्राण उस महा-भंडार में मिल जाता है, जहाँ से आया था। जब तक जीव अधिकार रखे रहता है, तब तक संसक्ति बनी रहती है और जीव की आकांक्षा से परमाणु सब पृथक् बँधे रहते हैं।

प्राण एक ऐसा नाम है, जिससे हम उस सर्वव्यापक ताव का बोध करते हैं, जो सब गति, बल, शक्ति, चाहे वे आकर्षण-शक्ति के रूप में, चाहे विमर्श, प्रहों की शक्ति और जीवों के हृदय से लेकर भीम जीवन तक में प्रवृत्त है, सबका स्रोतक है। यह बल और शक्ति



है, तो हम ध्यान या विचार कर लेना चाहिये कि "प्राण स्वास्थ्यं दे ?"

हमने प्राण की प्रकृति और उसके कामों का वर्णन "रास-प्रज्ञान"-नामक छोटी किताब में कर दिया है। और हम हम किताब के मन्त्रों में भी ये ही बातें भरकर हमें पूरा नहीं किया चाहते, जो बातें एक किताब में प्रकाशित हो चुकी हैं। परंतु हम विद्वत् और कनिष्ठ अल्प विषयों को जो एक बार लिखे जा चुके, दुहराकर लिखना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि संभव है कि बहुत-से मनुष्य, जो इस किताब को पढ़ रहे हैं, उस किताब को न पढ़ें हों। और प्राण का वर्णन न लिखना अनुचित है। और फिर भी हठयोग की पुरतः और उसमें प्राण का वर्णन ही नहीं, कैसी अनर्थ की बात है। हम इस वर्णन में बहुत आवश्यक न लेने और इस विषय के कुछ भागों के देने का यत्न करेंगे।

सब युगों और देशों के गुरुचारियों ने अपने कुछ पुत्र-पुत्र शिष्यों को सर्वदा यह उपदेश लिखकर दिया है कि हवा, पानी, भोजन, सूर्य के प्रकाश में और सर्वत्र एक ऐसा तत्त्व या पदार्थ पाया जाता है, जिससे तमाम किया, शक्ति, बल और जीवत प्रकट होते हैं। इस तत्त्व के नाम देने में लोगों में भेद हुआ है और कहीं इसके सिद्धांतों की व्याख्या में भी भ्रंतर पड़ा है, परंतु असल तत्त्व सब गुरु उपदेशों और शास्त्रों में पाया जाता है और सैकड़ों वर्ष से पूर्वीय योगियों की शिक्षाओं और अभ्यासों में मिलता है। हमने इसका प्राण ही नाम रखा है, जिस नाम से यह हिंदू गुरु और शिष्यों को विदित है, इसका अर्थ परमशक्ति है।

गुरु साधनों के आचार्य लोग कहते हैं कि प्राण, शक्ति अर्थात् का, सर्वव्यापक तत्त्व है, और सब शक्ति या बल इसी तत्त्व में अर्थात् इसी तत्त्व से कई रूपों में प्रकट होते हैं। इन

करता है, और कार्बन वैसा ही कार्ब पौधों के जीवन में करता है; परंतु प्राण जीवन के विकास में एक पृथक् ही कार्य करता है, जो वेद, धर्म, विद्या से अलग है।

हम लोग स्वाम द्वारा अगाधार हवा को खींच रहे हैं, जो प्राण से भरी हुई है, और हवा में यह को खींचकर धीमे ही अपने कार्य में ला रहे हैं। प्राण वायुमंडल को हवा में पाया जाता है; हवा जब स्वच्छ और ताजी रहती है, तो उसमें प्राण की पुष्कल मात्रा रहती है। हम लोग हवा से प्राण को और चोड़ों की अपेक्षा अधिक आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। सामान्य रीति से श्वास लेने में हम प्राण की सामान्य मात्रा ग्रहण कर सकते हैं; परंतु श्वास को अपने आधीन करके नियमित स्वाम से ( जिसे योगी को सॉस या प्राणायाम कहते हैं ) हम अधिक प्राण खींचने में समर्थ हो सकते हैं, जो प्राण मस्तिष्क और माहीकेंद्रों में जमा हो जाता है कि आवश्यकतानुसार काम में लाया जाय। हम प्राण को उसी प्रकार संचय कर सकते हैं, जैसे बिजली संचय करनेवाली बैटरी उसको संचय करती है। योगियों में जो अनेक शक्तियाँ कही जाती हैं, वे इसी प्राण-विषयक ज्ञान और प्राण के संचित भंडार की विचारपूर्वक काम में आने से होती हैं। योगी लोग जानते हैं कि किस रीति से सॉस लेने से प्राण के भंडार के साथ संबंध टूट जाता है, और उसी प्रकार श्वास लेकर अपनी आवश्यकतानुसार प्राण ग्रहण करके संचय किया करते हैं। इस प्रकार वे अपने शरीर ही को बलिष्ठ नहीं बनाते, बल्कि मस्तिष्क भी इसी द्वार से अधिक शक्ति ग्रहण करता है, और इससे गुप्त शक्तियाँ जागृत हो सकती हैं और मानसिक शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। जिसको प्राण संचय करने का तरीका जानकर या अनुमान में सिद्ध हो गया है, वह अपने शरीर से जीवत और शक्ति प्रवाहित किया करता है, जिसको

के सब रूपांतरों का सारांश कहा जा सकता है; यह वह तत्व है, जो एक विरोध रीति से कार्य करके उस प्रकार की क्रिया उत्पन्न करता है, जो जीवन के साथ रहती है।

यह प्रधान तत्व प्रत्येक द्रव्य में है, पर तो भी यह द्रव्य नहीं है। यह हवा में है, पर न तो यह हवा है और न हवा का अवयव ही है। यह उस भोजन में है, जिसे हम खाते हैं, परंतु यह वही पदार्थ नहीं है, जो भोजन में पोषणकारी पदार्थ होते हैं। यह पानी में है, परंतु वह पानी के उन रासायनिक तत्वों में से एक भी नहीं है, जिनसे पानी बना हुआ है। यह सूर्य के प्रकाश में है, पर न तो यह ताप है न किरण। यह इन सब चीजों की शक्ति है—चीजें तो केवल इसको वहन करने वाली हैं।

मनुष्य इसको हवा, भोजन, पानी, सूर्य के प्रकाश आदि से ग्रहण करने और उसे अपने देह-व्यंज्र के काम में लो आने में समर्थ है। हमारे अभिप्राय को अच्छी तरह से समझ लीजिए। हमारा अर्थ यह नहीं है कि माय इन पदार्थों में हसीजिये हैं कि मनुष्य उनका व्यवहार करें, यह अभिप्राय नहीं है। माय तो इन पदार्थों में प्रकृति के नियम के अनुसार है, और मनुष्य की योग्यता इसके ग्रहण करने और काम में लाने की एक गौण-मात्र है। यह शक्ति तो बनी ही रहेगी, चाहे मनुष्य रहे या न रहे।

आनवर और पौधे हवा के साथ इसे भी अपनी रवास द्वारा लींचते हैं और यदि हवा में प्राय न रहता, तो ये हवा से भरे रहने पर भी मर जाते। इसे आवसीजन के साथ देह-व्यंज्र ग्रहण करता है, पर यह आवसीजन नहीं है।

प्राय वायुमंडल की हवा में और अन्यत्र भी है, यह ऐसी जगहों में प्रवेश कर जाता है, जहाँ हवा की पहुँच नहीं हो सकती। हवा का आवसीजन अंतुर्धों के जीवन के कायम रखने में प्रधान काम

उमड़ो लगाना मुहब्बा की आवश्यकता नहीं रहती है। प्रत्येक श्वासा, प्रत्येक श्वासा, हृत्पा के प्रत्येक प्रपञ्च, मांसपेशी की प्रत्येक गति में नाड़ी-यंत्र शास्त्र होता है; और यह नाड़ी-यंत्र वस्तुतः प्राण ही है। किसी मांसपेशी को संकोचित करने के लिये मस्तिष्क नाड़ी द्वारा एक प्रेरणा भेजता है, और मांसपेशी संकुचित होती है; अन्य इतना प्राण वहाँ लुप्त हो गया। अब यह समझ रहेगा कि जितना प्राण मनुष्य ग्रहण करता है, उसका अधिकांश रक्त में ली हुई हवा से आता है, तो उचित मौम लेने की प्रधानता अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

यह जान देने में आती है कि रक्त के विषय में परिचयी वैज्ञानिक विचार आकस्मिकता ही के ग्रहण और स्फुरित-संचार द्वारा उसके वितरण तक रह जाते हैं; योगियों के विचार प्राण के ग्रहण की क्रिया और नाड़ी-यंत्र के मार्ग द्वारा उसके विकास तक पहुँचते हैं। आगे बढ़ने के पहले नाड़ी-यंत्र को समझ लेना आवश्यक होगा।

मनुष्य का नाड़ी-यंत्र दो बड़े विभागों में विभक्त है, अर्थात् मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग और दूसरा सहायक विभाग। मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग में वह नाड़ी-संस्थान है, जो सिर की खोपड़ी और रीढ़ की नाड़ी में संचित है, अर्थात् मस्तिष्क का भेजा या गुद्दी और रीढ़ की गुद्दी इन्हीं के साथ इनसे निकली हुई शाखाएँ भी हैं। यह विभाग मनुष्य की उन क्रियाओं का निरीक्षण करता है, जो संकल्प, चेतना आदि करके जाने आते हैं। सहायक विभाग में वह नाड़ी-यंत्र है, जो मुख्यतः गले, पेट और पेट के नीचे के खोपड़े में स्थित है और भीतरी अवयवों में फैला हुआ है। इसका अधिकार अनिच्छापूर्व क्रियाओं पर है जैसे वृद्धि, पोषण आदि।

मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग देखने, सुनने, स्वाद लेने, सूँघने, वेदना आदि की क्रियाओं को करता है। यह गति संचालित करता

वे लोग अनुभव करते हैं, जो उस मनुष्य के संपर्क में आते हैं।  
ऐसे जीवट और शक्तिवाले मनुष्य दूसरों को भी जीवट दे सकते  
हैं और उन्हें अधिक शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं।  
औजसरोगनिवारण इसी प्रकार किया जाता है, यद्यपि बहुतसे  
प्रयोक्ताओं को यह भी नहीं मालूम रहता कि उनको यह शक्ति  
कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई।

पश्चिमी वैज्ञानिक इस प्रधान तत्त्व से, जिससे हवा भी रहती  
है, बहुत धुंधले रूप से अभिज्ञ हुए हैं; परंतु इसके कोई रासायनिक  
लक्षण न पाकर, और अपने किसी औज़ार से इसे प्राप्य न कर  
सकने पर, वे लोग पूर्वीय लोगों के इस विचार को निरादर की दृष्टि  
से देखने लगे। वे इस तत्त्व को समझ न सके, इसलिये इसे अस्वी-  
कार करने लगे। ऐसा मालूम होता है कि उन्हें अब कुछ-कुछ ऐसा  
प्रतीत होने लगा है कि अमुक स्थान की हवा में "कोई चीज़" है  
और बीमार मनुष्यों को उनके डॉक्टर लोग उपदेश देते हैं कि उसी  
स्थान पर अपने छोटे हुए स्वास्थ्य को पाने के लिये जाओ।

हवा के आक्सीजन को रुधिर अपनाता है और रुधिर-संचार का  
यंत्र उसे अपने काम में लाता है। हवा में अंतर्गत प्राण को नाड़ी-  
जाल अपनाता है और उसे अपने काम में लाता है, जैसे आक्सीजन-  
मिश्रित रुधिर शरीर के सब अंगों में पहुँचाया जाता है कि जिनसे  
शरीर बने और सुधरे, जैसे ही प्राण भी नाड़ी-यंत्र के सब भागों में  
शक्ति और जीवट लेकर पहुँचाया जाता है। यदि हम प्राण को जीव  
का क्रियावान् तत्त्व समझ लें, तो हम इस बात की और भी सा-  
भाषना कर सकेंगे कि हम लोगों के जीवन में यह कैसा प्रधान का-  
रणी है। जैसे रुधिर का आक्सीजन देह की आवश्यकताओं से प्र-  
प्त होता है, वैसे ही नाड़ी-यंत्र द्वारा जिवा हुआ प्राण भी शरीर  
का काम करने और क्रिया आदि करने से उत्पन्न हुआ करता है।

उसको लगाना मुश्किल की आवश्यकता नहीं रहती है। प्रत्येक श्वास, प्रत्येक क्रिया, इच्छा के प्रत्येक प्रयत्न, मांसपेशी की प्रत्येक गति में नाड़ी-यंत्र स्वयं होता है; और यह नाड़ी-यंत्र वस्तुतः प्राण ही है। किसी मांसपेशी को संचालित करने के लिये मस्तिष्क नाड़ी द्वारा एक प्रेरणा भेजता है, और मांसपेशी संकुचित होती है; इस इतना प्राण वहाँ खर्च हो गया। जब यह स्मरण रहेगा कि जितना प्राण मनुष्य ग्रहण करता है, उसका अधिकतर श्वास में ही हुई हवा में आता है, तो उचित सोच लेने की प्रधानता अस्वीकार नहीं समझ में आ जायगी।

यह बात देखने में आती है कि श्वास के विषय में परिचयी वैज्ञानिक विचार आत्मजीवन ही के ग्रहण और श्वास-संचार द्वारा उसके वितरण तक रह जाते हैं; योगियों के विचार प्राण के ग्रहण की क्रिया और नाड़ी-यंत्र के मार्ग द्वारा उसके वितरण तक पहुँचते हैं। आगे बढ़ने के पहले नाड़ी-यंत्र को समझ लेना आवश्यक होगा।

मनुष्य का नाड़ी-यंत्र दो बड़े विभागों में विभक्त है, अर्थात् मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग और दूसरा महाभ्रूण विभाग। मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग में यह नाड़ी-संस्थान है, जो सिर की छोपी और रीढ़ की नाड़ी में संचालित है, अर्थात् मस्तिष्क का भेजा या गुरी और रीढ़ की गुरी इन्हीं के माध्यम से निकली हुई शाखाएँ भी हैं। यह विभाग मनुष्य की उन क्रियाओं का निरीक्षण करता है, जो संकल्प, योजना आदि करके जाने जाते हैं। महाभ्रूण विभाग में यह नाड़ी-यंत्र है, जो मुख्यतः गले, पेट और पेट के नीचे के खोखले में स्थित है और भीतरी अङ्गणों में फैला हुआ है। इसका अधिकार अविद्यमान विषयों पर है जैसे बुद्धि, पोषण आदि।

मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग देखने, सुनने, स्वाद लेने, सूँघने, वेदना आदि की क्रियाओं को करता है। यह गति संचालित करता

है; इसे जीव सोचने, चेतना प्रकाशित करने के काम में सहाय है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा जीव बाहरी जगत् से व्यवहार करता है। इस विभाग की उपमा टेन्नीकोन के तारों से दी जा सकती है; मस्तिष्क तो सदा दृष्टतर है और मेरुदंड तथा अन्य नाड़ियाँ क्रमशः सदा तार और शाखा तार हैं।

मस्तिष्क भेजा अर्थात् गुद्दी का पुंज है; इसके तीन भाग हैं, अर्थात् ( १ ) मस्तिष्क त्रास जो खोपड़ी के ऊपरी अगले, मध्य और पिछले भागों में रहता है, ( २ ) छोटा मस्तिष्क जो खोपड़ी के निचले और पिछले भाग में रहता है, और ( ३ ) मेडुला ओबलॉन्गेटा, जो मेरुदंड का चौड़ा आरंभ है और जो छोटे मस्तिष्क के भाग रहता है।

मस्तिष्क ग्राम या अस्ती मस्तिष्क मन के उस विभाग का व्यवहार है, जो बुद्धि-विषयक क्रियाओं में प्रकट होता है। छोटा मस्तिष्क वैयक्तिक सामयिकियों की गतियों पर अधिकार रखता है। मेडुला ओबलॉन्गेटा मेरुदंड का ऊपरी चौड़ा भाग है और उससे तथा छोटे मस्तिष्क से खोपड़ी की नाड़ियाँ निरन्तर सिर के अनेक भागों में, इन्धियों में, गले और पेट के अवयवों तथा श्वास लेने के अवयवों में पहुँचती हैं।

मेरुदंड या रीढ़ की हड्डी की गुद्दी रीढ़ की भाड़ी में घरी रहती है। यह गुद्दी की एक लंबी डेरी है जिसमें से रीढ़ की हड्डी की गाँठों-गाँठों से शाखाएँ बूट-बूटकर उन नाड़ियों से जा मिलती हैं, जो शरीर के सब भागों में फैली हुई हैं। मेरुदंड टेन्नीकोन के एक मरार तार की भाँति है, और उसकी शाखाएँ उससे सारी हुई शाखा तारों की भाँति हैं।

सदानुमयी विभाग में जो प्रधान मूलभूत नाड़ी गुच्छकों की हैं, जो मेरुदंड के दोनों बाजों में अवस्थित हैं, और इनके अनिर्दिष्ट

मिर, गर्दन, छाती और पेट के नाड़ी-गुच्छक भी इन्हीं में गयी हैं। नाड़ी-गुच्छक गुरी का एक छोटी देरी होती है, जिसमें नाड़ी के देहाण रहते हैं। ये नाड़ी-गुच्छक एक दूसरे से तंतुओं द्वारा जगाव रखते हैं, और इनका लगाव मस्तिष्क-मेरूद विभाग से भी चेतनाविहिनी और क्रियाविहिनी नादियों द्वारा है। इन्हीं नाड़ी-गुच्छकों से अनेक तंतु निष्कल-निष्कलर शरीर और रधिरवाहिनी नादियों आदि के अणुओं से जा मिलते हैं। बहुत-से स्थानों में ये नादियाँ एकत्रित हो जाया करती हैं और वहाँ नाड़ीग्रंथि (चक्र) बन जाती है। सहानुभूति विभाग अनिष्टापूर्वक प्रक्रियाओं पर शासन करता है, जैसे रधिर-संचालन, श्वास लेना और पाचन आदि।

जिम शक्ति या बल को मस्तिष्क इन नादियों द्वारा शरीर के सब अंगों में भेजता है, उसे परिचामी विज्ञानी "नाड़ी-बल" कहते हैं, यद्यपि योगी लोग उसे प्राण का विकास समझते हैं। प्रासियत और वेग में यह विज्ञानी की धारा के समान होता है। यह बात देखने में आवेगी कि बिना हम नाड़ी-बल के हृदय धड़क नहीं सकता, भिन्न-भिन्न अवस्था में अपनी क्रिया नहीं कर सकते; सब तो यह है कि बिना इसके शरीर-यंत्र बिल्कुल निष्क्रिय हो जाता है, जब ये बातें ध्यान की जावेंगी, तब प्राण के आकर्षण करने का महत्व सब पर विदित होगा; तथा हम श्वासविज्ञान की महिमा उससे भी अधिक होगी, जितना परिचामी विज्ञान अब कर रहा है।

इस नाड़ी-यंत्र के एक घटल में योगियों की सिचाई परिचामी विज्ञान से बहुत आगे बढ़ जाती है। हमारा अभिप्राय उस नाड़ी-ग्रंथि से है, जिसे परिचामी विज्ञान सौर्यकेंद्र कहता है, और जिसे यह अन्य नाड़ी-ग्रंथियों से केवल एक नाड़ी-ग्रंथि समझता है, जिसके गुच्छक शरीर के अनेक भागों में पाए जाते हैं। योगविज्ञान कहता है कि नाड़ी-ग्रंथि समुक्त नाड़ी-जाल में सर्व-प्रधान अंग है; यह एक प्रकार



का मस्तिष्क है, जो मानव शरीर में मुख्य कार्य करता है। पश्चिमी विज्ञान इसकी महिमा समझने की ओर थोड़ा-थोड़ा मुका जाता है, परंतु योगी लोग इसकी महिमा सैकड़ों वर्ष से समझे हुए हैं। पश्चिमी वैज्ञानिक इसे पेट का मस्तिष्क भी कहते हैं। यह सौर्यकेंद्र आमाशय के पीछे, उसके गद्दे के ठीक पीछे, मेरुदंड के दोनों ओर होता है। यह सक्रोद और भूरी गुदियों का बना हुआ उसी प्रकार का होता है, जैसी मनुष्य की और गुदियाँ हुआ करती हैं। इसका अधिकार मनुष्य के भीतरी सभी प्रधान अवयवों पर है; और जितना प्रयास किया जाता है, उससे कहीं अधिक बड़ा-बड़ा काम करता है। हम इस सौर्यकेंद्र के विषय में योगियों के विचार का सविस्तर वर्णन नहीं करेंगे; केवल हम इतना ही बतला देंगे कि यही प्राण का सदर भंडार है। इस स्थान पर थोटे लगने से मनुष्य तुरंत मरते हुए जाने गए हैं। और पहलवान लोग इसकी मार्मिकता को जानते हैं, इसलिये इस स्थान पर थोटे पहुँचाकर अपने विपक्षी को थोड़े काज के लिये शक्तिहीन बना देते हैं।

इस ग्रंथि को जो "सौर्य" विशेषण दिया गया है, वह बहुत ही उपयुक्त है, क्योंकि प्राण का भंडार होने के कारण यह उसी प्रकार बल और शक्ति को फैलाता है, जैसे सूर्य प्रकाश और ताप आदि को फैलाता है। इस मस्तिष्क भी प्राण के लिये इसी का आश्रय करता है। देर या सबेर पश्चिमी विज्ञान भी इस सौर्यकेंद्र की क्रियाओं को समझने लगेगा और यह केंद्र पश्चिमी विज्ञान में महात्त्व की उस पदवी को पावेगा, जो इस वर्तमान समय की पदवी से कहीं ऊँची होगी।

# इक्रीसवाँ अध्याय

## प्राण के अभ्यास

हम इस किताब के अन्य अध्यायों में आपको बतला आए हैं कि प्राण हवा, भोजन और पानी से प्राप्त किया जा सकता है। हमने स्वप्न लेने, भोजन करने और जल के व्यवहार करने की सविस्तर शिक्षा दे दी है। अब हम विषय में कहने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है। परंतु हम विषय को छोड़ देने के पहले हम हठयोग के ~~॥॥~~ ऊँचे मिट्टानों और अभ्यासों को आपको बतला देना अपेक्षा समझते हैं कि यह प्राण कैसे प्राप्त किया जाता है और कैसे वितरित किया जाता है। हमारा उद्देश्य तालयुक्त स्वप्न में है, जो हठयोग के अभ्यासों की कुंजी है।

सभी वस्तुएँ पुराण अर्थात् बंध में हैं। छोटे-से-छोटे परमाणु से लेकर बड़े-से-बड़े गुरु तक सभी पुराण की दशा में हैं। प्रकृति में कोई भी वस्तु नितांत स्थिर नहीं है। यदि अचेष्टा एक परमाणु भी बंध में हीन हो जाय, तो सारी सृष्टि को विनष्ट कर दे। अतएव पुराण में विरल का कार्य हो रहा है। द्रव्य के ऊपर शक्ति का प्रभाव पड़ रहा है, जिसके परिणाम से अगणित रूप और असंख्य भेद उत्पन्न होते रहते हैं; परंतु वे रूप और भेद भी निराल नहीं हैं। उन्हीं ही से बन जाते हैं, उन्हीं ही परिवर्तन होने लगता है और इनसे अगणित रूप उत्पन्न होते हैं, जो परिवर्तित होकर नए रूपों को प्रकाश करते हैं। इसी तरह से अमर-अमरतता तक निरालिप्ता अगणित हैं। इस रूप के अभाव में कोई वस्तु निराल नहीं है, परंतु तो ही पुराण रूप परिवर्तन-हीन और निराल है। रूप केवल आभास

मात्र है—वे आते हैं और जाते हैं—परंतु असंख्यत नित्य और अविकारी है।

मानव शरीर के परमाणु अनवरत स्फुरण में हैं। अनंत परिवर्तन हुआ करते हैं। जिन द्रव्यों से आपका शरीर बना है, योढ़े ही दिनों में उनमें पूरा परिवर्तन हो जाता है; आपके शरीर में इस समय जितने परमाणु हैं, कुछ महीनों के पश्चात् शायद ही कोई उनमें से शेष रह जाय। स्फुरण, लगातार स्फुरण! परिवर्तन, लगातार परिवर्तन।

सब स्फुरण में एक ताल पाया जाता है। ताल विरव में व्यापक है। ग्रहों के सूर्य के गिर्द घूमने, समुद्र के उमड़ने और दूबने, हृदय के धड़कने, ज्वार के उठने और भाटा के बैठने, सबमें ताल का नियम चरितार्थ होता है। सूर्य की किरणें हमारे पास आती हैं, वृद्धि होती है, सब उसी नियम के अनुसार। सब वृद्धि इसी नियम की प्रदर्शनी है। सब गति इसी ताल के नियम का प्रकाशन है।

हमारा शरीर ताल के नियम का वैसा ही वशवर्ती है, जैसा ग्रह का सूर्य के चारों ओर घूमना है। योग के स्वासविज्ञान का भीतरी और गूढ़ तत्त्व अधिकांश प्रकृति के इसी विदित नियम पर आश्रित है। शरीर के ताल में मिलकर योगी बहुत अधिक प्राण आकर्षण कर सकता है, जिसको वह अपने अभीष्ट-साधन में लगाता है। आगे चलकर इस विषय को हम अधिक विस्तार से कहेंगे।

यह हमारा शरीर एक छोटी खाकी की भाँति है, जो समुद्र से पृथ्वी में घुस गई हो। यद्यपि प्रकट में तो यह अपने ही नियमों के वशवर्ती है, परंतु वास्तव में यह समुद्र की ज्वार और भाटा के नियमों के आधीन है। जीवन का महासमुद्र उमड़ और पचक रहा है, उठता है और बैठता है, और हम लोग उसी के कंप और ताल के अनुगामी हो रहे हैं। स्वाभाविक दशा में हम जीवन के महा

मनुष्य के कंठ और मांस को ग्रहण कर लेने हैं और उसका अनुसरण करने हैं, परन्तु बर्मा-बर्मा आदी के मुद्गाने पर यही दृष्टि मिटी आकर मुँह बंद कर देती है और इस मद्गानगर की प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सके तथा हमारे भीतर गदगद पैदा हो जाती है ।

आप लोगों ने सुना होगा कि चेला बाजे पर एक स्त्रिय यदि ठीक तालयुक्त धार-धार बजाया जाय, तो ऐसे कंठों को गन्धालित करेगा, जो किसी समय में एक पुल को दाह गवने हैं । यही वात उस समय होती है, जब कोई पलटन पुल पार करने लगती है, तब गयेदा यह हुक्म दिया जाता है कि जल्दम लोड दिया जाय ( अर्थात् गवने एक पार साथ न उठाए और रखने जायें ) नहीं तो जल्दम का कंठ पुल और पलटन दोनों को नीचे गिरा दे । इस तालयुक्त गति के प्रभाव के उदाहरणों से आप भावना कर सकते हैं कि तालयुक्त श्वास का किन्ना प्रभाव शरीर पर पड़ सकता है । सारा शरीर कंठ को ग्रहण कर लेता है और आकांक्षा के सूर में मिल जाता है, जिससे फेफड़ों में तालयुक्त गति होने लगती है, और जब वह इस प्रकार सूर में मिल जाता है, तब आकांक्षा की आशाओं का तुरंत पालन करने लगता है । जब शरीर का सूर इस तरह ठीक हो जाय, तो अपनी आकांक्षा की आशा से शरीर के किसी भाग के रुधिर-संचालन को बढ़ाने में योगी को कठिनता नहीं होती । इसी प्रकार वह शरीर के किसी भाग में अधिक नादीयल प्रवाहित कर सकता है, जिसमें शरीर की शक्ति और उत्तेजना मिले ।

इसी प्रकार तालयुक्त श्वास द्वारा योगी कंठ को मानो ग्रहण कर लेता है और अधिक परिमाण के प्राण पर अधिकार कर लेता है और उसे ग्रहण कर लेता है और तब वह उसकी इच्छा के अधीन हो जाता है । तब वह उसे साधन बना लेता है कि उसके द्वारा दूसरों के पास विचार भेज सकता है और उनको अपनी घोर आक-

पित कर सकता है, जिनके विचार उसी रूप में बह रहे हैं। दूर से रोग दूर करने, विचार भेजने और प्रदण करने, मानसिक क्रियाओं से रोग दूर करने, मिसमेरिज़िम आदि के दूर, जो आजकल परिचयी दुनिया में हमना कुनूहल उत्पन्न कर रहे हैं और जो योगियों को सैकड़ों वर्ष से विदित हैं, बहुत ही अधिक बढ़ाए जा सकते हैं, यदि विचार भेजनेवाला मनुष्य तालयुक्त स्वासक्रिया करने के पर्याप्त इन प्रयोगों को करे। तालयुक्त स्वास मानसिक और औसत क्रियाओं द्वारा रोग आदि दूर करने में दूने से भी अधिक प्रभाव बढ़ा देता।

तालयुक्त स्वासक्रिया में असल बात तास की भावना प्राप्त करना है। उन लोगों के लिये, जो संगीत से कुछ जानकारी रखते हैं, मधो-मुन्नी गिनती की भावना परिचित है। दूरियों के लिये पलटन के सिपाहियों के तालयुक्त कथम “बायीं, दहना; बायीं, दहना; बायीं, दहना; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार,” कुछ-कुछ भावना दे सकेंगे।

योगी अपनी ताल के समय को उस मात्रा के अधिन रखता है, जो उसके दिज की धड़कन के अनुसार होता है। दिज की धड़कन भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न काल का अंतर देकर हुआ करती है। परंतु प्रत्येक मनुष्य के हृदय की धड़कन की मात्रा उस व्यक्ति के लिये तालयुक्त सॉम देने में उपयुक्त हुआ करती है। अपनी नाड़ी पर हाथ रखकर अपने हृदय की स्वाभाविक धड़कन की मात्रा को निरिचय करो और तब गिनो—१, २, ३, ४, ५, ६। १, २, ३, ४, ५, ६। इत्यादि, जब तक ताल की भावना रह होकर तुम्हारे मन में अधिक न हो जाय। छोड़े अन्वय में ताल निरिचय हो जायगा कि त्रिगणे तुम आगामी में जगें दुहरा गया। पारमिज दूरा में मनुष्य नः मात्रा में स्वास भीतर स्थित है, परंतु अन्वय में वह हमें बहुत बड़ा सकता है।



काल को बढ़ा सकोगे और थोड़े ही दिनों में इनका काल १५ मात्रा तक हो सकेगा। इसके बढ़ाने में स्मरण रखना कि श्वास रोकने और दो श्वासों के बीच बिना श्वास के रहने की मात्रा श्वास और प्रश्वास की मात्रा की आधी होनी चाहिए।

श्वास के समय बढ़ाने के लिये अपने को बहुत थका मत डालो, परंतु ताल प्राप्त करने के लिये जहाँ तक हो सके यत्न करो, क्योंकि यह श्वास की लंबाई की अपेक्षा अधिक प्रधान है। अभ्यास करते जाओ और यत्न में लगे रहो कि गति कानपा-तुला कंफ मालूम हो जाय और कंफ की गति के ताल की सारे शरीर में वेदना अनुभव करने लगो। इसमें थोड़े अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता होगी, परंतु अपनी उन्नति पर जो सुख मालूम होगा, वह इस परिश्रम को आसान बना देगा। योगी बहुत ही संतोषी और धैर्यवान् मनुष्य होता है, और इन्हीं गुणों से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है।

### प्राण का उत्पन्न करना

भूमि या चारपाई पर चित पड़ जाओ, कुल शरीर को शिथिल कर दो, हाथ इसके-इसके सौर्यकेंद्र पर पड़े रहें, (जहाँ आमाशय का गड्ढा रहता है अर्थात् जहाँ से पसलियाँ पृथक् होने लगती हैं) तालयुक्त श्वास लो। जब ताल पूरी तरह से निश्चित हो जाय, पर आकांक्षा करो कि प्रत्येक श्वास प्राण-भंडार से अधिक प्राण या जीवत-शक्ति लीचे, जिसे नाड़ी-जाल ग्रहण करके सौर्यकेंद्र में संचित करें। प्रत्येक प्रश्वास के छोड़ते समय यह आकांक्षा करो कि प्राण या जीवत-शक्ति सारे शरीर में वितरित होवे, प्रत्येक अवयव और भाग प्रत्येक मांसपेशी, देहाणु और परमाणु, प्रत्येक नाड़ी, धमनी और शिरा, मिर की चोटी से लेकर पैर के अँगूठे तक में प्रत्येक नाड़ी को बलशक्ति उत्तेजना देने, प्रत्येक नाड़ी-केंद्र को भरने, सारे शरीर में शक्तिबल और दृढ़ता पहुँचाता हुआ जा रहा है। जब

आकांक्षा का प्रयोग करो, तब भीतर आते हुए प्राण की मानसिक मूर्ति बना लो कि पेटकड़े द्वारा आ रहा है और मीर्यकेंद्र द्वारा ग्रहण किया जा रहा है; और प्रशवास के यान में सारे शरीर के कुल भागों में अँगुलियों के मिरों और पैर की अँगुलियों तक में जा रहा है। बड़े परिश्रम से आकांक्षा करना आवश्यक नहीं है; केवल जैसा तुम चाहने हो उसी की आज्ञा दो और उसकी मानसिक मूर्ति बना लो। मानसिक मूर्ति के संग-संग शांत आज्ञा बलपूर्वक इच्छा करने की अपेक्षा बेहतर है, क्योंकि बलपूर्वक इच्छा करने में शक्ति का व्यर्थ व्यय होता है। ऊपर लिखी हुई कसरत बहुत ही लाभ देनेवाली है, और नाड़ीजाल को साफ़ा और शक्तिमान् बना देती है, और सारे शरीर में विश्राम का भाव फैला देती है। यह उस जगह बहुत ही गुणकारी प्रतीत होता है, जहाँ मनुष्य थका है या शक्ति की कमी समझता है।

### रुधिर-संचालन का परिवर्तन करना

लेटकर या सीधे बैठे हुए तालयुक्त रवास लो, और प्रशवास छोड़ते समय जिस भाग में चाहो, उसी भाग में रुधिर-संचार को प्रेरित होने की आकांक्षा करो, अधूरे रुधिर-संचार के कारण कोई दुःख भोग रहा हो। यह क्रिया ठंडे पैर और मिर की पीड़ा की दशा में बहुत लाभदायक होती है; दोनों दशाओं में रुधिर नीचे की ओर संचालित किया जाता है, पहली दशा में तो पैर को गरम करने के लिये और दूसरी दशा में मिर के दबाव को हलका करने के लिये। ज्यों-ज्यों रुधिर का संचार नीचे आवेगा, त्यों-त्यों टोंगों में तुम गर्मी मालूम करने लगोगे। रुधिर-संचार अभिवांश आकांक्षा के अधिकार में होता है और तालयुक्त रवास कार्य को और भी सामान्य कर देती है।

### फिर प्राण भरना

यदि तुम्हें मालूम हो कि तुम्हारी जीवत-शक्ति शीघ्र होती जाती



है और तुम्हें शीघ्र जीवट-शक्ति का संचय कर लेना आवश्यक है, तो सर्वोत्तम उपाय यह है कि दोनों पैरों को हकड़ा कर लो (एक दूसरे के समान में) और दोनों हाथों की अँगुलियों को जैसे चाहो वैसे एक हाथ की अँगुलियों को दूसरे हाथ की अँगुलियों से प्रथि-रूप में बाँध लो। इससे मंडल बंद हो जाता है, और क्षोरो से प्राण का निकलना रुकता है। तब कई बार तालयुक्त श्वास लो और फिर प्राण से भर जाने का प्रभाव तुम्हें मालूम होने लगेगा।

### मस्तिष्क को उत्तेजित करना

नीचे लिखी हुई कसरत को, योगियों ने मस्तिष्क की क्रिया को उत्तेजित करने में, कि सोचना और विचारना स्पष्टता के साथ हुआ करे, बहुत लाभदायक पाया है। यह मस्तिष्क और नाड़ी-जाल के साफ करने में आश्चर्यजनक प्रभाव रखती है, और जिन्हें मानसिक काम करना पड़ता है, वे इसे बहुत गुणकारी पावेंगे, जिसके द्वारा बेहतर मानसिक क्रिया भी होगी और कठिन मानसिक परिश्रम के बाद इसके द्वारा मन ताजा और स्वच्छ हो जायगा।

सीधे पीठो, रीढ़ की हड्डी को सीधा रखो, अँगुलियों को ठीक सामने रखो, हाथ टाँगों के ऊपरी भाग पर पड़े रहें। तालयुक्त श्वास लो, परंतु दोनों नथनों द्वारा श्वास लेने के स्थान पर, जैसा सामान्य श्वास में किया करते हो, बाएँ नथने को अँगूठे से बंद कर लो और केवल दहने नथने से श्वास भीतर खींचो। तब अँगूठा हटा लो और दहने नथने को अँगुली से बंद करो और तब बाएँ नथने से प्रश्वास बाहर निकाल दो। तब बिना अँगुलियों के बंद हो गए बाएँ नथने से श्वास खींचो, और अँगुली बदलकर दहने से प्रश्वास छोड़ो। तब दहने से श्वास लो और बाएँ से श्वास छोड़ो, और इसी तरह से ऊपर लिखी हुई रीति से नथनों को बदलते जाओ, अग्रयुक्त नथने को अँगूठे या अँगुली से बंद किए

हो। यह योगियों का सबसे पुराना भरोसा स्वास का है, और यह मुख्य और लाभदायक तरीका ग्रहण ही करने के योग्य है। परंतु परिधमी लोग हमों को योगियों की मारी योग-शिक्षा समझने हैं। हमने जानकर योगियों को हमी आ जाती है। परिधमी लोगों को योगियों की स्वामंत्रिया की यही भावना होती है कि एक हिंदू सीधे बैठा है और स्वास लेने में कभी हम नघने से और कभी उस नघने से स्वास ले रहा है। "केवल हमना ही और कम।" हम आशा करते हैं कि हम बिनाब से परिधमी दुनिया की ऑर्गेन मुख जावेंगी और योगी के स्वाम-क्रिया के महत्व और हमके प्रयोग के अनेक तरीकों को लोग समझ जायेंगे।

### योगियों की महती मानसिक स्वाम-क्रिया

योगियों को एक विश्व स्वामक्रिया मान्य है, जिसका वे कभी-कभी अभ्यास करते हैं, जिसका नाम एक महान् शक्ति है, जिसका ऊपर दिया हुआ अर्थ है। हमने इसको ध्यान में दिया है, क्योंकि हममें शिष्यों की ओर से ऐसे अभ्यास की आवश्यकता है कि जिसमें लाख-पुनः स्वास और मानसिक कल्पना दोनों हों और जिसे वह पहले वर्णन की हुई कमलियों के द्वारा अर्थ प्राप्त कर लिया होगा। हम महारबाग के मुख-तण्ड को हम हम गुलामी हिंदू बहादुर द्वारा धोड़े में बांध देने है कि "अच्छ वह योगी है, जो अपनी हड्डियों द्वारा स्वास लेता है।" हम कमल से आता शरीर-अंग प्राण से भर जायगा और शिष्य हम कमल को जब समाप्त करेगा, तो उसकी शरीर-हड्डि, आन्तरिकी, बाहरी, देहान्त, देहान्त, अस्वस्थ और आग शक्तिमंथन और प्राण तथा स्वास के माध्य के अंग में आग होकर निकलेगे। वह शरीर अंग को मात्र कर देनेवाली कमल है और जो शिष्य इसका आवश्यकता से अभ्यास करता है, उसको मान्य होगा कि हमको कमल के अंग शरीर मिल गया है, जो तिर से लेकर दूर के दूर

तक ताज़ा ताज़ा बना हुआ है । हम आगे उस कमरत को लिगते हैं ।

( १ ) शरीर को शिथिल करके विश्रुद्ध आराम से पड़ जाओ ।

( २ ) तालयुक्त श्वास लो, जब तक ताल टोक न हो जाय ।

( ३ ) श्वास गींचने और प्रश्वास छोड़ते समय यह कल्पना करो कि श्वास टोंगों की हड्डियों में घा रही है और उन्हीं में होकर निष्कृत रही है ; तब भुजाओं की हड्डियों में, फिर ग्रामाराय से, फिर जननेन्द्रिय के स्थान में ; तब मानो मेरुदण्ड से घा और जा रही है । तब मानो साँस चमड़े के प्रत्येक छिद्र से खींची और प्रवाहित की जा रही है और मारा शरीर मानो प्राण और जीवन से भर रहा है ।

( ४ ) तब तालयुक्त साँस खेते हुए प्राण की धार साठों मर्म-स्थानों में घाती-घाती से भेजो, जैसा नीचे दिया जाता है, परंतु ऊपर लिखी हुई मानसिक कल्पना बनी रहे ।

( अ ) कलाट-प्रदेश में ।

( घ ) तिर के पिछले भाग में ।

( स ) मस्तिष्क के आधार में ।

( द ) सौर्यकेंद्र में ।

( ई ) पेट के नीचे के खोखले ( शुदायक ) में ।

( फ ) नाभिप्रदेश में ।

( ज ) जननेन्द्रिय प्रदेश में ।

प्राण का प्रवाह तिर से पैर तक कई बार आगे-पीछे बहाकर समाप्त कर दो ।

( ५ ) सफाईवाली क्रिया करके प्रथम कर दो ।

# वाईसवाँ अध्याय

## शिथिलीकरण विज्ञान

शरीर के शिथिल करने का विज्ञान दृढयोग शास्त्र का एक मुख्य अंग है और बहुत-से योगी इस विषय की हम शारदा में बहुत अधिक जी लगाने और सावधानी रखते हैं। पहली दृष्टि में तो सामान्य पाठक की हम शिक्षा की भावना कि शरीर कैसे शिथिल किया जाय, कैसे विधाम किया जाय बड़ी हास्य-जनक होगी, क्योंकि हमके छात्रालय से प्रत्येक मनुष्य हम सीधी बात को जानता है।

सामान्य मनुष्य कुछ-कुछ सही भी है। प्रकृति हमें शरीर को शिथिल करना और पूरा विधाम करना सिखा देती है। इस विज्ञान में बड़ा आचार्य होता है। परंतु ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं, त्यों-त्यों कृत्रिम आदतें बहुत-सी धारण करते जाते हैं, और पहलू की स्वाभाविक आदतों को छोप हो जाने देते हैं। इसलिये मनुष्यों को योगियों से हम विषय में शिक्षा प्राप्त करने की बहुत बड़ी आवश्यकता होती जाती है।

साधारण डॉक्टर भी मनुष्यों की इस विषय के मूल तत्त्वों को अनभिज्ञता की साक्षी दे सकते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि नाच की बीमारियों में अधिकांश बीमारियाँ हम विधाम करने के विषय की अनभिज्ञता के कारण हुआ करती हैं।

विधाम और शरीर को शिथिल करना, ये बातें बाहिली और अंतर्मुखी से बहुत ही भिन्न हैं। सच बात तो यह है कि जिन लोगों ने शरीर को शिथिल कर देने के विज्ञान को साध लिया है, वे प्रायः अत्यंत क्रियाशील और शक्तिमान् मनुष्य होते हैं।

हैं; वे शक्ति को व्यर्थ नहीं व्यय करते; वे प्रत्येक गति का हिसार रखते हैं ।

अब शरीर के शिथिल करने के प्रश्न पर विचार कीजिए और पर समझने का यत्न कीजिए कि इसका अर्थ क्या है । इसको अच्छी तरह से समझने के लिये पहले इसके विलोम "आकुंचन" पर विचार कर लीजिए । अब हम किसी मांसपेशी को आकुंचित किया चाहते हैं कि उससे कुछ काम लें, तो हम मस्तिष्क से वहाँ को प्रेरणा भेजते हैं, जिससे वहाँ कुछ अधिक प्राण भेजा जाता है और मांसपेशी आकुंचित हो जाती है । प्राण गतिसंचालिनी नाड़ी में होकर जाता है, मांसपेशी तक पहुँचता है और उसे अपने छोरों को घटोरने की प्रेरणा करता है, और इस तरह से उस अवयव या भाग पर, जिसे हम हिलाया चाहते हैं, जोर लगता है कि वह अवयव काम करे । परि हम अपने क्लेश को स्याही में डुबोना चाहते हैं, सब हमारी आशावां क्रियारूप में इस प्रकार प्रकट होती है कि हमारा मस्तिष्क दाहिनी भुजा की कुछ निरिक्त मांसपेशियों में, हाथ और अँगुलियों में प्राण की धार भेजता है, जिसमें वे आकुंचित हो-होकर हमारे क्लेश को दावात तक ले जाते हैं, उसे उसमें डुबोते हैं, और फिर उसे कागज तक छाते हैं । यही बात हमारी प्रत्येक क्रियाओं में हुआ करती है, चाहे हम उसे जानें या न जानें । चेतना-रहित क्रियाओं में चेतना-शक्ति प्रवृत्ति-मानस को सूचना देती है, जो सरकार का आश का पालन करता है और अभीष्ट-स्थान पर प्राण की धार भेज देता है । चेतना-रहित क्रियाओं में प्रवृत्ति-मानस आशा की प्रतीक्षा नहीं करता, परंतु स्वयं प्राण कुछ काम पर लग जाता है । आशा देना और उसे कर देना, दोनों काम अपने आप करता है । परंतु प्रत्येक क्रिया, चाहे चेतना-रहित हो या चेतना-रहित, प्राण की कुछ मात्रा प्रार्थ करता है, और यदि प्रार्थ

का परिमाण उस परिमाण से अधिक हुआ जिस परिमाण में प्राण को मंचय करने का शरीर-यंत्र धारणी हो रहा है, तो परिणाम यह होता है कि मनुष्य निर्वह हो जाता है और निराल भव जाता है। किसी विशेष मांसपेशी की वक्रावृत्ति भिन्न बाग है और यह अनभ्यस्त काम के करने से पैदा होती है, क्योंकि उसके आकुंचन करने में प्राण की संरमामूर्त्ति मात्रा लुप्त हुई है।

यहाँ तक हमने शरीर के वास्तविक मंचाक्रम के विषय में, जो मांसपेशियों के आकुंचन द्वारा, प्राण की धार उधर प्रवाहित होने में होता है, कहा। एक और मार्ग भी प्राण के व्यय और मांसपेशी के लीनने का है, जो हम लोगों में बहुतों को मालूम नहीं है। हमारे पाठकों में जो लोग शहरों में रहते हैं, वे हमारे अभिप्राय को समझ जायेंगे। जब हम प्राण के व्यय की उपमा पानी के उस व्यय से देंगे, जो नल्ल की टोंटी को गच्छी तरह न बंद करने से टपका करता है और व्यय हुआ करता है। यही बात हम लोगों में अधिकांश मनुष्य सर्वदा किया करते हैं। हम अपने प्राण को सर्वदा बहाया करते हैं, और मांस ही मांसपेशी को छिजाया करते हैं और इस तरह से सारे शरीर-यंत्र को सिर से लेकर पाँव तक क्षीय कर देते हैं।

हमारे शिष्य लोग मनोविज्ञान की इस कहावत से निस्मंदेह अभिन्न होंगे कि “विचार क्रिया का रूप धारण करता है”। जब कोई काम किया चाहते हैं, तो हमारी पहली प्रेरणा मांसपेशी की उस गति की धोर होती है, जो विचार से उत्पन्न कार्य के करने में आवश्यक होती है। परंतु दूसरे विचार के कारण हम पहली गति को करने में रुक सकते हैं, यदि हम दूसरे विचार से रोकना ही अभीष्ट जेचे। हम क्रोध के आवेश में धाकर किसी मनुष्य को मारने पर उतारू हो सकते हैं, जिसके उपर क्रोध उत्पन्न हुआ हो॥ ज्यों



उन्हें रोकने के प्रयत्न का रिवाज अक्सर आदत बन जाता है—  
पुरानी आदत हो जाता है—और ऐसे मनुष्यों की नारियाँ और  
मांसपेशियाँ सर्वदा तनाव में रहती हैं, जिसका परिणाम यह होता  
है कि जोड़, प्राण और सारे शरीर की लगातार छीजन हुआ करती  
है। ऐसे मनुष्यों की बहुत-सी मांसपेशियाँ सर्वदा तनी हुई वशा में  
रहती हैं, जिसका यह मतलब है कि लगातार प्राण की धार उस  
ओर बहा करती है और आदियाँ सदा प्राण पहुँचाने के काम में लगी  
रहती हैं। हमको एक जंक बुद्धि का क्या पता है, जो रेल पर  
सवार किसी पाम के नगर को जा रही थी। उसको वहाँ पहुँचने की  
हमनी छुगी थी और हमनी आगुर हो गई थी कि वह अपनी बैठक  
पर गिर बैठ न सकनी थी। इसके विपरीत वह बैठक के किनारे पर  
बैठी थी, और उसका शरीर आगे की ओर मुड़ा हुआ था, यही दूरा  
कुल १६ मीटर की यात्रा में रही। उसका मन मानो ट्रेन को आगे  
बढ़ने के लिये उत्तेजित कर रहा था। इस बुद्धि औरत के प्रयासान  
यात्रा के अंत के लिये होने लगे थे कि क्याकाठ में क्रिया का  
प्रत्यक्ष रूप धारण कर लिया था; और इसको जो शरीर को डीखा  
करके रहना था, उसके स्थान पर इसकी मांसपेशियाँ आकुंचित हो  
रही थीं। हम लोगों में से बहुत-से मनुष्य उसी बुद्धि की भाँति के  
हैं; जब हम किसी चीज़ को देखने लगते हैं, तो आगुर होकर सारे  
शरीर पर तनाव डाल देते हैं। और एक-एक तरह से सर्वदा  
अपनी बहुत-सी मांसपेशियों पर तनाव डाले रहते हैं। हम जोर से  
मुट्टियाँ चींचते हैं, नाक-भी खड़ाते हैं, कमर अपने ओठों को बंद  
करते हैं, ओठों को दाँत से बाँधते हैं, या अपने दाँतों को पीसते हैं  
या ऐसी ही अन्य काम करते हैं, जिससे मानसिक दशा क्रियाश्रुतों में  
प्रसर होती है। यह सब प्राण का व्यर्थ व्यर्थ करना है। इसी तरह  
की बुरी से आदतें भी हैं, जिससे मनुष्य बड़े ही होशकी बजाये का हाथ



फेरा करता है, घेंगूला घुमाया करता है, घेंगुलियों नचाया करता है, पैर की घेंगुलियों से जमीन ठोका करता है, मुँह धवाया करता है, तिनके तोड़ा करता है, दाँत में पेंसिल काटा करता है, धरने शरीर के किसी अवयव को हिलाया करता है और झूमा करता है। ये बातें और ऐसी ही अनेक बातें प्राण का ध्येय व्यय करने वाली हैं।

अथ मांसपेशियों के आकुंचन के विषय में हम कुछ-कुछ समझने लगे हैं, इसलिये अब फिर शरीर के शिथिल करने के विषय पर चलिये।

शिथिल किष्ट हृष्ट भंग में प्राण की धार का प्रवाह नहीं होता। बहुत थोड़ा-थोड़ा प्राण शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में स्वास्थ्य की दशा में संचार करता है कि जिससे स्वाभाविक स्थिति बनी रहे, परंतु यह धार उच्च धार की अपेक्षा जो आकुंचन में प्रवाहित की जाती है, बहुत हीन हुआ करती है। शिथिल होने में मांसपेशियाँ और नाडियाँ विश्राम की दशा में रहती हैं; और प्राण, ध्येय बर्तन होने के स्थान पर संचित हुआ करता है। यह शिथिलीकरण वधों और जानवरों में शरीर से देखा जा सकता है। कुछ युवा लोगों में भी पाया जाता है; आप प्रयास करेंगे कि ऐसे युवा धैर्य, शक्ति, बल और जीवट में अन्यो की अपेक्षा अधिक हुआ करते हैं। काहिल आदमी शिथिलीकरण का उदाहरण नहीं है। शिथिलीकरण और काहिली में बड़ा फर्क है। शिथिलीकरण उद्यम के बीच में विश्राम है, जिसका परिणाम यह होता है कि बेहतर काम और थोड़े प्रयत्न से होता है। काहिली उद्यम से जी घुसना है और इस प्रयास का परिणाम अकर्मण्यता होती है।

जो मनुष्य शिथिलीकरण धर्मात् शक्तिसंचय को समझता और व्यवहार में लाता है, वह सबसे अच्छा काम करता है। वह एक सेर

मयल से एक सेर का काम लेता है, और वह अपनी शक्ति बर्बाद नहीं करता, न बिगाड़ना और न उसे बहाया करता है। सामान्य मनुष्य, जो इस नियम को नहीं समझता, तिगुनी से लेकर पचीसगुनी तक आवश्यकता से अधिक शक्ति उसी काम में खर्च कर देता है, चाहे वह काम शारीरिक हो या मानसिक। यदि आपको इस बात में संदेह हो, तो जिनमें आपकी संगति हो जाय, उन्हें शौर से देखिए कि वे कितनी व्यर्थ गतिवर्तों करते हैं। मानसिक भावों में वे अपने चाबे नहीं रहतीं, जिसका परिणाम शारीरिक अतिव्यय होता है।

योग के गुरु लोग अपने शिष्यों को भारतवर्ष में किताब द्वारा शिक्षा नहीं देते, किन्तु, वाणी द्वारा शिक्षा देते हैं। वे प्रकृति और उदाहरण से बहुत-सा वस्तुपाठ पढ़ाने हैं, जिसमें शिष्य के हृदय में टीक भाव बैठ जाय। इदयोग के गुरु जब शिथिलीकरण का पाठ पढ़ाने लगते हैं, तो वे अपने शिष्यों के ध्यान को बिछी या उसी की भाँति के तेंदुघा, चीता आदि की ओर आकृषित करते हैं, क्योंकि वे जानवर वहाँ के जंगलों में अधिकता से पाए जाते हैं।

आपने कभी बिछी को विधाम करते देखा है? कभी उसे खूँहे के बिल के पास छपके हुए देखा है? पिछली सूरत में आपने शौर किया है कि कैसे आराम से सुंदर स्थिति में वह छपकी रहती है—न तो मांसपेशियों का आकुंचन है न तनाव है—अत्यंत शक्ति विधाम कर रही है, परंतु शुरंत हमला करने के लिये तैयार है। गिधर और गनिहोन वट पकी रहती है; प्रगट वह मोड़ें हुई या मरी नज़र आती है। परंतु देवने रहिए, जब समय आता है, वह बिजली के समान झपटती है। बिछी का विधाम यद्यपि गति और मांसपेशियों के तनाव से विहीन था, पर तो भी वह अविन विधाम था—बाहिरी से बिजबुज ही भिन्न बात थी। परंतु कॉपती हुई मांसपेशियों, लनी हुई नावियों और पत्तों के बूँदों के अभाव को

स्मरण कर लो। क्रिया के चंद्र प्रतीका ही में नहीं ताने गए हैं। व्यर्थ की हरकत और तनाव नहीं है, सब चीजें तैयार हैं, और ज्यों ही क्रिया का अवसर उपस्थित होता है, त्यों ही प्राण ताज़ी मांसपेशियों और विभ्रान्त नाड़ियों में भेज दिए जाते हैं, और हादे के साथ-ही-साथ चित्राली की कल की चिनगारियों की भाँति क्रिया प्रकट हो जाती है।

हठयोगी, जो सौंदर्य, जीवट और विभ्राम में चित्रियों का उदाहरण देते हैं, वह बहुत ही धन्य उदाहरण है।

वास्तव में, जब तक शिथिल करने की योग्यता न होगी, तब तक तैज़ी की और भ्रूय प्रभाव की क्रिया न होगी। वे मनुष्य जो चंचल रहा करते हैं, फनमनाया करते हैं और जोश में रहते हैं, और नीचे-ऊँचे पैर पटक करते हैं, सर्वोत्तम काम करनेवाले नहीं होते। वे क्रिया का समय आने के पहले ही अपने को थका देते हैं। जिस मनुष्य का भरोसा किया जा सकता है, वह वह मनुष्य है, जो शांति, शिथिलीकरण की योग्यता और विभ्राम रखता है। परंतु चंचल मनुष्य को निराश न होना चाहिए। शिथिलीकरण और विभ्राम ज़सी प्रकार प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे अन्य गुण प्राप्त हुआ करते हैं।

अगले अध्याय में हम कुछ सरल शिक्षाएँ उन लोगों के लिये देंगे, जो शिथिलीकरण विज्ञान का क्रियान्मक ज्ञान चाहते हैं।

### शिथिलीकरण के नियम

विचार क्रिया में प्रगट होते हैं, और क्रियाओं का प्रभाव मानस पर पड़ता है। ये दोनों सब बातें साथ-साथ रहती हैं। इसमें शान्त उतनी ही सच्ची है, जितनी दृढ़। दोनों ही योगों शरीर पर पड़ने के विषय में बहुत मूढ़ता का कारण हैं, और

प्रभाव मन और मानसिक दशाओं पर भी पड़ता है। शिक्षिलोकरण के प्रश्न पर विचार करने में इन दोनों तथ्यों को स्मरण रखना चाहिए।

सांमयेशियों के आर्जुन का अनेकों हानिकारी और मूर्खता की क्रियाएँ और आशयें इस कारण से होती हैं कि मानसिक दशाएँ शारीरिक क्रिया का रूप धारण किया करती हैं। और इसके विपरीत, हमारी बहुत-सी मानसिक दशाएँ हमारी शारीरिक अभिव्यक्तियों आदि के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। अब इस कुछ होने दें, तो यह जोश बँधी हुई मुट्टियों के शारीरिक रूप में प्रकट होता है। और इसके विपरीत यदि हम मुट्टियाँ बाँधने, नाक-भँई निकालने, आँठ काटने आदि की आदतें पैदा करें, तो हम अपने मानस का भी ऐसी दशा में ला देंगे कि मनिक-या कारण पाने पर भी वह मोघ के आवेग में पड़ जायगा। अगर लोग जानते हैं कि आँखों और आँठों पर मुस्कराहट की क्रिया आकर उन्हें घोंड़ी देर तक जाग्रत रखने से आपकी राखमुख मुस्कराहट आ जाता है।

सांमयेशियों के आर्जुन ऐसी हानिकारी क्रिया और अपने व्यवहार के व्यव और नादियों की उत्पत्ति होने के लिये यह कहना यह है कि शांति और विधायन का मानसिक स्थिति पैदा की जाय। यह पैदा की जा सकती है, पर पहले यह बड़ा कठिन काम होगा। परन्तु यदि आप इसमें लग जायेंगे, तो अपने परिश्रम का पूरा मूल्य पा जायेंगे। मोघ और बिबिधायन को दूर करने से मानसिक शांति और विधायन पैदा हो सकते हैं। बिबिधायन और मोघ का मूल कारण अब हुआ करता है, परन्तु यदि हम अब और बिबिधायन ही को शारीरिक मानसिक दशा मानने के जादी है, इसलिये हम उन्हें ऐसा ही समझकर बर्ताव करेंगे। कोणा व्यवहार ही से मोघ और बिबिधायन दूर करने का

आपनाम करना है, और परिणाम यह होता है कि अब उसकी कुछ शक्तियाँ जग जार्गी हैं, तब भी वह निगल ओमहीन और शांत बना रहना है और शक्ति तथा बल का रूप दिखाई देना है। वह वैसा ही भाग उठाए करता है, जैसा पतंग, समुद्र आदि में गुप्त शक्ति के भाग उद्वह हुआ करते हैं। उसके निष्ठ आने पर मादूम होता है कि यहाँ बहुत शक्ति और बल पूर्ण विग्राम में है। योगी क्रोध को बहुत नीच मनोविकार समझता है, जो नीच जंतुओं और बहरी मनुष्यों में पाया जाता है, परंतु विक्रमिष्ठ मनुष्य के तो अत्यंत प्रतिकूल है। वह इसे तात्कालीन उन्माद समझता है, और उस मनुष्य पर रहम गाता है, जो अपने मनःशामन को खोकर क्रोध के आवेग में आ जाता है। वह जानता है कि हमसे कुछ भी काम नहीं निकलता और यह शक्ति की व्यर्थ बर्बादी और मस्तिष्क तथा नाडी-बंध के लिये प्राणच दानिकारक है। हम यान के कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि यह धार्मिक प्रकृति और आध्यात्मिक उन्नति को निर्बंध करनेवाला तो है ही। हमसे यह न समझना चाहिए कि योगी भीत मनुष्य और विना बीरता के होता है। इसके विपरीत वह तो भय को कुछ समझता ही नहीं है; उसकी शक्ति शक्ति की द्योतक है न कि निर्यत्नता की। आपने कभी गौर किया है कि बड़े बलवाले मनुष्य घमंड और धमकियों से परे रहते हैं, इन्हें वे उन लोगों के लिये छोड़ देते हैं, जो निर्यत्न तो हैं, पर बातों से अपने को बलवान् दिखाना चाहते हैं। योगी अपनी मानसिक स्थिति से चिक्चिड़ापन को भी निर्मूल करता है। वह समझ गया है कि यह शक्ति के नाश करने की मूर्खता है, जो कभी लाभ नहीं करती और सर्वदा हानि पहुँचाती है। अब किसी विचार योग्य बात पर विचार करना या कठिनाई का दमन करना होता है, तब तो वह गंभीर विचार में लग जाता है, परंतु चिक्चिड़ापन में कभी नहीं गिरता। वह अस्मत्तात् को शक्ति

और तनि की बर्बादी सम्भन्ध है, और इसे विरूपित मनुष्य के उपयोग सम्भन्ध है। वह अपनी प्रकृति और शक्तियों को इतना सम्भन्ध है कि वह झुंझलाहट में नहीं पड़ता। उसने शनैः-शनैः अपने को इस ब्रजा में बसा लिया है, और अपने शिष्यों को यह उपदेश देना है कि क्रोध और झुंझलाहट से छुटकारा पाना असली योग का प्रथम चरण है।

नीच वृत्तियों और मनोविकारों का दमन करना यद्यपि योगशास्त्र की दूसरी शाखाओं का काम है, पर इसका मीधा संबंध शिथिलीकरण के प्रश्न से है, क्योंकि यह दृष्ट बात है कि जो मनुष्य क्रोध और झुंझलाहट से पृथक् रहने का अभ्यस्त है, वह अनिच्छापूर्व मांसपेशियों के आकुंचन और नाड़ी की बर्बादी से परे है। क्रोध के आवेग में आए हुए मनुष्य की मांसपेशियाँ मस्तिष्क से निकली हुई अनिच्छापूर्व और प्रेरणाओं के कारण तनाव पर होती हैं। जो मनुष्य सर्वदा झुंझलाहट का लबादा ओढ़े रहता है, वह लगातार नाड़ियों के तनाव और मांसपेशियों के आकुंचन में रहता है। इसलिये वह श्रुत वेदान्त में आवेगा कि जब कोई इन निर्बलकारी मनोविकारों से छुटकारा पाना है, तब वह मांसपेशियों के आकुंचन से भी अधिकांश छुटकारा पा जाता है, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है। यदि आप इस बर्बादी की स्थिति से छुटकारा चाहते हैं, तो उन नीच मनोविकारों से दूर हजिए, जिनसे यह उत्पन्न हुई है।

इसके विपरीत शिविलीकरण के अभ्यास से, मांसपेशियों की तनाव की दशा के निवारण करने से इसका प्रभाव मन पर भी पड़ेगा और यह मन को स्वामयिक साम्य और विद्या में रक्खेगा। यह ऐसा निपट, जो दोनों ओर काम करता है।

शरीर के शिथिल करने की पहली शिष्टा जो योगी लोग अपने शिष्यों को देने हैं, आगे लिखी जाती है। उसके प्रारंभ करने के पहले

हम ध्याने शिष्यों के मन पर यह बात चंकिता कर दिया चाहते हैं कि "डील दो" यही शिथिलीकरण का मूल मंत्र है। यदि आप इन दोनों शब्दों के अर्थ को समझ जायेंगे और इनका अभ्यास करेंगे, तो आपको इस शिथिलीकरण के विषय में योगियों के प्रचार और अभ्यास का गूढ़ तथ्य अच्छी तरह से ग्रहण में आ जायगा। शरीर के शिथिल करने में नीचे निम्ना हुआ अभ्यास योगियों को बहुत प्यारा है। चित्त पद जाग्रो, पूरी तरह से शिथिल करो, प्रत्येक अवयवों को ढील दो। इसी प्रकार ढीले रहने पर अपने मन को सारे शरीर में गिरने से रोक की श्रृंगुलियों तक घूमने दो। ऐसा करने में आपको मालूम होगा कि कहीं-कहीं कुछ मांसपेशियाँ अब भी तनी हुई हैं, उन्हें भी ढील दो।

यदि आप इसको अच्छी तरह से करेंगे (अभ्यास में दिन-प्र-दिन वृद्धि होती जायगी) तो अंत में आपके शरीर की सब मांसपेशियाँ पूरी तरह से शिथिल हो जायेंगी और नाडियाँ पूरे विद्याम में हो जायेंगी। कुछ गहरी साँसें लो, और तब तक शांत और पूरी तरह से शिथिल पड़े रहो। एक यगल में घूम जाओ और फिर अच्छी तरह ढीले हो जाओ। फिर दूसरे यगल में घूमो पर शिथिल अच्छी तरह बने रहो। जैसा पढ़ने में यह आसान जान पड़ता है, वैसा करने में नहीं है, जैसा परीक्षा से आपको मालूम होगा। परंतु इससे अधीर मत होना। इसमें प्रयत्न करने जाओ और अंत में सफल हो जाओगे। जब शिथिल होकर पड़े रहो, तब यह कल्पना करो कि तुम नरम, मुलायम गादे पर पड़े हो और तुम्हारे शरीर और अवयव सीसा की भाँति भारी हैं। मन में इन शब्दों को ध्यानपूर्वक जपते जाओ कि "सीसे की भाँति भारी, सीसे की भाँति भारी", साथ-ही-साथ मुजाओ को उठाकर उनमें से तनाव निकालकर प्राण खींच लो कि जिससे वे अपने ही भार से बगल में गिर पड़ें। पहले यह बात बहुत मनुष्यों के लिये बर्

घटित होती है। वे अपनी भुजाओं को उन्हीं के भार से नहीं गिरने दे सकने, क्योंकि मांसपेशियों के अनिच्छापूर्व आकुंचन की आदत उनमें अबद-मी गई रहती है। जब भुजाओं पर अधिकार हो जाय, तब टोंगों पर पड़ते एक-एक करके फिर माथ-ही-माथ दोनों टोंगों पर प्रयोग करो। उन्हें भी अपने ही भार से गिर जाने दो और पूरा शिथिल रहने दो। प्रयोगों के बीच ३ विधाम कर लो, और इस कम-रन के करने समय उपयोगी मन बनो, क्योंकि भावना तो विधाम देने और माथ-ही-माथ मांसपेशी पर अधिकार करने की है। तब फिर को उठाओ और उसे भी अपने ही भार से गिर जाने दो। तब फिर पड़े पड़े यह कहना करो कि शरीर का गारा भार चारपाई या भूमि सहन कर रही है। इस बात पर तुम हँसोगे कि अब तुम लेंटे हो, तो शरीर के गारे भार को चारपाई या भूमि तो सहन ही कर रही है, पर तुम हाकती में हो। तुम्हें मालूम होगा कि तुम अपने शरीर के कुछ भार को बिम्बी-बिम्बी मांसपेशी को सानकर, तुम आप सहन करने के यत्न में हो—तुम अपने को ऊपर उठाए रहने के यत्न में हो। इसको बंद करो और भार सहन करने के कार्य को चारपाई को करने दो। तुम भी उठने ही मूर्ख हो, जितना वह बूढ़ी औरत थी, जो गार्दी में अपने घटके के छोर पर घिटी थी और गार्दी को चांगे करने में जले-जला देने के प्रयत्न में थी। अपने आदर्श के लिये मोते हुए बच्चे को देखो। वह अपने गारे भार को चारपाई पर पड़ा रहने देता है। इसमें यदि तुम्हें संदेह हो, तो जहाँ बच्चा सोता रहा हो, वहाँ बिगने को देखो, वहाँ बच्चे के शरीर के हवाच के बिन्दु मालूम हों—उसके लम्बे शरीर के हवाच। यदि इस पूरे शिथिलीकरण के भाव को न प्रत्यक्ष कर सको तो, इस बात से तुम्हें महादत्ता मिलेगा कि कहना करो कि तुम भीगे बच्चे की भीत टोके हो गए हो—सिर से पैर तक टोके हो गए हो—और बिना लम्बे लम्बाय का बच्चा के बच्चे हो। सोते हो



हम अपने शिष्यों के मन पर यह बात अंकित कर दिया चाहते हैं कि “डील दो” यही शिथिलीकरण का मूल मंत्र है। यदि आप इन दोनों शब्दों के अर्थ को समझ जायेंगे और इनका अभ्यास करेंगे, तो आपको इस शिथिलीकरण के विषय में योगियों के प्रचार और अभ्यास का गूढ़ तत्त्व अच्छी तरह से ग्रहण में आ जायगा।

शरीर के शिथिल करने में नीचे लिखा हुआ अभ्यास योगियों को बहुत प्यारा है। चित्त पद जाओ, पूरी तरह से शिथिल करो, प्रत्येक अणुओं को डील दो। इसी प्रकार ढोले रहने पर अपने मन को सारे शरीर से सिर से पैर की अँगुलियों तक घूमने दो। ऐसा करने में आपको मालूम होगा कि कहीं-कहीं कुछ मांसपेशियाँ अब भी तनी हुई हैं, उन्हें भी डील दो।

यदि आप इसको अच्छी तरह से करेंगे (अभ्यास से दिन-पर-दिन उत्पत्ति होती जायगी) तो अंत में आपके शरीर की सब मांसपेशियाँ पूरी तरह से शिथिल हो जावेंगी और मादिर्यो पूरे विश्राम में हो जावेंगी। कुछ गहरी साँसें लो, और तब तक शांत और पूरी तरह से शिथिल पड़े रहो। एक बगल में घूम जाओ और फिर अच्छी तरह ढीले हो जाओ। फिर दूसरे बगल में घूमो पर शिथिल अच्छी तरह बने रहो। जैसा पढ़ने में यह आसान जान पड़ता है, वैसा करने में नहीं है, जैसा परीक्षा से आपको मालूम होगा। परंतु इससे अधीर मत होना। इसमें प्रयत्न करते जाओ और अंत में सफल हो जाओगे। जब शिथिल होकर पड़े रहो, तब यह कल्पना करो कि (यम गहरे पर)  
पड़े हो और तुम्हारे शरीर और मन में इन शब्दों को ध्यानपूर्वक मारी, सीसे की मूर्ति मारी”, से तनाव निकालकर प्राण से बगल में गिर पड़ें।

घटित होता है। वे अपनी भुजाओं को उन्हीं के भार में नहीं गिरने दे सकते, क्योंकि मांसपेशियों के अनिच्छापूर्व आकुंचन की आदत उनमें बचपन से गढ़े रहती है। जब भुजाओं पर अधिकार हो जाय, तब दोनों पर पहले एक-एक करके फिर साथ-ही-साथ दोनों टोंगों पर प्रयोग करो। उन्हें भी अपने ही भार में गिर जाने दो और पूरा शिथिल रहने दो। प्रयोगों के बीच में विश्राम कर लो, और इस कसरत के करने समय उद्योगी मन धनो, क्योंकि भावना तो विश्राम देने और साथ-ही-साथ मांसपेशी पर अधिकार करने की है। तब फिर दो उदाहरण और उन्हे भी अपने ही भार में गिर जाने दो। तब फिर ऐसे-वैसे यह कल्पना करो कि शरीर का सारा भार चारपाई या भूमि सहन कर रहा है। इस बात पर तुम हँसोगे कि जब तुम खड़े हो, तो शरीर के सारे भार को चारपाई या भूमि तो सहन ही कर रही है, पर तुम शक्ति में हो। तुम्हें मालूम होगा कि तुम अपने शरीर के कुछ भार को किसी-किसी मांसपेशी को तानकर, तुम आप सहन करने के यत्न में हो—तुम अपने को ऊपर उठाए रहने के यत्न में हो। इसको बद करो और भार सहन करने के कार्य को चारपाई को करने दो। तुम भी उठने ही मूर्ख हो, जितना वह बूढ़ी औरत भी, जो गाड़ी में अपने बैठके के छोर पर बैठी भी और गाड़ी को आगे बढ़ने में उत्तेजना देने के प्रयत्न में थी। अपने आदर्श के लिये सोते हुए बच्चे को देखो। वह अपने सारे भार को चारपाई पर पड़ा रहने देता है। इसमें यदि तुम्हें संदेह हो, तो जहाँ बच्चा सोता रहा हो, वहाँ विस्तर को देखो, वहाँ अपने के शरीर के दबाव के मालूम दोगे—उसके नन्हे शरीर के दबाव के भाव को न ग्रहण कर मिलेगी कि कल्पना करो कि मे पैर तक ढीले हो रहे हो। थोड़े ही

अभ्यास से तुम्हें बहुत जल्द आश्चर्य मालूम होगा और तुम इस विधाम की कमरत से बहुत ताज़ा होकर उठोगे और करने जानों को अच्छी तरह से करने की सामर्थ्य तुममें प्रतीय होगी ।

शिथिलीकरण के विषय में और भी अनेक कथारें हैं, जिन्हें हठयोगी अभ्यास करते और शिष्यों को सिखाते हैं, नीचे विषो हुई कथारें उनमें सबसे अच्छी हैं—

( १ ) हाथ में से सब प्राण लींच लो, मांसपेशियों को ढीला छोड़ दो, जिससे हाथ ढाले पड़कर निर्वीज की भाँति कड़ाई से झुजने लगें । कड़ाई से इसे भागे पीछे दिशाओं । तब दूसरे हाथ पर उसी तरह प्रयोग करो । फिर दोनों हाथों पर साथ ही प्रयोग करो । थोड़े अभ्यास से डोंक सावन्तर निश्च साधनी ।

( २ ) यह पहली की अपेक्षा अधिक कठिन है । इसमें अँगुलियों की शिथिल की छोड़ा करना होगा है और इसके साँड़ों से दिशाओं होगा है, पहले एक हाथ की अँगुलियों पर परीक्षा करो, तब दूसरे हाथ की और फिर दोनों हाथों की ।

( ३ ) भुजाओं में से सब प्राण लींच लो और उन्हें खाली से बीजा बदलने दो । तब शरीर को एक क्षण से दूसरी प्रकाश की भुजाओं त्रिगुण भुजाएँ भी अँगुलियों की दिशाओं कर्तों को तब के प्रकाश शरीर की शक्ति के कारण झुके, भुजाओं में लींच भी प्रकाश अंगारवा साथ । पहले एक भुजा, तब दूसरी और फिर दोनों । इस अभ्यास को शरीर को अनेकों दिशा में गुना गुना कर कर करने दो । त्रिगुण भुजाएँ हीची बदलनी हैं । यदि आप अँगुलियों की दिशाओं कर्तों पर प्रकाश करेंगे, तो आपकी इच्छा साधनी हो जायगी ।

के भाकुचन को रोको । कलाई को ढीला करके मुलाघो । पहले एक को, तब दूसरी को और फिर दोनों को ।

( १ ) पैर को पूरी तरह से ढीला करके घुड़ी से मुलाघो । इसमें थोड़े समय की आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि पैर को हिलानेवाली मांसपेशियाँ थोड़ी बहुत धाकुचित रहती हैं । परंतु लम्बे का पैर, जब उसका वह व्यवहार नहीं करता रहता है, तब जल्दी तरह ढीला रहता है । पहले एक पैर, तब दूसरा और फिर दोनों ।

( २ ) टाँग को, उसमें का सब मांस खींचकर, ढीला करो और उंगे घुड़नों से छटकने दो । तब उंगे मुलाघो और दिखाओ । पहले एक टाँग तब दूसरी ।

( ३ ) किन्नी गढ़े, तिपाई या कहीं किताब पर लड़े हो, और एक टाँग को ढीला कर ऊँच से छटकने और मूछने दो । पहले एक टाँग और तब दूसरी ।

( ४ ) भुजाओं को सीधा मिर के ऊपर उठाओ और तब उनमें से सब मांस खींचकर उन्हें अपने ही भार से जगजों में गिर जाने दो ।

( ५ ) घुटने को अपने बागें जहाँ तक ऊँचा उठा सकते हो, उठाओ और तब उनमें के सब मांस को खींचकर उसे अपने ही भार से गिर जाने दो ।

( ६ ) गिर को ढीला करो और उसे बागें गिर जाने दो और तब हाँस में शक्ति देकर उसे मुलाघो, तब एक कुर्सी पर सीधे छटककर बैठो, गिर को ढीला करो और उसे सीधे छटक जाने दो । जो ही वसमें या हाल नीच जायें, लो हो वह किन्नी और छटक जायगा । इसकी सही आधुन्य हाल करने के बिना किन्नी हीने हुए मनुष्य का शरीर बने, किन्नी ही निरा के करीबन हो जाना है और हीना

पड़ जाता है तथा गर्दन के आकुंचन को बंद कर देता है, त्यों ही अपने गिर को आगे गिर जाने देता है ।

( ११ ) कंधों और छाती की मांसपेशियों को ढीली कर दो, जिससे कि छाती का ऊपरी भाग ढीला होकर आगे की ओर गिर जाय ।

( १२ ) कुर्मी पर बैठकर कमर की मांसपेशियों को ढीला करो, जिससे शरीर का ऊपरी भाग आगे को उस प्रकार गिर जायगा, जैसे उस लड़के का शरीर गिर जाता है, जो कुर्मी ही पर बैठे-बैठे सो गया हो ।

( १३ ) जो मनुष्य इन कसरतों को यहाँ तक निश्चय कर ले, कि यदि चाहे, तो अपने सारे शरीर को गर्दन से लेकर घुटनों तक ढीला कर सकता है; तब वह भूमि पर डेर-सा गिर जायगा । यह एक बड़ा भारी गुण, अकस्मात् गिर जाने की दशा में है । इस सारे शरीर को ढीला कर देने का अभ्यास मनुष्य को खोद से बचाने में बड़ा काम देगा । तुम प्रयास करोगे कि जब छोटा बच्चा गिरता है, तो वह इसी प्रकार ढीला देना है, जिसमें उसे बड़े मनुष्यों की अपेक्षा, जिनकी मोँच आ जाता है या जिनके अवयव टूट जाते हैं, बहुत ही कम खोटा भाती है । यही दृश्य नशे में मत्तवाले कुपु मनुष्यों में देखने में आता है, जिनका वर मांसपेशियों पर नहीं रहता, इसलिये मांसपेशियों ढीली हो जाया करती हैं । जब ये गिरते हैं, तब मोँस की डेर-सा गिर पड़ते हैं और बहुत कम खोद गते हैं ।

इन कसरतों के अभ्यास में प्रत्येक को कई बार कर लो, तब दूसरी को शुरू करो । ये कमरतें बहुत बढाई जा सकती हैं और कई प्रकार की तथा शिष्य की बुद्धि के अनुसार भी बनाई जा सकती हैं । अगर चाहो तो तुम्हीं अपनी नई कमरत रच लो, पर ऊपर दी हुई बातों का ध्यान रखना ।

त्रिभिन्नोक्तय के अभ्यास करने से शरीर को अधिकार में लाने

और विधाम करने का अनुभव होता है, जो एक बड़ी लाभदायक बात है। जब योगियों के शिथिलीकरण विचार का इस्तेमाल करने लगे, तब "विधाम है शक्ति" की भावना किए रहो। यह अत्यंत धकी हुई नाड़ियों को बहुत लाम पहुँचाता है, यह शरीर की उस जकड़न को छुड़ाने का उपाय है, जो एक ही समुदाय की मांसपेशियों को अपनी जाँविका के लिये काम में लाने रहने से पैदा हो जाती है और इष्टानुसार विधाम करने के द्वारा थोड़े ही अर्थ में जीवत-लाभ करने का सरल उपाय है। पूर्वीय लोग इस शिथिलीकरण के विज्ञान को प्रायः जानते हैं और इसका व्यवहार प्रतिदिन के जीवन में करते हैं। वे ऐसी-ऐसी यात्रा पर चले जाते हैं, जिससे पश्चिमी लोग भयभीत हो जावेंगे। वे लोग बहुत मील चलकर एक जगह ठहर जाते हैं; वहाँ वे छोट जाते हैं; प्रायः मांसपेशियों को ढीला कर देते हैं और सब इष्टानुवर्ती मांसपेशियों से प्राण खींच लेते हैं, जिससे मिर से पैर तक शरीर ढीला और प्रकट निर्जीव-सा हो जाता है। यदि संभव होता है, तो थोड़ी भी छे छेते हैं, यदि नहीं तो जागते ही रहते हैं, पर मांसपेशियों को ऊपर लिये अनुसार बना लेते हैं। इस प्रकार का एक घंटे का विधाम सामान्य मनुष्यों के एक शक्ति के विधाम के बराबर या उससे अधिक होता है। वे फिर ताज़े होकर नए जीवन और नई शक्ति के साथ अपनी यात्रा शुरू करते हैं। नमाम धूमनेवाले शिष्ट और जानिये इस ज्ञान को प्राप्त किए होती हैं। यह स्वाभाविक रीति से अमेरिकन, इंडियन, अरब, आज़िवा के बहरी और सारे संसार के बहरीयों में पाया जाता है। सम्य मनुष्य ने इस गुण को लुप्त हो जाने दिया है, क्योंकि जब यह पैदा तंत्री यात्रा नहीं करता; परंतु यदि सम्य मनुष्य इस गुण को फिर भी प्राप्त कर लेता, तो इसके काम के जीवन की बचावट दूर होने में बहुत कुछ सहायता मिल जाता।

## थँगराई लेना

थँगराई लेना विधाम करने का दूसरा तरीका है, जिसे योगी लोग काम में लाते हैं। पहली दृष्टि में तो यह शिभिजीकरण का उकटा मान्य होता है; परंतु वास्तव में यह भी उसी का भाई है, क्योंकि यह उन मांसपेशियों से तनाव र्थापित होता है, जो आदत ही से आकुंचित रहा करते हैं, और उनके द्वारा शरीर-यंत्र के सब भागों में प्राण भेजकर प्राणसाम्य कर देता है, जिससे सारे शरीर को लाभ पहुँचना है। प्रकृति हमें जमुहाई और थँगराई लेने को उस समय विपश कर देती है, जब हम थक जाते हैं। हमको प्रकृति की कृपा से पाठ सीखना चाहिए। हमको इच्छापूर्वक और अनिच्छापूर्वक थँगराई लेना सीखना चाहिए। चाप गितभा सामान इसे प्रभाव करते हैं, उनका आसान यह नहीं है, इससे पूरा लाभ उठाने के पहले आपको इसका अभ्यास करना होगा।

शिभिजीकरण की कसरतों को सभी क्रम से कीजिए, जिस क्रम से इस किताब में दी गई है; परंतु प्रत्येक भाग को धीजा करने के स्थान पर उन्ने तान दो। पाँच से शुरू करो और ढोंगों तक कर जाओ, और फिर भुजाओं और सिर तक करो। अनेक रीतियों से तानो या फैलाओ, अपनी ढोंगों, पैरों, भुजाओं, हाथों, सिर और शरीर को इस प्रकार तानो और मढ़ो जैसा तानने और फैलाने से पूरा फैलाव प्राप्त होने की तुम्हें आशा हो। जमुहाई लेने से भी मत हरो; यह भी एक प्रकार का तनाव ही है। तानने से तुम्हें मांसपेशियों को फैलाना और आकुंचन करना होगा; परंतु विधाम और मुग बाद के विज्ञाप में आवेगा। अपने मन से "ढोल देने" की भावना को रखो रखो, न कि मांसपेशियों के प्रत्यक्ष का प्रभाव करो। हम तनाव का प्रसारण की कसरतें नहीं दे सकते, क्योंकि प्रसारण की इतनी रीति नहीं उसके सामने है कि उसके उदाहरण दिए जाने

को आवश्यकता ही नहीं है। उन्हे ठीक विधामुदायक प्रसारण की भावना को राह देने दो और प्रकृति उसे बतला देगी कि क्या करना होगा। तो भी यहाँ एक माध्यम शिथिल बतला दी जाती है। भूमि पर छड़े हो, अपनी टाँगों को दूर-दूर फैलाए रहो और अपनी भुजाओं को, अपने सिर के ऊपर, फैलाकर सीधी रखो। तब पैर की उँगलियों पर उठो और अपने शरीर को शनैः-शनैः इस प्रकार तानो कि मानो छत को छूना चाहते हो। यह बहुत ही सरल कसरत है, पर आश्चर्यजनक रीति से ताज़गी देने-वाली है।

प्रसारण या तनाव का एक भेद इस प्रकार से भी प्राप्त हो सकता है कि अपने शरीर को ढीला करके चारो ओर से खूब हिला दो, शरीर के इतने अधिक भाग हिलें, जितने तुम हिला सकते हो। स्प्रूज़ाउंडलैंड कुत्ता जब पानी में से बाहर निकलता है, तो जिस तरह पानी झाड़ने के लिये अपने बदन को हिलाता है, उसे देखकर समझ जाइए कि हमारा क्या अभिप्राय है।

शिथिल करने की ये सब तरकीबें, यदि उचित रीति से शुरू और समाप्त की जायें, तो अभ्यास करनेवाले को नई शक्ति दे देंगी और अपने काम को करने के लिये-बहु प्तिर उतारू हो जायगा। उसको पैसा ही मालूम होगा, जैसा थकावट के बाद भरनींद सोने और उठकर मल-मलकर स्नान करने से मालूम होता है।

**मन के शिथिल करने का अभ्यास**

इस अभ्यास की समाप्त करने के पहले मन के शिथिल करने की कसरत दे देना भी अच्छा होगा। शरीर के शिथिल करने का प्रभाव मन पर पड़ता है और उन्हे विधाम देता है; परंतु मन के शिथिल करने का भी प्रभाव शरीर पर पड़ता है और उन्हे विधाम देता है। इसलिये यह अभ्यास उस मनुष्य की आवश्यकता को पूरी कर सकता



है, जिसको इस अभ्यास में पहले लिखी हुई बातों से विधाम में संतोष न मिला हो ।

सुषुप्ताव शरीर को ढीला करके सुखासन में बैठ जाओ और अपने मन को बाहरी चीजों और झ्यालात से हटा लो; क्योंकि इसमें भी मानसिक बल व्यय होता रहता है । अपने ध्यान को भीतर घुसाओ आत्मा पर लगा दो । ऐसा झ्याल करो कि तुम शरीर से विच्छिन्न परे हो और इन्ने, बिना अपने व्यक्तित्व की कृपे हुए खड़े रह सको हो । तुम्हें एक आनंदमय विधाम और शांति तथा संतोष का अनुभव होगा । ध्यान को पार्थिव शरीर से हटाकर ऊँचे "ब्रह्म" में, जो असली तुम हो, जमाना आवश्यक है । अपने चारों ओर जो विस्तृत सृष्टि है, करोड़ों सूर्य अपने पृथ्वी के मार्गद ग्रहों से घिरे हुए हैं और कहीं-कहीं जो इससे भी बहुत बड़े हैं, उनका ध्यान करो । देश और काल के विस्तार की ओर मन की भावना फैलाओ, जीवन को इन सारी दुनियाओं में फैला हुआ देखो, और तब इस पृथ्वी और अपनी स्थिति पर विचार करो कि यह कैसा भूजि-कण के ऊपर एक कीट की भाँति है । तब अपने विचार ही में और ऊपर उठो और समझो कि यद्यपि तुम उस महत् का एक कण हो, तो भी तुम उस जीवन का एक अंग हो और उस आत्मा की एक किरण हो जो सबमें व्याप रहा है; सोचो कि तुम अमर, निर्य और अविनाशो हो, उस संपूर्ण का एक आवश्यक अंग हो, और एक ऐसा अंग हो कि जिसके बिना संपूर्ण रह ही नहीं सकता, संपूर्ण की बनावट का पूरा करनेवाला अंग तुम्हीं हो । ऐसा अनुभव करो कि तुम उस महत् जीवन के सबसे अग्रगण्य रहते हो, संपूर्ण का जीवन तुममें स्फुरता कर रहा है; महत् जीवन का सारा महामागर तुमको अपने कर्तव्य पर इलाराप रहा है । और तब जागकर अपने पार्थिव जीवन में जाओ, तब तुम्हें मात्स होगा कि तुम्हारा शरीर ताजा हो गया है, तुम्हारा मन शांत

और बलवान हो गया है ; और जब तुम उस काम में बिपट जाओगे, जिसको बहुत दिन में टाँपने वाले कामें हो । तुम मानस के ऊपरी कोशों में प्रयत्न करने से काम टटाएँ और बलवान् हो गए हो ।

### राग-भर का विग्राम

काम करने वाले राग-भर का विग्राम या जाने की तरकीब, उड़ने-उड़ने विग्राम या जाने की तरकीब, जैसा कि हमारे मनुष्यक मित्र गिल्लों में से एक ने हमें कहा है—नीचे लिखी जाती है—

नीचे खड़े हो, गिर ऊँचा और कंधे पीछे को दबे हों, तुम्हारी भुजाएँ बाह्य में दीर्घा खटकनी हों । सब अपनी एड़ियों को धीरे-धीरे भूमि से उठाओ, शरीर-शरीर अपने भार को पीर के पंजों पर रखने जाओ, और साथ-ही-साथ अपनी भुजाओं को बाह्य से ऊपर उठाने जाओ तब तक कि वे गिर के फैले हुए पंखों की भाँति न हो जायें । क्यों-क्यों भार पंजों पर पड़ता जाय और भुजाएँ फैलती जायें, क्यों-क्यों शरीर भीतर खींचते जाओ और तुम्हें उड़ने की भाँति मालूम होने लगेगा । तब धीरे-धीरे शरीर छोड़ते जाओ और शरीर का भार फिर एड़ियों पर लाते जाओ और भुजाओं को नीचे बाह्य में लाते जाओ । यदि ऐसा करना तुम्हें अच्छा लगे, तो इसे कई बार करो । पंजों पर उठने और भुजाओं को फैलाने से एक प्रकार के हलके-पन और स्वतंत्रता का अनुभव होगा, जिसको समझने के लिये इसका अभ्यास ही करना पड़ेगा ।

# तेईसवाँ अध्याय

## शारीरिक व्यायाम का लाभ

मनुष्य को प्रारंभिक दश में शारीरिक व्यायाम की शिक्षा की आवश्यकता न थी—बच्ची और नवपुत्रों को, जो स्वाभाविक रूप के हैं, अथ भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के जीवन की प्रारंभिक दश उसको अनेक प्रकार की पुष्कल क्रियाओं में व्यस्त रखती थी, उसे बाहर काम करना पड़ता था, और व्यायाम की उत्तम-से-उत्तम दशाएँ प्राप्त हो जाती थीं। उसे अपने लिये भोजन ढूँढ़ना, उसे तैयार करना, अपनी प्रसिल उत्पन्न करना, अपना घर बनाना, ईंधन जुटाना और सहस्रों ऐसे काम करने पड़ते थे, जो उसके सादे जीवन के सुख के लिये आवश्यक थे। परन्तु मनुष्य ज्यों-ज्यों समय होते लगा, ज्यों-ज्यों अपने कामों के भाग दूसरों के हवाले करने लगा, और स्वयं किसी दूसरे प्रकार के काम में लग गया, अंत में अथ ऐसा हो गया है कि हममें से बहुत लोग वास्तव में कुछ भी शारीरिक काम नहीं करते, और कुछ लोगों को एक ही प्रकार का कठिन परिश्रम करना पड़ता है। दोनों को अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना होता है।

शारीरिक परिश्रम, बिना मानसिक क्रियाओं के मनुष्य के जीवन को ठुठना कर देता है। वैसे ही बिना शारीरिक परिश्रम के केवल मानसिक क्रियाएँ भी उसे ठुठना बना देती हैं। प्रकृति समता चाहती है—सुखकर मध्यवर्ती पथ चाहती है। स्वाभाविक साधारण जीवन के लिये मनुष्य की शारीरिक और मानसिक सब शक्तियों का व्यवहार में आ जाना बहुत आवश्यक है; और वह जो अपने जीवन को इस प्रकार से नियमित करता है कि

शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम हुआ करते हैं, वही सबसे अधिक स्वस्थ और सुखी होता है।

बच्चों को आवश्यक व्यायाम उनके खेलों में मिल जाता है, और उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उन्हें खेल-कूद में लग जाने की प्रेरणा करती है। बहुत मनुष्य अपने मानसिक परिश्रम के बाद खेल-कूद भी अच्छी तरह कर लिया करते हैं। मनुष्य खेल जो अब भी-भीरे प्रकार पा रहे हैं, उनसे विदित होता है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति अभी मरी नहीं है।

योगियों का यह विश्वास है कि खेल की प्रवृत्ति—यह वेदना कि कपूरत चादिये—वही प्रवृत्ति है, जो मनुष्य से दधिक जीविका के लिये—परिश्रम कराती है—यह क्रिया के लिये—भिन्न-भिन्न क्रियाओं के लिये—प्रवृत्ति की प्रेरणा है। स्वाभाविक स्वस्थ शरीर बही है, जो अपने सब अंगों में समान पुष्टि पाए हुए है, और कोई अंग उचित पोषण नहीं पाता, जब तक उस अंग द्वारा मनुष्य परिश्रम न किया जाए। जिस अवयव से कम काम किया जाता है, वह माधुर्य पोषण की अपेक्षा कम पोषण पाता है, और समय पाकर निबंछ हो जाता है। प्रवृत्ति ने मनुष्य के शरीर के प्रत्येक अंग और भाग के लिये स्वाभाविक उद्यमों और गेहों के द्वारा व्यायाम नियत किया है। स्वाभाविक उद्यम से हमारा अभिप्राय उत उद्यम से नहीं है, जो शरीर के बेबल बिना विरोध अंग से लिया जाता है, क्योंकि जो मनुष्य बेबल एक ही प्रकार का कार्य करता है, वह बेबल थोड़ी-सी मांसपेशियों से अधिक काम लेता है और दूसरी अन्य मांसपेशियाँ जबर जाना हैं; उसे भी व्यायाम की जगती ही आवश्यकता है जिसकी मरु में काम देकर दिन-भर काम करनेवाले को होती है। अंतर इतना है कि पहले को दूसरे की अपेक्षा बाहर काम करने से लाभ होता है।

हम वर्तमान शारीरिक शिक्षा को खुले मैदान के उद्यम और खेल के स्थान पर बहुत ही हीन स्थानापन्न समझते हैं। इनमें कोई मनोरंजकता नहीं होती और जिस प्रकार उद्यम और खेल में मन प्रसन्नता-पूर्वक लगकर काम करता है, वैसा इसमें नहीं करता। परंतु किसी प्रकार का व्यायाम उसके अभाव की अपेक्षा अच्छा है। परंतु हम उस व्यायाम के बिल्कुल ही विरोधी हैं, जिससे कुछ ही मांसपेशियों की वृद्धि होती है और पहलवानी के खेल किए जाते हैं। यह सब अस्वाभाविक बात है। शारीरिक शिक्षा की पूर्ण-पूर्ण पद्धति यह है, जो सारे शरीर का यथोचित विकास करती है, सब मांसपेशियों से काम लेती है—सब भागों को पुष्ट करती है, जो व्यायाम में वधासाध्य अधिक-से-अधिक मन-लगाने योग्य करे और जो अपने शिष्यों को खुले मैदान में रखे।

योगी लोग अपने प्रतिदिन के जीवन में अपने कामों को धार करते हैं और इस तरह बहुत-सा व्यायाम पा जाते हैं। वे जंगलों में बहुत दूर तक घूम-फिर भी आते हैं ( ये लोग जंगल व पहाड़ों की मैदान और बड़े-बड़े शहरों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न करते हैं )। अपने ध्यान और अध्ययन के बीच-बीच में वे अनेक प्रकार के हलके व्यायाम भी कर लिया करते हैं। इनके व्यायाम में कोई नूतन बात नहीं है। इनके व्यायाम में मूल और प्रधान अंतर अन्य व्यायामों से यह है कि ये शरीर की गतियों के साथ मन का भी प्रयोग करते हैं। जिस प्रकार उद्यम और खेल में जी खगने से मन का प्रयोग होता है, उसी तरह योगी अपने व्यायाम में भी मन लगाता है। यह अपने व्यायाम में जी लगाता है और अपनी आकांक्षा के प्रयत्न से संभावित भाग में प्राप्ति की अधिक मात्रा भेजता है। इस तरह उसे कई गुना अधिक लाभ होता है, और कतिपय मिनटों के व्यायाम से उसे उस व्यायाम का दशगुना लाभ होता है, जो यों ही खारवाही से बिना भी खगाए किया जाता है।

इसिधुन भाग में जी लगाने की क्रिया आसानी से साथी जा सकती है। केवल इतना ही आवश्यक है कि इस बात पर पक्का विश्वास कर लिया जाय कि यह हो जायगा; हम तरह संदेह के कारण जो भीतरी बाधाएँ पड़ती हैं, वे न पड़ेंगी। सब केवल मन को आशा हो कि उस भाग में प्राण भेजे और रुधिर-संचार को बढ़ावे। मन हमको अनिच्छापूर्वक तो कुछ-न-कुछ करता ही है, जब शरीर के किसी भाग पर ध्यान आकर्षित होता है; परन्तु आकांक्षा का प्रयोग करने से प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है। अब आकांक्षा के प्रयोग करने में भी यह आवश्यक नहीं है कि भौहें सिकोड़ी जायँ, मुट्ठी बाँधी जायँ, और प्रबल शारीरिक प्रयत्न किया जाय। बहुत सरल उपाय अभीष्ट फल को प्राप्त करने का यह है कि जिस काम को हम चाहते हैं, उसके लिये पूरी आशा और भरोसा करें कि यह अवश्य हो जाय। यही पूरी आशा और भरोसा आकांक्षा की प्रभावशाली आशा है—हमका प्रयोग कीजिए और बात सिद्ध है।

बड़ाहरण के लिये यदि आप अपनी कलाई में अधिक प्राण भेजा चाहते हैं और वहाँ का रुधिर-संचार बढ़ाया चाहते हैं और हमके द्वारा उसकी पुष्टि की उद्यमि किया चाहते हैं, तो केवल भुजा को बटोर लीजिए और सब शनैः-शनैः उसे फैलाने लगिए, अपनी हडि या अपने ध्यान को कलाई पर जमाए रहिए और अपने अभीष्ट का ध्यान किए रहिए। हमको कई बार कीजिए, तो आपको आलूम होगा कि आपने कलाई की कोई अण्डों समान भरी भीति कर ली है, यद्यपि आपने उसमें कोई भी प्रबल गति नहीं कराई और न किसी समान के भीड़ार आदि का व्यवहार किया। हम ताकत का प्रयोग शरीर के कई अंगों पर कीजिए; उन अंगों में कोई भी गति कराते रहिए, जिसमें आपका ध्यान बहाँ लगा रहे, तो आपको बहुत जल्द भुजा आलूम हो जायगी और जब कभी आप किसी

साधारण सरल व्यायाम को करने लगेंगे, तो यह बात स्वयं आप-ही-आप होने लगेगी। संक्षेप यह है कि जब आप कोई व्यायाम करने लगें, तो इन बातों पर ध्यान जमाए रहें कि आप क्या और किसलिये कर रहे हैं; तब आपको पूरा फल बहुत जल्द मिल जायगा। अपने व्यायाम को जीवित और मनोरंजक बनाए रहिए; और लापरवाही से बिना मन लगाए छंगों को कसरत करने से बाज़ आइए। व्यायाम में कोई मन-लगाव की बात मिला दीजिए और तब उसका उपयोग कीजिए। इस प्रकार मन और शरीर दोनों लाभ उठाते हैं। व्यायाम समाप्त होने पर आपको ऐसी समतमाहट और प्रसन्नता मालूम होगी, जैसी बहुत दिनों से न मालूम हुई होगी।

अगले अध्याय में हम थोड़ी साधारण कसरतें देते हैं, जो, यदि उनका अभ्यास किया जाय तो, शरीर के छंगों के लिये सब आवश्यक गतियों को देंगी; प्रत्येक भाग काम करेगा, प्रत्येक अवयव शक्ति ग्रहण करेगा; और आप केवल अच्छी तरह से विकारा ही न पावेंगे, किंतु लिपाही की भाँति सीधे खड़े हो जावेंगे और पहचान की भाँति शुभ्र और कुर्तले बन जावेंगे। इन कसरतों के कुछ भाग तो योगियों के आसन और मुद्राओं से लिए गए हैं और कुछ भाग योरप और अमेरिका की शारीरिक शिक्षा से लिए गए हैं, जो वहाँ की पलटनों में व्यवहृत होते हैं। वे पलटनों की शारीरिक शिक्षावाले पूर्वीय कसरतों का भी अध्ययन किए हुए हैं और उनमें से ऐसे भाग ले लिए हैं जो उनके उद्देश्य के अनुकूल हैं; और इन लोगों ने कसरतों की एक ऐसी माला बना ली है, जो करने में तो बहुत सारी सरल है, परंतु परिणाम में बहुत आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करनेवाली है। इस पद्धति की सदागी और सरलता के कारण आप इसका निरादर न करें। इसी की व्यापक आव-

स्पष्टता थी, इसके अनावश्यक अंग निकाल दाले गए हैं। इनके विषय में करने मन को स्थिर करने के पहले इनकी परीक्षा तो कर लीजिए। वे धारको शरीर से जया बना देंगे, यदि धार उचित समय और उचित अंश इनके अभ्यास में लावावेंगे।

---



# चौवीसवाँ अध्याय

## योगियों के कुछ व्यायाम

इन कमरतों को आपको बतलाने के पहले हम सिर आपके मन पर इस बात को अंकित करना चाहते हैं कि बिना जी लगाए कसरत अपना फल नहीं देती। आपको अपनी कसरत में जी लगाने का प्रबंध करना होगा कि उसमें कुछ मन भी लगा रहे। आपको उस कमरत को पसंद करना पड़ेगा और इस बात पर ध्यान करना पड़ेगा कि इसका मतलब क्या है। इस सलाह का अनुसरण करने से आपको इस काम में कई गुना अधिक लाभ होगा।

खड़े होने की स्थिति

प्रत्येक कसरत को स्वाभाविक रीति से खड़े होकर तुम्हें शुरू करना चाहिए अर्थात् तुम्हारी पंखियाँ एकत्र रहें, सिर ऊँचा, अर्धे सामने, कंधे पीछे, छाती फैली, पेट थोड़ा भीतर खिंचा और भुजाएँ बगल पर लटकती हों।

( १ ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को अपने समान सीधा फैलाओ, ऊँचाई कंधों के समान रहे, हाथों की हथेलियाँ एक दूसरी को छूती रहें।  
( २ ) हाथों को झोका देकर पीछे फेंको जब तक हाथ कंधों से सीधे बगलों के सामने, या उससे भी कुछ पीछे, यदि आप्तानी से जा सकें, न चले जायें। तेज़ी से पठनी स्थिति में लाओ, और इसे कई बार करो। भुजाओं को चढ़ी तेज़ी से झोका देना चाहिए और चैतन्यता और जीवट के साथ मनमने होकर काम मत करो, किंतु जी लगाकर खेलो। यह कसरत छाती, कंधों की मांसपेशियों

यदि वे विभाग करने में सही मासदायक हैं । हाथों को झोका देकर पीछे से जाने ॥ यदि गुप्त पैर के पंजों पर हो जाओ और आगे जाने में फिर जड़ियों पर आ जाओ तो और भी अच्छा होगा । बार-बार की आगे पीछेवाली गति मेहनत से बहुत ही शक्ति लाजयुक्त होती चाहिए ।

### ( २ ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को कंधों से सीधा बगल की ओर फैलाओ, हाथ खुले रहें । भुजाओं को इसी तरह फैलाए ही हुए एक वृत्त में ( जो बहुत बड़ा न हो ) घुमाओ, भुजाओं को जहाँ तक 'भव' हो पीछे ही की ओर दबाए रहो, और हाथ वृत्ताकार घूमते समय छाती की छाड़न के सामने न आने पावें । वृत्त बनाना जारी रखो जब तक मान लो कि १२ न हो जायें । यदि योगियों के शरीरों में पूरी शक्ति हो जाये और बहुत-से वृत्तों तक इसे रोके रहो तो और भी अच्छा होगा । इस कसरत से छाती, कंधे और पीठ विकसित होते हैं ।

### ( २ ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, प्रत्येक हाथ की कनिष्ठिका और अंगुलियों एक दूसरी को छूती रहें, इधे लियों ऊपर की ओर हों । ( २ ) तब छोटी अंगुलियों को छूते ही रहे हुए हाथों को टेढ़ा वृत्ताकार गति से सीधा ऊपर लाओ, जब तक दोनों हाथों की अंगुलियों के छोर मिर के ऊपरी भाग को खजाट के पिछवाड़े न छुएँ, अंगुलियों की पीठ छुती रहें, ज्यों-ज्यों गति हो त्यों-त्यों कुहनियों बाहर की ओर होती जायें ( जब अंगुलियों सिर को छुएँ, अंगूठे पीछे की ओर दृष्टि करते रहें ), और अंत में बगलों की ओर हो जायें । ( ३ ) अंगुलियों को चण-भर मिर का पीछा हुए रहने दो और तब कुहनियों को पीछे खींचकर ( जिससे कंधे भी पीछे को दब जाते हैं )

मुनाघों की टेढ़ी गति में पीछे की ओर दबाओ जब तक वे पूरी लंबी होकर गढ़े होने की स्थिति में बालों में न आ जायें ।

( ४ ) अभ्यास

( १ ) मुनाघों को कंधे से बालों की ओर सीधा फैलाओ । ( २ ) तब मुपलियों को उसी स्थिति में फैलाए हुए मुनाघों को कुहनियों पर टेढ़ा करो और कलाईयों को घुंत्ताकार गति से ऊपर लाओ जब तक फैली हुई घँगुलियों के छोर कंधों के ऊपरी भाग को छू लें । ( ३ ) घँगुलियों को इसी अंतिम स्थिति में रखते हुए कुहनियों को मोड़ा देकर सामने की ओर लाओ कि वे एक दूसरी को छू लें या छूने के निकट हो जायें ( थोड़े अभ्यास से ये छूने लगेंगी ) । ( ४ ) तब घँगुलियों को उसी स्थिति में रखते हुए कुहनियों को इतना पीछे ले जाओ जितना ले जा सको । ( थोड़े अभ्यास से ये बहुत पीछे जाने लगेंगी ) ( ५ ) कुहनियों को कई बार आगे पीछे ले जाओ ।

( ५ ) अभ्यास

( १ ) हाथों को नितंब पर रखो, अँगूठे पीछे की ओर, कुहनियाँ पीछे की दबी हों । ( २ ) शरीर को नितंब से आगे की ओर टेढ़ा करो जहाँ तक तुम टेढ़ा कर सको, पर छाती को चौड़ा किए और कंधों को पीछे ही दबाए रहो । ( ३ ) शरीर को पड़ले खड़े होने की स्थिति में लाओ । हाथ नितंब ही पर रहे, और तब पीछे झुको । इन गतियों में घुटनों को टेढ़ा न करना चाहिए, और गति धीरे-धीरे करनी चाहिए । ( ४ ) तब हाथ नितंबों ही पर रखते दाहनी ओर धीरे-धीरे झुको, पड़ियाँ भूमि पर दृढ़ बनी रहें, घुटने टेढ़े न होने पावें, और शरीर छेड़ने न पावे । ( ५ ) पड़की स्थिति पर आओ और तब शरीर को धीरे-धीरे बाईं ओर झुकाओ, पिछली गति में दो हुई सूचनाओं का अनुसरण किए रहो । यह कमरस कुछ पकावट लाने वाली है, और पड़ले इसमें अतिशय मत्त करना धीरे-धीरे आगे

बना । ( ६ ) हाथ उन्नी तरह नितंबों ही पर रखे हुए शरीर के ऊपरी भाग को, कमर से ऊपर चारों ओर वृत्ताकार घुमाओ, जिसमें मिर मचमे बड़ा वृत्त बनावे । पर घिसकने और घुटने टेढ़े न होने पावें ।

### ( ६ ) अभ्यास

( १ ) मोंछे खड़े होकर, भुजाओं को सीधा मिर के ऊपर उठाओ, हाथ खुले रहें और जब भुजाएँ सिर के ठीक ऊपर चली जायँ तब घँगूड़े एक दूसरे को छूते रहें, इधेलियों आते की ओर रहें । ( २ ) तब बिना घुटनों को टेढ़ा किए, शरीर को कमर से नीचे झुकाओ और फैली हुई घँगुलियों के छोरों से भूमि को छूने का यत्न करो यदि तुम पहले इसे न कर सको तो महाँ तक घन सके यत्न करो और शीघ्र तुम इसे ठीक करने लगोगे—परन्तु स्मरण रहे कि न घुटने टेढ़े होंगे पावें और न भुजाएँ । ( ३ ) उठो और इसे कई बार करो ।

### ( ७ ) अभ्यास

( १ ) मोंछे खड़े होकर और हाथों को नितंबों पर रखे हुए, घरने को पैर के पंजों पर कई बार उठाओ । जब पंजों पर उठ जाओ, तो घण-भर दहर जाओ ; तब पृथिवी को फिर भूमि पर आ जाने दो, फिर ऊपर जिये अनुसार ऊपर उठो । घुटनों को टेढ़ा न होने दो और पृथिवी को एकत्र रखो । यह कपाल टोंगों को पिछली भाग-पेशियों ( पीछी ) को उबल करतो है, और शुरू में यहाँ कुछ पीड़ा-सी होने लगती । यदि पारकी यहाँ की भागपेशियाँ विकसित न हों तो इस कपाल को बँझिए । ( २ ) हाथों को नितंबों ही पर रखे हुए अपने पैरों को दो जोंट के जामजे पर रखिए और तब शरीर को बैठने की स्थिति में लाइए, थोड़ा दहरकर फिर पहली स्थिति में आइए । इसे कई बार बँझिए, पर पहले अतिरिक्त न

कीतिरु बपोकि ह्यमे जोंपों में पहले पीड़ा हो जायगी । हम कम-  
जत में जोंपों की उन्नति होगी । इस विषय की गति में यदि भार पंजों  
पर होकर नीचे बैठे तो और भी बढ़ता होगा ।

### ( ८ ) अभ्यास

( १ ) नीचे खड़े हो, हाथ नितंबों पर रहें । ( २ ) घुटने को  
सीधा ही रखने हुए दाहनी टोंग को त्रयीय १२ ईंच आगे फेंको ।  
अँगूठा बाहर की ओर मुका रहे और तलवा चिपटा रहे—तब  
टोंग की पीछे फेंको कि अँगूठा नीचे को मुँह कर ले, पर घुटना  
बराबर बना रहे । ( ३ ) कई बार इसी तरह आगे पीछे झोंका  
देकर ले जाओ । ( ४ ) तब बाईं टोंग से ऐसा ही करो । ( ५ )  
हाथों को घीरे ही नितंबों पर किए हुए, घुटने को टेढ़ा करके, दाहनी  
टोंग को ऊपर उठाओ जब तक जोंप ठीक शरीर के सामने न आ  
जाय ( अगर और ऊपर उठा सकने हो तो उठाओ ) । ( ६ )  
अपने पैर को फिर भूमि पर रखो और बाईं टोंग में घीमी ही गति  
करो । ( ७ ) कई बार ऐसा करो, पहले एक टोंग और तब दूसरी।  
पहले धीरे-धीरे और फिर धीरे-धीरे तेज़ी की बढ़ाते जाओ जब तक  
कि तुम धीमी दौड़ बिना जगह छोड़े न कर लो ।

### ( ९ ) अभ्यास

( १ ) सीधे खड़े हो और भुजाओं को अपने सामने कंधों से  
सीधा फैलाओ और उन्हें कंधों की जैवार्द्ध तक रखो—हथेलियाँ  
नीचे मुँह किए रहें। अँगुलियाँ बाहर फैली और अँगूठे नीचे हथेलियों  
से लगे रहें, और अँगूठे की ओर हाथ एक दूसरे को छूते रहें । ( २ )  
नितंबों से शरीर को नीचे झुकाओ, वहाँ तक आगे नाँचे लटकते जहाँ  
तक संभव हो और साथ ही भुजाओं को झोंका देकर आगे फेंको कि  
नीचे होते हुए पीछे पीठ पर ऊपर जायें, यहाँ तक कि जब तक  
शरीर ज़रा तक नीचे जाय तब तक भुजाएँ शरीर के ऊपर पीछे फैले

जायें। भुजाओं को सांघे ही रखते रहो और घुटने टेढ़े न होने पावें।

( १ ) फिर खड़ी स्थिति में आ जाओ और इसे कई बार करो।

( १० ) अभ्यास

( १ ) भुजाओं को बाल की ओर बंधों से सीधे फैलाओ और वहाँ ही हाथों को थोड़े हुए उन्हें कड़ा और सख्त करो।

( २ ) जख्मी से जोर से हाथों को बंद करो कि अँगुलियों इथेलियों में शुभ सी जायें। ( ३ ) हाथों को तेज़ी से और जोर से खोलो, अँगुलियों और अँगूठों को इतना फैलाओ जहाँ तक फैला सको कि हाथ धँसे के मरना हो जायें। ( ४ ) ऊपर लिखी रीति से हाथों को खोलते और बंद करते रहो, कई बार ऐसा करो और तेज़ी के साथ करो। कसरत में जीवट डाल दो। यह हाथ की मांसपेशियों को उन्नत करने में बड़ी अच्छी कसरत है; इससे हाथों में बल आता है।

( ११ ) अभ्यास

( १ ) अपने पेट के बल पद जाओ, अपने हाथों को सिर के ऊपर फैलाए रहो और तब ऊपर की ओर झुकाओ; तुम्हारी टाँगें खंबाई-भर फैली रहें और फिर पीछे की ओर ऊपर उठाई जावे। इसकी पूरी भावना तब होगी जब आप किसी कठोरे का प्यान करेंगे कि पेंदी तो भूमि पर हो पर मिर ऊपर की ओर उठा हो। ( २ ) भुजाओं और टाँगों को कई बार ऊपर नीचे करो। ( ३ ) तब पीठ के बल झेद जाओ और खंबाई-भर फैलकर पद जाओ, भुजाएँ सीधी मिर के ऊपर की ओर फैली रहें, अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें। ( ४ ) तब कमर से दोनों टाँगों को ऊपर उठाओ जब तक वे सीधी ऊपर की हवा में जहाज़ के मस्तूल की भाँति खड़ी न हो जायें; आपका ऊपरी शरीर और भुजाएँ पिछड़ी ही हुई स्थिति में पड़ी रहें। टाँगों को नीचे करो और कई बार उठाओ।

( ५ ) तीमरी स्थिति पर आओ, पीठ के यज्ञ, लवण-भर, भुजाओं को सीधा ऊपर मिर की ओर उठाए हुए रहो और अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें । ( ६ ) तब धीरे-धीरे शरीर को बैठने की स्थिति में आओ, भुजाएँ, कंधों के सामने बाहर की ओर फैली रहें । तब धीरे-धीरे फिर पड़ जाने की स्थिति में आओ और उठने और पड़ जाने की क्रिया कई बार करो । ( ७ ) तब फिर मुँह और पेट के यज्ञ उलट आओ ; और नीचे लिखी हुई स्थिति को धारण करो ; सिर से पैर तक शरीर को कड़ा करो, अपने शरीर को उठाओ जब तक शरीर का कुल बोझ एक ओर मुझारी इपेक्षियों पर ( भुजाएँ आगे की ओर सीधी तनी रहें ) और दूसरी ओर पैर के अँगूठों और अँगुलियों पर न आ जाय । तब धीरे-धीरे भुजाओं को कुहनिओं पर टेढ़ी करने लगे और छाती को भूमि पर जाने दो । तब अपनी भुजाओं को सीधी और कड़ी करने के द्वारा अपनी छाती और ऊपरी शरीर को ऊपर उठाओ, कुल भार भुजाओं पर रहे । यह पिछली गति कठिन है और शुरू से इसमें शक्ति न करनी चाहिये ।

#### बड़े पेट को पचकाने का अभ्यास

यह कसरत उन लोगों के लिये है, जिनका पेट बहुत बड़ गया हो, जो अति अधिक खरबी वहाँ एकत्र हो जाने से होता है । इस कसरत को उचित रीति से करने से पेट बहुत छोटा हो सकता है—परंतु सर्वदा स्मरण रहे कि सब बातों में मध्य धृति रहनी चाहिये, और अति किसी बात में न करो, न शीघ्रता ही करो । कसरत यों है: ( १ ) तब हवा प्रवास द्वारा बाहर निकाल दो ( बहुत जोर मत लगाओ ) और तब पेट को भीतर और ऊपर खींचो जहाँ तक नुम खींच सको तब पृथ-भर रोक रखो और फिर स्वाभाविक स्थिति में आने दो । कई बार इसे करो, तब एक दो सॉस ले लो और थोड़ा विस्तार कर लो । फिर कई बार पेट को

धैर्य ही भीतर भींचो और बाहर छाओ। हम थोड़े अभ्यास से पेट की मांसपेशियों पर किनासा अधिकार हो जाता है, यह बड़ी भारवर्धनक बात है। हम कमरत में केवल चर्बी ही की तहें नहीं घटेंगी, किन्तु आमाशय की मांसपेशियों भी बड़ी बलवती हो जाएंगी। (२) पेट को अच्छी तरह मुजायमियत में मसो।

शरीर को बढ़ा करने का अभ्यास

यह कमरत इसलिये है कि मनुष्य को सुंदर स्वाभाविक रीति से खड़े होने और चलने की प्राप्ति हो जाय, और उसकी ढीले-ढाले रहने और चलने की आदत छूट जाय। यदि अच्छी तरह से इसका अभ्यास किया जाय, तो हमसे सीधी सुंदर गति (चाळ) हो जावेगी। इससे आपकी चाळ ऐसी हो जावेगी कि आपके प्रत्येक अवयव को काफ़ी अवकाश रहेगा और शरीर का प्रत्येक अंग सुव्यवस्थित रहेगा। इस था इसी के समान किसी कसरत का अनुसरण बहुत-से देशों में सेना-नायकों द्वारा किया जाता है, जिससे नवयुवक अक्रूरों की चाळ ठचित और सुंदर हो जावे, परंतु सेनाओं में इस कसरत का बहुत अच्छा प्रभाव दूसरी जंगी कसरतों से दब जाता है और शरीर में अधिक कष्टावन आ जाता है; परंतु इस कसरत को पृथक् करने में वह दोष नहीं आने पाता। कसरत नीचे लिखी जाती है, इसको सावधानी से समझिए—(१) सीधे खड़े हो, एवियाँ एकत्र और पैर के घँगूटे थोड़ा बाहर की ओर मुके हों। (२) भुजाओं को बाल से ऊपर की ओर वृत्ताकार गति में उठाओ कि हाथ सिर के ऊपर जाकर मिल जायें, घँगूटे एक दूसरे को छू लें। (३) घुटनों को सप्रत और शरीर को बढ़ा किए हुए कुदनियाँ टेढ़ी न होने पावें (और कंधे धीमे ही की ओर दबे रहें)। भुजाओं की वृत्ताकार गति में बालों ही की सीध में नीचे छाओ जब तक छोटी घँगुलियाँ और हथेली के भीतरी किनारे जाँघों की



बागों को छू न लें, हथेलियों का मुँह सामने की ओर हो : इसे कई बार करो, स्मरण रहे, धीरे-धीरे हाथों को अंतिम स्थिति में इस गति से छाए जाने पर कंधों को आगे की ओर टेढ़ा होना असंभव हो जाता है। छाती थोड़ी उभड़ जाती है, सिर सीधा हो जाता है, पोठ सीधी और बीच में थोड़ी आगे की ओर मुका हो जाती है ( और यही उसकी स्वाभाविक स्थिति है ) ; और घुटने भीधे रहते हैं। संक्षेप यह है कि आपका शरीर उत्तम, सीधा गठन का हो जाता है—अब इसी को सर्वदा कायम रखिए। इस स्थिति में खड़े होकर, फनिष्ठिका अँगुली को जाँघों के ठीक बगल में रख-कर कमरे की में घूम-घूमकर टहलिए; और फिर इसी स्थिति से चला कीजिए। इस प्रकार थोड़ा अभ्यास करने से आश्चर्यमय उन्नति होगी। परंतु इसमें अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता है—इसी तरह सभी अच्छी बातों में अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता बुझा करती है।

अब व्यायाम के विषय में जो हमें थोड़ा-सा कहना था, उसे हम कह चुके। बातें सीधी हैं, पर आश्चर्यमय उन्नति देनेवाली हैं। इनमें शरीर के प्रत्येक भाग को परिश्रम करना पड़ जाता है; यदि सावधानी से इनका अभ्यास किया जाय, तो वे आपके शरीर को नया बना देंगी। सावधानी से अभ्यास कीजिए और इनमें जी लगाइए। इनमें मनोयोग दीजिए और इस बात पर ध्यान रखिए कि किस अभिप्राय से आप इस क्रिया या खेल को कर रहे हैं। जब आप कपरत करने लगें, "बल और उन्नति" पर ध्यान रखें, तब आपको और भी बहुत अधिक लाभ होगा। भोजन के तुरंत पश्चात् व्यायाम मत करो। किसी व्यायाम को थोड़े ही बार दुहराओ और तब धीरे-धीरे उसे बढ़ाने लगो। दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा व्यायाम करो, जो हर एक ही बार बहुत-सा करने से अच्छा होगा।

घाती है और अंत में शारीरिक अमृष्ट और रोग उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि शरीर छाली आँख से देखने में स्वच्छ देख पड़ता हो, पर वह वस्तुतः बहुत अधिक मैला प्रमाणित हो सकता है। यदि सूक्ष्म दूरदर्शक यंत्र (सुदर्शनी) से आप शरीर के चमड़े को देखें, तो मैल को देखकर आप घबरा जायेंगे।

मनुष्य की सब जातियाँ, जो तनिक भी सभ्यता का अभिमान करती थीं, इस स्नान का अभ्यास करती आई हैं। सब बात तो यों है कि स्नान ही को हम एक ऐसी नाप मान सकते हैं, जिससे किसी जाति की सभ्यता नापी जा सकती है। जिस जाति में जितना ही अधिक स्नान किया जायगा, उसमें उतनी ही अधिक सभ्यता है और जिस जाति में स्नान की जितनी ही कमी है, उसमें उतनी ही असभ्यता है। पुराने मनुष्य इस स्नान में बढ़ते-बढ़ते अंत में अतिशय को पहुँच गए और प्रकृति के मार्ग से पृथक् हो गए; वे सुगंधियों से स्नान करने लगे। यूनानी और रोमन लोग स्नान को सभ्य जीवन की परम आवश्यक बात समझने लगे; और बहुत-सी पुरानी जातियाँ इस विषय में आधुनिक जातियों से बहुत बढ़ो-बढ़ी थीं। जापानी लोग आजकल इस स्नान के विषय में दुर्जियों के सब लोगों से आगे बढ़े हुए हैं। तारीब-से-तारीब जापानी को चाहे भोजन न मिले, बुद्ध चिता नहीं, पर बिधिवन् स्नान अवश्य होना चाहिए। गरम दिनों में भी यदि आप जापानियों के झुमट में चले जायें, तो तनिक भी दुर्गंध आपके न मिलेगी। क्या अमेरिका और यूरोप में भी यह बात असंभव है? बहुत-सी जातियाँ स्नान को अपने महत्त्व का एक अंग मानती थीं और अब भी मानती हैं, महत्त्व के पुरोहित लोग स्नान की महिमा को समझने लगे और उन्होंने इसे महत्त्व में मिलाकर आवश्यक बना दिया। बोधी लोग इसे महत्त्व तो नहीं समझने, परंतु स्नान का व्यवहार देना करते हैं, जो महत्त्व से भी अधिक है।

# पच्चीसवाँ अध्याय

## योगियों का स्नान

हम पुरतक के एक अध्याय को स्नान की प्रधानता दिखाने में लगाने की आवश्यकता न होनी ; परंतु हम बीसवाँ शताब्दी में भी बहुत-से ऐसे मनुष्य हैं, जो हम विषय के संबंध में वस्तुतः कुछ नहीं जानते । कहीं-कहीं तो मनुष्य थोड़ा बहुत ऊपरी शरीर को धो काजते हैं, परंतु अधिकांश मनुष्य, त्रिनयें छिपों की संख्या और सी अधिक होती है, स्नान पर ही ध्यान नहीं देते; वे या तो स्नान के नाम पर अल का दर्श कर लेते हैं या वह भी नहीं करते । इसलिये हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करना अच्छा समझते हैं कि क्यों योगी लोग स्वच्छ शरीर रखने पर इतना जोर देते हैं ।

प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को स्नान करने की इतनी आवश्यकता न थी । क्योंकि उसका शरीर तब खुला रहता था, उस पर शृष्टि होती थी, आदिर्या और वृष्ट उसके शरीर से रगड़ खाया करते थे, और शरीर पर जमा हुआ मैल, जिसे शरीर भीतर से निकाल-निकालकर ऊपर छोड़ना जाता है, साफ हो जाया करता था । प्राकृतिक मनुष्य के समीप नदियाँ और झरने होते थे, पृथ्वी धार स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उसमें शीते लगा लेता था । परंतु वस्त्र का व्यवहार करने से वे बातें बदल गईं, और आजकल के मनुष्यों का यद्यपि उनके चमड़े अब भी भीतर से मैल निकाल-निकालकर ऊपर कर रहे हैं, अब पुरानी रीति से मैल साफ करना बहुत कठिन हो गया, और उसकी मैले शरीर पर तब-तब जमाती

बावी है और अंत में शारीरिक अमृष्ट और रोग उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि शरीर खाली आँख से देखने में स्वच्छ देखा पड़ता हो, पर वह अस्तुतः बहुत अधिक मैला प्रमाणित हो सकता है। यदि सूक्ष्म दृष्टि यंत्र (सुर्वाइज) से आप शरीर के खमड़े को देखें, तो मैला को देखकर आप घबरा जायेंगे।

मनुष्य की सब जातियाँ, जो सनिक भी सम्यक्ता का अभिमान करती थीं, हम स्नान का अभ्यास करती आई हैं। सब बात तो यों है कि स्नान ही को हम एक ऐसा नाप मान सकते हैं, जिससे किसी जाति की सम्यक्ता नापी जा सकती है। जिस जाति में जितना ही अधिक स्नान किया जायता, उसमें उतनी ही अधिक सम्यक्ता है और जिस जाति में स्नान की जितनी ही कमी है, उसमें उतनी ही असम्यक्ता है। पुराने मनुष्य हम स्नान में बढ़ते-बढ़ते अंत में अतिशय को पहुँच गए और प्रकृति के मार्ग से पृथक् हो गए; वे सुगंधियों से स्नान करने लगे। यूनानी और रोमन लोग स्नान को सम्यक् जीवन की परम आवश्यक बात समझते थे; और बहुत-सी पुरानी जातियाँ हम विषय में आधुनिक जातियों से बहुत बढ़ी-बढ़ी थीं। जापानी लोग आजकल हम स्नान के विषय में बुनियाँ के सब क्षेत्रों से आगे बढ़े हुए हैं। गरीब-से-गरीब जापानी को आधे भोजन न मिले, कुछ चिता न मिले, पर बिधिवत् स्नान आवश्यक होना चाहिए। गरम दिनों में भी यदि आप जापानियों के अरमुट ॥ सहे जायें, तो सनिक भी दुर्गंध आपको न मिलेगी। क्या अमेरिका और यूरोप में भी यह बात अक्षमभ है? बहुत-सी जातियाँ स्नान को अपने मज़हब का एक अंग मानती थीं और अब भी मानती हैं, मज़हब के प्रोहित लोग स्नान की महिमा को समझते थे और उन्होंने इसे मज़हब में मिश्रकर आवश्यक बना दिया। बोली लोग इसे मज़हब तो नहीं समझते, परंतु स्नान का व्यवहार देना करते हैं, जो मज़हब से भी अधिक है।

अब देखना चाहिए कि स्नान करना क्यों आवश्यक है। हममें से बहुत कम लोग इसकी पूरी महिमा समझते हैं। जो समझते हैं वे भी केवल स्नान ही समझते हैं कि इससे मैल—प्रत्यक्ष मैल—साफ़ होता है। परंतु स्वच्छता तो आवश्यक वस्तु है ही, इसमें तो संदेह ही नहीं है, परंतु स्वच्छता के अज्ञाता भी इसमें बड़े-बड़े गुण हैं। पहले यह देखना चाहिए कि चमड़े को स्वच्छ करने की आवश्यकता क्यों है।

हमने एक अध्याय में आपको समझा दिया है कि साधारण रीति से पसीने के बह जाने की बड़ी आवश्यकता है; यदि चमड़ों के विद्रव्य अवरोध हो जायें या बंद हो जायें, तो शरीर अपनी रदियात को बाहर नहीं निकाल सकता। और वह बाहर कैसे निकाला करता है? चमड़ा, रबाम और गुठों के द्वारा। बहुत-से स्नायु गुठों का काम बड़ा देते हैं। जिनसे उन्हें अपना और चमड़े का, दोनों का काम करना पड़ जाता है; क्योंकि प्रकृति एक अवयव से दुना काम लेगी, परंतु काम को बिना कराए न रहेगी। चमड़े का प्रत्येक विद्र उस नाभी का छोर है, जिसे चमड़े की नाली कहते हैं, और जो चमड़े के भीतर तक फैली रहती है। हमारे चमड़े के प्रत्येक वर्ग इंच में ऐसी १००० छोटी नाभियाँ होती हैं। वे लगातार एक द्रव बहाया करती हैं, जिसे पसीना और देह-वाष्प कहते हैं, जो ऐसा द्रव होता है, जो शरीर-यंत्र के मैल और रदियात से भरे हुए रुधिर में से निकलता है। आपको स्मरण होगा कि शरीर चण-चण में पुराने निक्षेपों को पृथक् करता रहता है; और इनके स्थान पर नए रेशों को स्थापित करता रहता है; और इन पुरानी रदियात का दूर होना वैसा ही आवश्यक है, जैसा घर के कूड़ा-करकट का दूर होना जरूरी है। चमड़ा एक

आपना; और इसीलिए प्रकृति हमें दूर बहाया चाहती है। हमारे से एक रोगनशाय द्रव भी निकलता है, जो हमारे को कोमल और चिकना बनाए रखता है।

इसमें हमारा भी अन्य आवश्यकों की भाँति अपनी बनावट में बड़ा परिश्रम पाया करता है। बाहरा हमारा ऐसे देहायुधों में बना है, जो बहुत घशायु हुंदा करते हैं, और जगानार केनुत्र की भाँति छूटा करते हैं और उनके स्थान को पूरा करने के लिये मर देहायु भीसे से ऊपर आया करते हैं। ये निकलने और इनके देहायु हमारे के ऊपर रही पदार्थों की एक प्रकार की लह बना देने हैं, यदि मज्ज-मलकर धो न डाले जायें, इसमें मरेह नहीं कि उनसे से अपनेको तो कण्डे की रगड़ सा-साकर गिर जाने और छूट जाने हैं; परंतु बहुत बड़ा भाग रह जाता है। और उनके दूर करने के लिये नशाने जाने का आवश्यकता पड़ती है।

पानी के द्वारा शरीर के भातरी अंगों को सिंचाई के अध्याय में हमने हमारे के इन छिद्रों को खुले रखने की आवश्यकता दिखला दी है, और यह भी बतला दिया है कि यदि ये बंद कर दिए जायें, तो मनुष्य शीघ्र ही मर जाय, जैसा कि पूर्वकाल की परीक्षाओं और बरानाओं से प्रमाणित होता है। यदि शरीर को धोकर साफ न किया जाय, तो इन निकलने देहायुधों, रोगन और पमाने से हमारे के छिद्र धोड़े बहुत बंद हो जायें और फिर हमारे की सतह पर यह मैलापन रोगों के काटायुधों को निमंत्रण देने लगे कि ये यहाँ आकर अपना घर बनावें और वृद्धि करें। स्थान न, करके क्या आप इन कीटाणुओं को न्याता दे रहे हैं? हम ऊपर से आप हुए गर्दगुवार का वर्णन नहीं कर रहे हैं—हम जानते हैं कि उसको आप न छपेटे रहेंगे—परंतु आपने कभी भी अपने ही शरीर से निकले हुए इस मैल पर स्थान दिया है। जो पैसा ही मैल है, जैसा ऊपरी मैल है और कभी-कभी उससे भी अधिक बुरा जल पैदा कर देता है।

प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम दिन में एक बार अपने सारे शरीर को धो डालना चाहिए। स्नान के लिये बहुत उपयुक्त समय सुबह सोकर उठने का है। भोजन करने के ठीक पहले या परचाव कभी स्नान न करो। शाम को स्नान करना भी अच्छी बात है। स्नान करने समय मोटे कपड़े से शरीर को खूब रगड़ो, जिनसे मुँदा चमड़ा छूट जाया करेगा और रुधिरसंचार भी उत्तेजित होगा। जब शरीर ठंडा हो, उस समय ठंडे पानी से कभी भी स्नान न करो। ठंडे पानी से स्नान करने के पहले कुछ कसरत करके अपने शरीर को गरम कर लो, तब स्नान करो। दुबकी मारकर स्नान करने में पहले सिर को भिगोकर तब छाती भिगोओ और तब दुबकी लगाओ।

ठंडे पानी से स्नान करने के परचाव योगियों की रीति है कि शरीर को हाथों से कपड़े के स्थान पर घ्रूय मलें और तब भीगे ही शरीर से सूखे कपड़े पहन लें। इससे जाड़ा अधिक मालूम होने के स्थान पर, जैसा कि कोई-कोई ग्रन्थाल करते हैं, उसके विपरीत गरमा-हट मालूम होती है, और यदि थोड़ी-सी हलकी कसरत कर लें, तो यह गरमाहट और भी बढ़ जाती है। योगी लोग स्नान के परचाव प्रायः व्यायाम किया करते हैं। यह व्यायाम बहुत कड़ा नहीं होता; और ज्यों ही सारे शरीर में पूरी तनवमाहट आ गई कि बंद कर दिया जाता है।

योगियों का प्यारा स्नान ठंडे पानी से होता है। वे सारे शरीर को हाथ से घ्रूय मलते हैं, या पहले कपड़े से रगड़कर पीछे हाथ से मलते हैं, और साथ-ही-साथ पूरी साँस ब्रेने की किया करते जाते हैं। सो-कर उठने पर वे स्नान करते हैं और स्नान करने पर हलकी कसरत कर लेते हैं। जब बड़ी सर्दी पड़ती हो, तब वे दुबकी लगाकर स्नान नहीं करते; परंतु कपड़े से पानी को शरीर पर लगा लेते हैं तब हाथ से घ्रूय मलते हैं। ठंडे पानी से स्नान करने पर आरचर्यजनक

गर्मी आती है और ज्यों-ज्यों कपड़ा पहना जाता है, त्यों-त्यों और जस कमतमाइट मालूम होती है। इस योगियों की रीति से स्नान करने का यह परिणाम होता है कि शरीर बलवान् और हट्टा-कट्टा हो जाता है, उसका मांस रद, बलवान् और घना हो जाता है और हुकाम तो प्रायः योगियों को अज्ञान ही हो जाता है। इस स्नान का अध्ययन करनेवाला मनुष्य उस मजबूत और हट्टे-कट्टे वृद्ध के समान हो जाता है, जो अनेक प्रकार की गर्मी-सर्दी के मौसम को सहने में समर्थ होता है।

इस अपने शिष्यों को शुरू ही से अध्ययन टट्टे पानी से स्नान करने में सावधान किए देने हैं। यदि तुम्हारे शरीर में जीवट की कमी हो, तब तो कदापि ऐसा मत करो। पहले शुल्बवर शीतकता के पानी से शुरू करो, जब दिनों के बोलने से उधों-उधों शरीर का जीवट बढ़ता जाय, त्यों-ज्यों अधिक टट्टे पानी से स्नान बिधा करो। एक प्रकार की शीतकता या ताप का जब तुम्हें अध्ययन शुल्बवर प्रतीत होगा, तब उसी को पाद कर को और भीसे ही जब से स्नान बिधा करो। सबसे के टट्टे पानी से स्नान करना तुम्हें शुल्बवर होना चाहिए, न कि प्रायश्चित्त की भाँति दुःखवर। जब आपको एक बार उसका मजा मालूम हो जायगा, फिर आप उसको न छोड़ेंगे। इससे आप दिन-भर अच्छी तरह रहेंगे। पहले टट्टा जब शरीर पर टाकते बहुत सरीं मालूम होती है, पर थोड़े ही अर्ध में प्रतिनिधा प्राप्त हो जानी है और गरमाइट मालूम होने लगती है। यदि आप इस से स्नान करते हों, तो एक मिनट से अधिक इस में कभी न रहें, और जब तक इस में रहे, शरीर को ठुल मालते रहें।

यदि आप सबसे इस प्रकार स्नान करते रहेंगे, तो आपको बहुत-से लाभ उपायों की आवश्यकता न होगी। कभी कभी कहीं से स्नान का लेना पड़ता होगा। तब कभी से स्नान करने से शरीर को ठुल



मलते रहिए और चमड़े को कपड़े से खूब सुखाकर तब कपड़े पहनिए।

ये मनुष्य जिन्हें दिन को बहुत चलना या खड़े रहना पड़ा हो, उन्हें रात को सोने के पहले पैरों को धो हाथने से अच्छा सुख मिलेगा और रात को झूब नींद आवेगी।

अब ज्यों ही आप इस अध्याय को पढ़ जायें, त्यों ही भुलवान हों। परंतु जो तरकीबें हममें बताई गई हैं, उनको परीक्षा कीजिए और देखिए कि उनमें कितना लाभ होता है। जब थोड़े दिन आप इसकी परीक्षा कर लेंगे, फिर इसे कभी न छोड़ेंगे।

### योगियों का सबेरे का स्नान

सबेरे के स्नान से सर्वोत्तम लाभ उठाने की भावना आपको नीचे लिखी हुई तरकीब से होगी। यह बहुत बल देनेवाली, शक्ति बढ़ानेवाली तरकीब है, जिसमें आठ दिन-भर सुखी रहेंगे।

पहले इसमें थोड़ी कसरत कर लेनी होती है, जिससे रुधिरसंचार अच्छा होने लगता है और रात के सोने के बाद प्राण अच्छी तरह से शरीर में वितरित हो जाता है, जिससे शरीर स्नान करने के और उसके लाभों को पूरी तरह से उठाने के योग्य बन जाता है।

प्रारंभिक व्यायाम—( १ ) सीधे जंगी स्थिति में खड़े हो, सिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे, और हाथ बगलों में हों। ( २ ) शरीर को धीरे-धीरे पैर की अँगुलियों पर उठाओ, साय-ही-साय धीरे-धीरे पूरी साँस खींचते जाओ। ( ३ ) साँस को भाँतर ही कुछ क्षण तक रोक रखो और शरीर को उसने समय तक उसी स्थिति में रखो। ( ४ ) धीरे-धीरे पहली स्थिति में आओ और साय-ही-साय नाक द्वारा हवा को भी धीरे-धीरे निचालते जाओ। ( ५ ) साँस करनेवाली क्रिया कर दो। ( ६ ) इसे कई बार करो; एक बार एक टॉप से सब दूसरी से।

जब पहली कड़ी हुई तरकीब से स्नान करो। यदि तुम कपड़े के  
 स्नान किया चाहते हो, तो एक वर्गन में शीतल जल ले लो।  
 जो बहुत सड़ा न हो, परंतु सुगंध और ठंडा ही शीतल हो  
 किया जा सके।) एक मोटा कपड़ा या तौलिया लो, उसे पानी  
 भेगोघो, और तब उसका आधा पानी निचोड़ डालो। पहले  
 ही और कंधे से शुरू करके पीठ, पेट, जाँघ, मिचली टाँगें और तब  
 को छूब जोर से रगड़ो। शरीर को चारों ओर से रगड़ने में  
 दो-तीन बार पानी में डुबो डुबोकर आधा निचोड़ लिया करो,  
 तब सारे शरीर को साफ़ ठंडा पानी मिला जाया करे। चण्णभर  
 जाधो और पूरी-पूरी दो-एक मीलों ले लो; फिर मज्जने लगो।  
 ज अर्द्धी मत करो, किंतु शीति से स्नान करो। पहले दो-एक बार  
 पानी से शरीर धोवा करेगा, परंतु बहुत शीघ्र आदत पड़ जायगी;  
 तुम्हें धरड़ा मालूम होने लगेगा। बहुत ठंडे पानी से स्नान प्रारंभ  
 की शलगी मत करो। परंतु धीरे-धीरे शीतलता कई दिनों में  
 लगेगी। यदि कपड़े से स्नान करने के स्थान पर टब में स्नान करना  
 चाहते हो, तो वैसे ही पानी में टब को आधा भर लो और जब  
 शरीर को मज्जने रहो, गुटनों के बल उसमें धीरे रहो, तब चण्णभर  
 शरीर को हममें डुबोए रहो और तब एकदम बाहर आ जाओ।  
 आगे कपड़े से स्नान करने की आदत रह में, शरीर को कई बार  
 धुन धरती तरह से हाथों से मज्जो। मनुष्य के हाथों में कुछ ऐसी  
 शक्ति है, जिसका काम कपड़े से नहीं निकल सकता। एक बार पानी  
 में डुबोकर आधा मालूम हो, तब आधा कपड़े पहन लो,  
 तबका अनुभव करते तुम्हें क्या धारण  
 करने के स्थान पर सारे शरीर में  
 स्नान के परचाय जीने बिछी हुई

( १ ) सीधे खड़े हो, अपनी मुजाधों को अपने सामने सीधे फैलाओ और उन्हें कंधों की उँचाई पर रखो, मुट्टियाँ बँधी और एक दूसरों को छूती हों; मुट्टियों को जोर से थोड़ा देर पीछे बाजों की सीध में या उसमें भी तनिक पीछे लाओ ; इससे छाती का ऊपरी भाग फैलता है ; इसे कई बार करके चण्डमर विग्राम कर लो ।

( २ ) पहली स्थिति की अंतिम दशा में आ जाओ, अर्थात् मुजाधें बाजों की ओर कंधों से सीधी फैली रहें ; अब मुट्टियों को एक घूत में घुमाओ, धाने से पीछे को, तब पीछे से आगे को ; तब बारी-बारी से दोनों मुट्टियों को बायु-बही की मुजाधों की भाँति घुमाओ, इसे कई बार करो । ( ३ ) सीधे खड़े हो और हाथों को सिर के ऊपर ले जाओ, हाथ खुले रहें, अँगूठे एक दूसरे को छूते रहें, तब बिना घुटनों को टेढ़ा किए भूमि को अँगुलियों के छोरों से स्पर्श करने का यत्न करो—यदि तुम न छू सको, तो यत्न तो पूरा करो; पहली स्थिति में आ जाओ । ( ४ ) अपने को पैरों के पंजों पर ऊपर उठाओ, इसे कई बार करो । ( ५ ) खड़े होकर अपने पैरों को दो जूट के फासिले पर रखो, तब धीरे-धीरे बैठने की स्थिति में नीचे खो और फिर पहली स्थिति में आ जाओ । इसे कई बार करो । ( ६ ) पहली कसरत को कई बार करो । ( ७ ) साफ करनेवाली क्रिया करके अंतिम कर लो ।

यह कसरत उतनी टेढ़ी नहीं है, जितनी पहले पाठ में मालूम देती है । यह ५ कसरतों का पंचमेल है, जो बहुत सादा और सरल है । इसके एक-एक खंड को समझकर अभ्यास कीजिए और एक-एक को सिद्ध कर लीजिए ; तब सबको मिला दीजिए । तब यह घड़ी की भाँति चलने लगेगी और थोड़े ही चरणों में पूरी कसरत हो जावेगी । यह बहुत बल बढ़ानेवाली है, इससे सारा शरीर काम में आ जाता है ; और यदि स्नान के ठीक बाद इस

ह्यान को आर करते रहेंगे, तो नया शरीर मिल जाने का सुख मोगेंगे ।

शरीर के ऊपरी भाग को प्रबुध भल-भलकर धो ढाखने से दिन-भर शक्ति धीर जोवट बने रहने हैं ; रात को कमर से नीचे पैर तक मल-मलकर धो ढाखने से रात को नींद प्रबुध आती है और शरीर ताजा हो जाता है ।

---

# छब्बीसवाँ अध्याय

## सूर्य की शक्ति

हमारे शिष्य लोग कुछ-न-कुछ ज्योतिष के प्रारंभिक वैज्ञानिक मूलतत्त्वों से परिचित होंगे। अर्थात् सृष्टि के उस अत्यंत छोटे खंड का कुछ ज्ञान पाए होंगे, जिसका हम अपनी आँखों से उत्तम-से-उत्तम दूरबीन यंत्र के द्वारा, ज्ञान प्राप्त करते हैं, और जिसमें करोड़ों तो स्थिर तारे हैं—जो सब-के-सब सूर्य हैं; जो हमारे सूर्य के बराबर और कोई-कोई तो इससे बहुत बड़े हैं। प्रत्येक सूर्य अपने संप्रदाय-भर के ग्रहों, उपग्रहों आदि की शक्ति का केंद्र है। हमारे ग्रह-संप्रदाय के लिये शक्ति देनेवाला बड़ा केंद्र हमारा सूर्य है। हमारे ग्रह-संप्रदाय में बहुत-से तो जाने हुए ग्रह हैं और बहुत-से ऐसे भी ग्रह हैं, जिनका ज्योतिषियों को पता भी नहीं है। यह भूमि, जिस पर हम स्थित हैं, हमारे सूर्य के अनेक ग्रहों में से एक ग्रह है।

हमारा सूर्य अन्य सूर्यों की भाँति आकाश में लगातार शक्ति छोड़ रहा है; यही शक्ति ग्रहों को जीवत देती है और उन पर जीवन संभव कर देती है। सूर्य की किरणों के बिना भूमि पर जीवन असंभव हो जाता—तुच्छाति-तुच्छ जीव भी न जी सकते। हम सब लोग मीठट—जीवनबल—के लिये सूर्य पर अवलंबित हैं। यह जीवत जीवनबल या शक्ति वही पदार्थ है, जिसे योगी लोग प्राण कहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्राण सर्वव्यापक है; परंतु कुछ ऐसे केंद्र हुआ करते हैं, जो प्राण को खींचा और छोड़ा करने हैं—मानो एक स्थायी धारा बहाया करते हैं। विद्युत् शक्ति सर्वव्यापक है, परंतु दिनामो ( dynamos ) और ऐसे ही अन्य केंद्र प्राण-

रफ होते हैं कि उसे संग्रह करें और घनीभूत बनाकर प्रवाहित करें। सूर्य और उसके ग्रहों के मध्य में प्राण की अनवरत धारा बारी रहती है।

यह बात मान ली गई है (आधुनिक विज्ञान भी इसमें प्रतिवाद नहीं करता) कि सूर्य जलती हुई आग की ढेरी है, एक प्रकार की बज्जती हुई भट्ठी है, और जो रोशनी और गरमी हम प्राप्त करते हैं, वे इसी भट्ठी की उत्पत्ति है। परंतु योगशास्त्रियों ने इसे भिन्न ही माना है। वे यह सिखाते हैं कि यद्यपि सूर्य का संगठन अथवा बहों की दशा हम आंगों की इस भूमि की दशा से इतनी भिन्न है कि मनुष्य का मन उस दशा का ठीक भावना भी नहीं कर सकता, तथापि सूर्य बज्जते हुए द्रव्य की घनी ढेरी नहीं है, जैसी जलते हुए कोयले या गले हुए लोहे की ढेरियाँ हुन्ना करती हैं। योगी आचार्य लोग इन भावनाओं को स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत उनकी यह धारणा है कि सूर्य अधिकांश उन द्रव्यों से बना है, जो हाल के आविष्कृत "रेडियम" के समान हैं। वे यह नहीं करते कि सूर्य रेडियम ही से बना है, परंतु वे शताब्दियों से यही समझते आते हैं कि वह अनेकों ऐसे द्रव्यों से बना है, जिसके विषय में पश्चिमी संसार इतना सोच-विचार कर रहा है, और जिसकी उसके आविष्कारों ने रेडियम नाम दिया है। हम यहाँ रेडियम का वर्णन नहीं करना चाहते, परंतु केवल इतना ही कह देते हैं कि वह उन्हीं गुणों और शक्तियों से युक्त है, जिन गुणों और शक्तियों से सूर्य के बनानेवाले अवयव भी योंही बहुत युक्त हैं। यह बात बहुत संभव है कि सूर्य के बनानेवाले अन्य अवयव भी इस पृथ्वी पर पाए जाएँ, जो रेडियम की समता रखते हों और कुछ कुछ अंशों में उससे भिन्न भी हों।

यह सौर्य द्रव्य गली हुई दशा में नहीं है, और न तो बज्जती हुई दशा में ही है, जैसा कि हम लोग अक्सर कहा करते हैं। परंतु

वह सर्वदा अपने ग्रहों से प्राण की धार खींचा करता है, और उस प्राण को प्रकृति की किसी आश्चर्यमय प्रक्रिया में पकाकर फिर। ग्रहों पर वापसी धारा द्वारा भेजा करता है। जैसा कि हमारे शिष्य लोग जानते हैं, हवा ही मूल भंडार है, जहाँ से हम लोग प्राण खींचा करते हैं, परंतु यह हवा स्वयम् सूर्य से प्राण ग्रहण करती है। हम बतला आए हैं कि जिस भोजन को हम खाते हैं, वह कैसे प्राण से भरपूर रहता है, जिसे हम खेकर अपने काम में लाते हैं; परंतु पौधे अपना प्राण सूर्य से ग्रहण करते हैं। इस सूर्यमंडल या सूर्य-संप्रदाय के लिये सूर्य ही प्राण का महाभंडार है, जो एक बृहत् डिनामो की भाँति अपनी धाराओं को इस सूर्यसंप्रदाय के प्रत्येक छोरों तक सर्वदा भेजा करता है और जीवन को, शारीरिक जीवन को, संभव बनाए है।

यह किताब वह स्थान नहीं है, जहाँ सूर्य की क्रियाओं की आश्चर्यजनक बातों का वर्णन किया जाय। योगी लोग इन बातों को अच्छी तरह जानते हैं। हम यहाँ पर अपने शिष्यों को केवल इतना ही बतला दिया चाहते हैं कि वे समझ जायें कि सूर्य ही प्राण का 'आदि भंडार' है और वही सब प्राणियों के जीवन का मूल है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य यही है कि आपके चित्त पर बिठाल दिया जाय कि सूर्य की किरणें शक्ति और जीवन से भरी हुई रहती हैं, जिन्हें हम अपने जीवन के प्रत्येक पण्य काम में लाया करते हैं, परंतु हम उतना काम में नहीं लाते, जितना ला सकते थे। आनन्द के सन्ध मनुष्य सूर्य से भय खाते हुए मालूम देते हैं। वे अपने कमरों को ढँधेरा बना देते हैं, अपने शरीर पर अनेक कपड़े पहन लेते हैं कि जिसमें सूर्य की किरणों से बचे रहें। वे सूर्य की किरणों से दूर भागते हैं। ठीक यहाँ ही स्मरण रखिए कि जब हम सूर्य की किरणों की बात कर रहे हैं, तो सूर्य की गर्मी से हमारा मतलब नहीं

। मृत्यु के दर्शन के दिनों के मृत्यु के पदों के संकेत में  
 उनके दो टुकड़े होना है; मृत्यु के वायुमंडल के बाहर प्रती के  
 संकेत का जो आकार है, वहाँ बहुत बड़ी मृत्यु पदों है, क्योंकि वहाँ  
 मृत्यु के दिनों के अन्तर्गत देनेवाला कोई पदार्थ ही नहीं है।  
 हमारे जो हम करते हैं कि मृत्यु की दिनों का नाम उठाएँ, तो  
 हमारा मतलब यह नहीं है कि जेठ का दुपहरी में आप बाहर घूमिए।

मृत्यु की दिनों में एक भागने की आदत छोड़िए। आपकी कोठ-  
 रियों में धूप खाने कीजिए। अपने घरों और बिजली में इनका  
 मत रहिए। अपने इसी मातापिता की सर्वश्रद्धा मत रहिए। आप  
 अपनी कोठरी को ऐसा महफूज नहीं बनाया चाहते कि जिसमें मृत्यु  
 की धूप ही न आए, हम ऐसा ही इच्छा करते हैं। गुच्छ होगे हों  
 अपनी निश्चयों को छोड़ दीजिए कि धूप गांधे या परावर्तित होकर  
 कोठरी में आ जाए, तो आपको ऐसा वायुमंडल मिल जाएगा कि  
 शनैः-शनैः आपके घर में स्वास्थ्य, बल और जीवन्त भर जायेंगे और  
 रोग, निर्वलता और निर्विषता भाग जायेंगी—हँसकर का प्रवेश होगा  
 और हरिद्व निराल भागेगा।

घोड़े-घोड़े समय पर धूप खा लिया कीजिए। सबक की धूप-  
 खाही बाल को मत छोड़िए। हाँ, जब बहुत ही ज्यादा गरम  
 मौसम हो या दुपहरी हो उस वक्त आप धूपखाही बाल से बचने  
 का यत्न कर सकते हैं। कभी-कभी घाम से स्नान किया कीजिए।  
 सूर्योदय से पहले ही जग जाइए और धूप में खड़े हो, बैठ या खड़े  
 जाइए कि आपको सारा शरीर ताज़ा हो जाए। यदि आपको अक्-  
 सर मिले, तो आप शरीर के सब अंगों को उतारकर बिना यत्न की  
 बाधा के घाम खा लिया कीजिए। यदि आपने इसकी परीक्षा कभी  
 नहीं की है, तो आप देने विश्वास करेंगे कि घाम खाने में कितना  
 शुभ है और घाम खाने के परचाल कितना बल मालूम देने लगता।



है ? इस विषय को बिना विचारे मत छोड़ जाइए। सूर्य की किरणों की थोड़ी परीक्षा कर लीजिए और सूर्य से निःसृत निर्वाह प्राण की धार का कुछ लाभ उठा लिया कीजिए। यदि शरीर के किसी भाग में कोई विशेष निर्बलता हो, तो उस भाग पर सीधी धूप लगाने से आपको बहुत लाभ प्रतीत होगा।

प्रातःकाल की सूर्य की किरणें अत्यंत लाभदायक होती हैं; और जिनकी आवृत्त संधेरे जगने और इन किरणों से लाभ उठाने की पड़ गई है, उन्हें यद्वागी समझना चाहिए और वे क्याई के योग्य हैं। पाँच घंटा दिन खद जाने के बाद किरणों की प्राणदायिनी शक्ति घटने लगती है और शाम तक क्रमशः घटती ही जाती है। आप प्रयास करेंगे कि फल की वे क्यारियाँ या गमले, जिन्हें प्रातः-काल की धूप मिलती है, उनकी अपेक्षा जिन्हें दोपहर के बाद की धूप मिलती है, अधिक हरे-भरे और सुखी रहते हैं। फल के मध्य प्रेमी इस बात को समझते हैं कि सूर्य की धूप पौधों के लिये उतनी ही आवश्यक है, जितना पानी, हवा और अच्छी मिट्टी आव-रक है। थोड़ा पौधों का अध्ययन कीजिए—प्रकृति के मार्ग पर आ जाइए और वहाँ अपना सबकु पढ़िए, धूप और हवा पुष्टि की आश्चर्यजनक ओपधि हैं—आप क्यों और अधिक स्वर्जदत्ता से इनका व्यवहार नहीं करते ?

इस किताब में अन्यत्र हमने हवा, भोजन, पानी आदि से अधिक प्राण ग्रहण करनेवाली मन की शक्ति के विषय में बहुत कुछ कहा है। वही बात सूर्य की किरणों से भी प्राण ग्रहण करने में लगती है। आप उचित मानसिक स्थिति द्वारा लाभ को अधिक बढ़ा सकते हैं। संधेरे की धूप में बाहर निकल जाइए—सिर को ऊँचा कर लीजिए, कंधों को पीछे खींच लीजिए, और उस हवा की पूरी सौंस लीजिए, जो सूर्य की किरणों द्वारा प्राण से भरी जा रही है। अपने शरीर पर

पूरा पढ़ने दीजिए और तब लिखे हुए मंत्र या ऐसे ही अन्य मंत्र को जपते हुए मंत्र में कही बातों की मानसिक कहना करते जाएँ। मंत्र यह है—“मैं प्रकृति की सुंदर धूप का स्नान कर रहा हूँ—मैं उसमें से जीवन, स्वास्थ्य, बल और जीवट ग्रहण कर रहा हूँ। वह मुझे बलवान् और शक्तिमान् बना रही है। मैं प्राण की अंतर्गांधी धार का अनुभव कर रहा हूँ—मैं अनुभव करता हूँ कि वह धार हमारे शरीर में सिर से पैर तक सर्वत्र बौक रही है और सारे शरीर को बलवान् बना रही है। मैं सूर्य की धूप को चाहता हूँ और उसके सब लाभों को ग्रहण करता हूँ।”

जब-जब आपको अवसर मिले, इसका अभ्यास कर लिया कीजिए और तब आपको क्रमशः मालूम होने लगेगा कि इसने दिनों तक आपने कैसी अच्छी चीज़ से लाभ उठाना छोड़ दिया था। आप धूप से भागने थे। अनुचित रीति से दुपहरी की धूप गरम दिनों में मत लानो। परंतु चाहे जाड़ा हो या गरमी, सबेरे की धूप कुछ भी हानि न करेगी। सूर्य की धूप और उसके सब गुणों की प्रेम से चाहना करो।

---

# सत्ताईसवाँ अध्याय

## ताज़ी हवा

अब इस अध्याय को छोड़ मत जाइए कि इसमें वही साधारण विषय होगा। यदि आपकी इच्छा इसे छोड़ जाने की होती हो, तो आप ही ऐसे मनुष्य हैं, जिनके लिये यह अध्याय अभीष्ट और अत्यंत आवश्यक है। जिन लोगों ने इस बात पर शीर किया है और ताज़ी हवा के लाभ और आवश्यकता को कुछ-कुछ समझ लिया है, वे इस अध्याय को कभी न छोड़ जायेंगे, वे उस अच्छी बात को फिर पढ़ना चाहेंगे। और यदि आप इस विषय को पसंद नहीं करते और इसको छोड़ जाना चाहते हैं, तब निश्चय आपको इसकी आवश्यकता है। इस किताब के अन्य अध्यायों में हमने सौंस लेने की प्रधानता को—आभ्यन्तरिक और बाह्य दोनों पटलों में—दिखाया है। इस अध्याय में सौंस लेने का विषय फिर न उठाया जायगा, परंतु ताज़ी हवा और पुष्कल हवा के विषय में थोड़ा उपदेश दे दिया जायगा। यह उपदेश हमारे देश के लिये अत्यंत आवश्यक है जहाँ अब बंद कोठरियों और ऐसे घरों का रिवाज है, जिनमें पवन का भी प्रवेश न होने पावे। हमने आप लोगों को सही सौंस लेने की प्रधानता को दिखा दिया है, परंतु यह पाठ आपको क्या लाभ पहुँचावेगा, जब सौंस लेने के लिये अच्छी हवा ही न रहेगी।

बंद कोठरियों में जहाँ अच्छी तरह हवा का आवागमन नहीं है, बंद रहना अत्यंत मूर्खता का प्रयास है। फेफड़ों की किराओं और कर्तब्यों की जानकर भी मनुष्य बंद घर की गंदी हवा को शत्रु न समझे, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इस विषय पर आइए थोड़ा साधारण सीधा विचार कर लें।

कारणों समग्र होता कि पेटके अन्दर शरीर-द्वन्द्व के रहितान और निचले हाजिवाक पदार्थों को फेंक करने हैं। साथ शरीर को धात्र करनेवाला बाँझ है, जो निचले द्रव्यों, सरी पदार्थों और मृत देहा-शुष्को को शरीर के प्रत्येक अंग से निकालकर फेंक करती है। पेटके से निकाले हुए पदार्थ उलने ही गंदे होते हैं, जिनका चमड़े के छिद्रों से निकाला हुआ पशोना, गुदों से निकाला हुआ मूत्र और मलाशय से निकाला हुआ मीछा, गंदे हुआ करते हैं। मरुत जान तो यह है कि यदि शरीर-द्वन्द्व में धानी कारी न पहुँचाया जाय, तो प्रकृति पेटके से गुदों का काम लेती है और शरीर के विपरीत निचले पदार्थों को पेटके द्वारा बाहर फेंकवाती है। यदि अंतर्दिवाँ मिट्टी और श्रुतधों को ठीक तरह से नहीं निकाल बाहर करती, तो मलाशय की बहुत-सी चीजें शरीर में ऊपर चढ़ जातो हैं और बाहर निकलने की राह ढूँढ़ने लगती हैं कि पेटके उन्हें लेकर सॉम द्वारा बाहर फेंक देने हैं। तनिक विचार तो कीजिए कि यदि आप बंद घर में अपने को बंद करके सोवेंगे, तो आप प्रत्येक घंटे में आठ गीजन कार्बोनिक एसिड गैस और अन्य गंदे पदार्थ उस कोठरी के वायुमंडल में मिलाते रहेंगे। आठ घंटे में आप १४ गीजन छोड़ेंगे। यदि उस कोठरी में दो आदमी सोते हों, तो गीजनों को दो से गुणा कर दीजिए। ज्यों-ज्यों कोठरी की हवा गंदी होती जाती है, त्यों-त्यों आप बार-बार उसी गंदी और विपैकी हवा को सॉम द्वारा खींचते जाते हैं और हवा का गुण प्रत्येक सॉम में अधिक-अधिक बिगड़ता जाता है। सवेरे जब कोई मनुष्य आपकी कोठरी में आता है, और उसे दुर्गंधि मालूम होती है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, क्योंकि आप तो खिड़की भी बंद कर दिए थे। इस प्रकार के अष्ट कमरे में रात-भर सोने के परचात् यदि सवेरे आप उदास, थिड़-चिड़े, ज़ानहीन, मगदालू और हर तरह से निचले मालूम हों, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

आपने कभी सोचा भी है कि आप सोते किसलिये हैं ? आप इरलिये सोते हैं कि प्रकृति को अवसर मिले कि दिन-भर में जो कुछ शरीर-यंत्र में खोजन हुई है, रात को उसकी मरम्मत हो जावे। आप उसकी शक्तियों का व्यवहार करना छोड़ देते हैं और उसे अवसर देते हैं कि वह आपके शरीर-यंत्र की ऐसी मरम्मत कर दे और बना दे कि आप सबेरे फिर हर तरह से ठीक हो जायें। इस काम को अच्छी तरह से करने के लिये उसे कम-से-कम मामूली भी दशा तो चाहिए। वह तो आशा करती है कि उसको ऐसी हवा मिलनी चाहिए, जिसमें आक्सीजन की उचित मात्रा हो—ऐसी हवा हो जो पिछले दिन भूष खाकर फिर प्राण से भरपूर हो गई हो। ऐसी हवा के स्थान में आप बहुत ही परिमित हवा देते हैं, जो आधी तो शरीर की भीतरी रक्षियात के मिछने से विष-भय हो जाती है। ऐसी दशा में रात को सोने पर भी आपके शरीर-यंत्र की पूरी मरम्मत न हो सके, तो इसमें आश्चर्य ही क्या !

जिस कोशरी से वैसी दुर्गंध आती हो, जैसी हवा के अच्छे आवा-गमन से ही न सोनेवाली कोठरी से आया करता है, वह कोठरी तब तक आपके सोने के योग्य नहीं है, जब तक उसकी सब हवा निकलकर उसके स्थान में स्वच्छ ताज़ी हवा न भर आय। सोने के कमरे की हवा को उतना ही साफ़ और ताज़ी होना चाहिए, जितना बाहर मैदान की हवा स्वच्छ और ताज़ी हुआ करती है। सर्दी लगाने का भय न कीजिए। स्मरण रखिए कि चर्बी रोग के लिये अत्यंत अर्वाचीन वैज्ञानिक शोधों से यह निश्चित हुई है कि रात को 'रोगी' ताज़ी हवा में रहना आय, इस बात की कुछ परबाह नहीं कि 'सर्दी' कितनी है। धूप छोड़न रखिए, और जब आपको आदत पड़ जाय तो रात में खाना भी न पड़ेगी। प्रकृति के मार्ग पर आप

आए। ताज़ी हवा का यह मतलब नहीं है कि आप आँधी या हवा के झोंकों में सोते रहें।

जो रात सोने के कमरे के लिये ठीक बतलाई गई है, वही बात रहने और दफ़्तर के कमरों के लिये भी ठीक है। यह सच है कि ज़ाहों में कोई बाहरी हवा को अंदर अधिक न जाने देगा, क्योंकि कमसे कमरे की हवा अप्यधिक सड़ हो आवेगी; परंतु सड़ आयो-हवा में भी हवा को रखरुद रखने के लिये बहुत उपाय हो सकती हैं। थोड़े-थोड़े अमें पर खिड़की खोल दिया कीजिए कि हवा को अवसर मिल जाय कि वह अच्छी तरह आ जाय। रात में इस बात को न भूलिए कि लैप और गैस की रोगानी भी आवामीजन ख़र्च कर रहे हैं। इसलिये थोड़े-थोड़े अमें पर सब बातों को ताज़ा कर दिया कीजिए। बिहतर तो यह होगा कि हवा की मज़ाई के बारे में कोई अच्छी किताब पढ़ जाजिए; परंतु यदि यह न हो सके, तो जितना हम कर आए हैं, उतने ही का ख़ूब स्मरण रखिए, तो आपकी साधारण बुद्धि शेष सब कार्य कर देगी।

प्रतिदिन बाहर निकल जाया करो और ताज़ी हवा शरीर पर खाने दो। ताज़ी हवा जीवनदायक और स्वाभ्युत्थर गुणों से भरी रहती है। हम बात को आप सब लोग जानते हैं और जिदगी-भर जानते आए हैं। परंतु उस पर भी आप लोग घर के भीतर ही पड़े रहते हैं, जो बात प्रकृति के उद्देश के विरुद्ध विरुद्ध है। यदि आप भले-खेले नहीं रहते, तो हममें चारखे ही क्या है। प्रकृति का नियम तोइकर कोई हँस पाए बिना नहीं रह सकता। हवा से हरिए मन। प्रकृति का उद्देश है कि आप हवा का व्यवहार करें—बद आपकी प्रकृति और आवस्यकताओं के अनुसार है। इसलिये हमसे हरिए मन। बिनु हमकी आज्ञा कीजिए। जब आप बाहर जायें और ताज़ी हवा में रहें, तो मन हो-मन देगा करें—“मैं प्रकृति

का बधा है—उसने मुझे ऐसी पवित्र हवा काम में लाने के लिये दी है, जिससे मैं बलवान् और अशक्त हो जाऊँ और वैसा ही बना रहूँ। मैं गर्म के द्वारा व्यासर्प्य, बल और शक्ति भीतर खींच रहा हूँ। मैं अपने शरीर पर लगती हुई हवा के सुख को भोग रहा हूँ और मैं उसके छामकर पत्तों को अनुभव कर रहा हूँ। मैं प्रकृति का बधा हूँ और उसके बिपद हुए पदार्थों में सुख भोगता हूँ।” हवा का सुख भोगना सीखिए, फिर आप सुखी हो जावेंगे।

## अट्ठाईसवाँ अध्याय

निद्रा ज्ञान को स्वाभाविक पूरा करनेवाली है

मरनि को उन वृत्तियों में, जो मनुष्यों के जानने के योग्य हैं निद्रा ऐसी मदज और सरल वृत्ति मालूम होती है कि इसके लिये किसी शिक्षा या सलाह देने की आवश्यकता न होनी चाहती थी। बच्चे को निद्रा की प्रधानता और आवश्यकता जानने के लिये टीका-टिप्पणी-मदित किसी किताब की आवश्यकता नहीं होती—वह सो ही जाना है, बस मामला फ़तम है। युवा मनुष्य की भी, यदि वह प्रकृति के पथ पर रहता, तो यही दशा होती। परंतु यह तो ऐसे बनावटी घिरावों से घिर गया है कि इसके लिये प्राकृतिक जीवन जीना असंभव-सा हो गया है। परंतु यह भी अनहित घिरावों के होते हुए भी, पुनरपि प्राकृतिक मार्ग पर आ जाने में बहुत कुछ कर सकता है।

प्रकृति के विरुद्ध भ्रूलता की यादतों में, इसके सोने और जागने की यादतें धार्यत गुरी हो गई हैं। वह उन घदियों को, जिन्हें प्रकृति ने मली भाँति सोने के लिये दिया है, जोश और सामाजिक भ्रामोद-भ्रामोद में व्यर्थ हो देता है; और उन घदियों-यहों में सोता है, जिन्हें प्रकृति ने उसे जीवट और शक्ति ग्रहण करने के लिये दिया था। उत्तम-से-उत्तम निद्रा सूर्यास्त और आधी रात के बीच के समय में हुआ करती है; और उत्तम-से-उत्तम समय, बाहरी काम करने और जीवट ग्रहण करने के लिये प्रातःकाल के कुछ घंटे हुआ करने हैं। इस प्रकार हम दोनों ओर खोते हैं और उस पर भी आश्चर्य करते हैं कि क्यों अथानी ही में या उससे भी पहले स्वास्थ्य बिगड़ गया।



नौद की दशा में प्रकृति मरम्मत का कार्य करती है और यह बात अत्यंत आवश्यक है कि हमके लिये उसे उचित अवसर दिया जाय। हम सोने के विषय में नियमावली बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे, क्योंकि भिन्न-भिन्न मनुष्यों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताएँ हुआ करती हैं; यह अध्याय कुछ थोड़ा-सा दिग्दर्शन के लिये दे दिया गया है। साधारण रीति से प्रकृति २ घंटा नौद के लिये चाहती है।

सबंदा हवा के भली भाँति से आने-जानेवाली खुली कोठरी में सोया कीजिए, जैसा कि ताज़ी हवावाले अध्याय में वर्णन किया गया है। ओदन काफ़ी ओढ़ लीजिए कि जिसमें सुख रहे; परंतु बहुत ही भारी ओढ़नों के नीचे दफ़न मत हो जाएँ, जैसा कि बहुत-से घरों में दस्तूर हुआ करता है। यह अधिकतर आवृत्त कालने का सामाना है। आप जितने भारी-भारी ओदन ओढ़ते हैं, उनकी अपेक्षा हलके ओढ़नों से भी अच्छी तरह काम चलता हुआ देखकर आप आश्चर्य में आ जायेंगे। जिन कपड़ों को आप दिन में पहने थे, उन्हीं को पहने हुए रात को कभी मत जाएँ—यह आदत व तो स्वास्थ्य-दायक है और न सफ़ाई ही की है। सिर के नीचे बहुत-सी तकियाओं का व्यवहार मत कीजिए—एक हलकी-सी छोटी तकिया काफ़ी है। शरीर की प्रत्येक मांसपेशी को ढीला कर दीजिए और प्रत्येक नाड़ी में से तनाव खींच लीजिए और ज्यों ही ओदन ओढ़िए, सब तनावों और खिचावों से हटकर निष्क्रिय होकर पड़ जाएँ। लेटने पर दिन के कार्यों की आलोचना मत किया कीजिए। यदि आप इस नियम के अनुकूल चलेंगे, तो तंदुरुस्त बच्चे की भाँति मर सो जायेंगे। सोते हुए बच्चों को शीर से देखिए कि वह सोते समय कैसे सो जाता है और उसी का अनुकरण कीजिए। जब आप सोने जाएँ, तो आप भी बड़ा हो जाएँ और बचपन ही की चेदनाओं को धारण कर लीजिए, कि आप भी बच्चे की भाँति सो जाया करेंगे। केव

इतना ही उपदेश एक सुन्दर जिल्दवाली किताब में छापने के योग्य है, क्योंकि यदि हम उपदेश का अनुसरण किया जाय, तो मानव-समाज बहुत कुछ उन्नत हो जाय ।

यदि किसी मनुष्य का मानव की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान प्राप्त हो जाय और यह चिन्तित हो जाय कि सृष्टि में उसका पद क्या है, तो वह अपने ही की भाँति विधाम में निमग्न हो जाय । वह सृष्टि में अपने को निर्द्वन्द्व समझता है और विरव के शासन करनेवाली शक्ति में इतना विरवाम और भरोसा रखता है कि वह अपने की भाँति अपने शरीर को ढीला कर देता है और अपने मन पर से तनाव को खींच लेता है और क्रमशः विधाममय नींद में निमग्न हो जाता है ।

उन मनुष्यों के लिये, जो नींद न आने के कारण दुखी रहा करते हैं, नींद बुझाने के लिये हम कोई विशेष नियम न देंगे । हमारा विरवाम है कि यदि वे विचारयुक्त और प्राकृतिक जीवन की तरकीबों का अनुसरण करेंगे, तो वे बिना किसी खास सलाह के पाप ही स्वभाव ही से आप-से-आप सो जाया करेंगे । परन्तु यहाँ पर उन लोगों के लिये, जो साधन कर रहे हैं, दो-एक बातों का कह देना जरूरी ही होगा । सोने के पहले टाँगों और पैरों को ठंडे पानी से धो बाझने से नींद आती है । मन को अपने चरखों पर प्रकाश करने से भी बहुतों को अच्छा लाभ होता है, क्योंकि रुधिर का प्रवाह चरखों ही की ओर अधिक झुक जाता है और मस्तिष्क को विधाम मिल जाता है । समझे ऊपर यह बात है कि नींद बुझाने की कोशिश कभी मन कीजिए, यह सोने की इच्छा रखनेवाले के लिये अत्यंत पुरी बात है, क्योंकि इसका विपरीत ही फल होता है । यदि आप इसका प्रयास ही करें, तो बेहतर तरकीब यह है कि आप ऐसी मानसिक स्थिति धारण कर लीजिए कि चाहे मृत्यु हो जाय या न हो जाय,

इसकी कुछ चिंता ही नहीं; यह देखिए कि शरीर और मन सब प्रकार से विना तनाव के ढीले तो हो गए हैं, और आप सब प्रकार से संतुष्ट तो हैं। अपने को थका हुआ बच्चा कल्पना कर लीजिए कि आधा ऊँघते हुए विश्राम कर रहे हैं, न तो पूरा सो ही गए हैं और न पूरा जागते ही हैं, बस ऐसा ही कीजिए। बहुत रात तक चिंता मत करते रहिए कि अब भी नींद नहीं आई, केवल वर्तमान क्षण में संतुष्ट होकर निश्चित हो जाएँ और निष्क्रियता का सुख भोगिए।

शिथिलीकरण के अध्याय में जो कसरतें दी गई हैं, उनसे आप इच्छानुसार अपने को ढीला कर सकेंगे और जिनको नींद न आने का दुःख भोगना पड़ता है, उनको मालूम होगा कि उनकी सभी आदतें बदल गई हैं।

अब हम जानते हैं कि हम सभी शिष्यों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे बच्चे की भाँति अथवा किसान की तरह सवेरे ही सो जायेंगे और सवेरे ही जग उठेंगे। हमारी इच्छा तो यही है कि ऐसा ही होता; परंतु हम समझते हैं कि अर्वाचीन जीवन में, विशेष करके बड़े-बड़े नगरों में कैसी-कैसी आवश्यकताएँ पड़ जाती हैं। इसलिये हम अपने शिष्यों से यही अनुरोध आग्रहपूर्वक करते हैं कि हवा विषय में जहाँ तक हो सके, प्रकृति के निकट रहने का यत्न कीजिए। जहाँ तक हो सके अधिक रात तक जागना और अपने को जोरा में रखना तर्क कर दीजिए; और जब अवसर मिले, सवेरे सोइए और सवेरे ही जगिए। हम जानते हैं कि ऐसा करने से आपकी उस बात में बाधा पड़ेगी, जिसे आप आनंद समझे हुए हैं; परंतु हमारा यही निवेदन है कि इस "आनंद" में भी आप विराम कर लीजिए। देर या संघेरे मानव जाति फिर सादे तरीकों से जीने की ओर वापस

आपगा, जैसा आज तक भले आदमियों में राजा, अमीर आदि का व्यवहार और शराब पीकर मनवांछा हो जाना आदि गिने जाते हैं। परन्तु सब तक हम यही कह सकते हैं कि जहाँ तक करते थे, हम विषय में करते रहिए।

यदि आपको दिन की दोपहरी में कुछ समय मिल जाय, या अन्य हाँ किसी समय में, तो आपको मालूम हो आपगा कि आधे घंटे के शरीर के शिथिलीकरण अथवा निद्रा से आपके शरीर में ताज़गी आ जायगी और उठने पर आप बेइतर कार्य करने के योग्य हो जायेंगे। बहुत-से लब्ध प्रसिद्ध कामकाजी और रोज़गारी मनुष्य इस गूढ़ भेद को जान गए हैं, और अब मौक़र-चाकर होंग़ मित्रनेवालों से कहते हैं कि मासिक आध घंटे के लिये बहुत ही आवश्यक काम में कैसे हैं, तो अक्सर यह बात रहती है कि वे चारपाई पर पड़े हुए अपने शरीर को ढोला किए हुए खंवी साँसें लेते रहते हैं, और प्रकृति को ऐसा अवसर देने रहते हैं कि वह ताज़गी दे दे। अपने काम के बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा विराम देने से मनुष्य उतने काम का हुना काम कर सकता है, जितना बिना विराम किए करता था। हे परिधर्मी जनो, इस बात पर विचार करो और अपने परिधर्म के बीच-बीच में शिथिलीकरण और विराम के द्वारा तुम परिधर्म को और भी अधिक तेज़ और लाभदायक बना सकते हो। थोड़े-से शिथिलीकरण से नई ताज़गी आ जाती है और कठिन परिधर्म का योग्यता हो जाती है।

# उनतीसवाँ अध्याय

## नवजनन

इस अध्याय में हम आपके ध्यान को एक ऐसे विषय की ओर आकर्षित करेंगे, जो मानव जाति के लिये अत्यंत हितकर है, परंतु जिस पर विचार करने के लिये मानव जाति तैयार नहीं है। इस विषय पर सर्वसाधारण को भ्रम की वर्तमान स्थिति के कारण इच्छा-मुक्त या आवश्यकतानुसार साफ-साफ लिखना असंभव है; क्योंकि हम विषय के सभी लेख अश्लील और अपवित्र प्रपात्र किए जाते हैं, यद्यपि लेखक का उद्देश सर्वसाधारण की अश्लील और अपवित्र तथा अनुचित प्रियाओं का रोकना हो क्यों न हो। तथापि कुछ निर्भय लेखकों ने सर्वसाधारण को किसी-न-किसी प्रकार से इस नवजनन के विषय से ज्ञासी तौर पर परिचित करा दिया है, जिससे हमारे पाठकों में से अधिकतर मनुष्य हमारे भाव को समझ जायेंगे।

हम कामशास्त्र-ऐसे प्रधान विषय को नहीं वर्णन किया चाहते, क्योंकि उसके वर्णन में तो अलग ही एक अच्छी किताब तैयार हो जायगी; और इसके अलावे हम किताब में उस शास्त्र की सविस्तर व्याख्या करने की चेष्टा उचित भी नहीं है। हम कुछ बात नवजनन के विषय में कहेंगे। मनुष्य लोग जो अधिक प्रसंग करते हैं और सहधर्मियों की अधिक प्रसंग के लिये विवश करते हैं, उसको योगी लोग बिनाकुल प्रकृति के विरुद्ध समझते हैं। उनका यह विश्वास है कि रज और धीरे से इतने अनमोल पदार्थ हैं कि नष्ट करने के योग्य नहीं हैं, और जो मनुष्य ऐसा करता है, वह इस विषय में वशु से भी भोले गिर जाता है। सिर्फ एक या दो को छोड़कर शेष सब नीचे जंघु केवल संतान

वे जिसे प्रयोग करते हैं : और प्रयोग-विषय ज्ञान स्वतंत्रता का ज्ञान विभाग समुदाय करते हैं, वह भीच उद्गुप्तों को सु सक नहीं करा है।

पत्नी-पती मानव जगति सर्वत्र मिलते हैं। उनमें एक-दूसरे के साथ जोड़ा हुआ होता है, जो दोनों पति और पत्नी के साथ में एक-एक करके होते हैं और हममें परस्पर एक-दूसरे का देना-लेना होने लगता है, जो पुरुषों ही में नहीं होता और न जो पशुपक्ष और मनुष्यों ही में होता। यह बात उल्लेखनीय और आश्चर्यजनक रूप से ही है। पति और पत्नी के बीच में सम्बन्ध रहने में उल्लेख, शक्ति और मजबूती प्राप्त होती है न कि शान्ति, निराला और दुर्लभता, जो कि केवल विज्ञानियों में उल्लेख हुआ करता है। यही कारण है कि पति-पत्नी में यदि एक उच्च भाव और दूसरा नीच भाव का हुआ, तो दोनों एक-दूसरे नहीं कर सकते, एक आगे बढ़ा चाहता है, तो दूसरा पीछे हटने का प्रयत्न करता है और इसलिये वैमनस्य और विरोध हो जाता रहता है। वे दोनों भिन्न भिन्न ओरों में रहने लगते हैं और वे परस्पर एक-दूसरे में उस सुख को नहीं पाते, जिसकी उन्हें अभिलाषा होती है। कम-हम-हम विषय में केवल इतना ही कहा चाहते हैं। हम विषय पर बहुत अच्छी-बुरी किताबें लिखी गई हैं। जहाँ उच्च विचार के ग्रंथ मिलते हैं, वहाँ पता लगाने से इन किताबों का पता लग सकता है। अब आगे इस अध्याय में हम राज-धीर्य की रक्षा की महिमा के विषय में कहेंगे।

यद्यपि योगी श्लेष्म श्लेष्मकारी रहकर ऐसे जीवन में रहते हैं कि पति-पत्नी-भाव था उनके प्रसंग की बात ही नहीं रहती, तो भी योगी श्लेष्म जननेन्द्रियों के बलवान् होने और उनका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ने की महिमा को भली भाँति समझते हैं। इन इंद्रियों के निर्बल हो जाने से सारा आधिभौतिक शरीर-यंत्र निर्बल हो जाता है और-

दुःख भोगता है। पूरी साँस लेने से ( जिसका वर्णन पहले हो चुका है ) एक ऐसा ताल उत्पन्न होता है, जो इस मुख्य अंग को स्वाभाविक स्थिति में रखने के लिये स्वयं प्रकृति की आदि ही से रची हुई तरकीब है; इस पूरी साँसक्रिया द्वारा जनन-शक्ति सुदृढ़ और जीवटवाली हो जाती है और इस प्रकार सहानुभवी क्रिया द्वारा सारा शरीर चलवान् और सुदृढ़ हो जाता है। इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि पूरी साँस की क्रिया से कामवृत्ति जगती है—किंतु हमसे बिलकुल ही पृथक् योगी लोग ब्रह्मचर्य और काम-दमन के पक्षपाती होते हैं, वे वैवाहिक गैठजोड़े में और अन्यत्र भी सर्वत्र पवित्रता चाहते हैं। उन लोगों ने स्वयं काम को दमन करना सीखा है, और वे काम को इच्छा और मन का वशवर्ती बना सकते हैं। परंतु काम के दमन करने का अर्थ नपुंसकता नहीं है, योगियों की यह शिक्षा है कि जिन पुरुष और स्त्रियों के जननावयव प्राकृतिक और सुदृढ़ हैं, उनका संकल्प ऐसा प्रबल होगा कि जिससे वह अपने को वश में रख सकेगा। योगियों का यह विश्वास है कि जननेन्द्रियों की निर्वलता ही के कारण कामातुरता होती है।

योगी लोग यह भी जानते हैं कि कामशक्ति को परिवर्तित करके कैसे उसे शारीरिक और मानसिक विकास में लगा सकते हैं कि जिसमें वह व्यर्थ न जाय, जैसा कि मूर्ख मनुष्यों में वह मष्ट हुआ करती है। आगे चलकर हम योगियों की एक ऐसी कसरत बताते हैं, जिससे काम-शक्ति मानसिक और शारीरिक बल में परिवर्तित हो जाती है। चाहे शिष्य योगी के इंद्रियसौच को पंथ करे या न करे, पर यह तो उसे मालूम हो ही जायगा कि पूरी साँस से इन अवयवों में इतनी शक्ति आवेगी, जितनी और किसी उपाय से नहीं कर सकती। स्मरण रखिए कि हम प्राकृतिक स्वस्थता का प्रतिपादन कर रहे हैं, न कि अस्वाभाविक वृद्धि का। योगी कामी

को जो यह दर्शन होगा कि आत्मिक का कार्य योग की द्वारा का  
 कम होगा है; और निश्चय अनुभव को यह मान्य होगा कि इसका  
 कार्य शरीर में मान यह जाना और उस निश्चयना में सुटकारा पा  
 जाना है, जो यह सब उसे अनुभव बनाए थी। हम यह नहीं चाहते  
 कि यहाँ पर इसकी बातों को समझने में कारकों कम हो। योगी  
 का आदर्श यह है कि शरीर अपने सब अवयवों में सुरक्षित हो और  
 अपनी प्रकृत दृष्टान्तिक के आदर्श में उच्चताओं में आगम  
 होकर रहे।

योगी लोग पुण्यों और क्रियाओं के बीच और राज के सुखवहार  
 तथा सुखवहार का बहुत बड़ा ज्ञान रखते हैं। इस विषय की कुछ  
 बातें योगियों की दृष्टि से निश्चय कर दी-कही अन्य मनुष्यों में  
 फैल गई हैं, और उन बातों को कुछ परिचित मनुष्यों ने जिन हाथों  
 है और इनसे बहुत लाभ हुआ है। इस विषय में हम उस विषय  
 के आंतरिक विचारों का वर्णन करेंगे, परंतु एक ऐसी तरीका पर  
 आपसे ध्यान को आकर्षित करेंगे, जिससे शिष्य अपनी जननशक्ति  
 को नष्ट करने के स्थान में उसे सारे शरीर के जिये जीवट रूप में  
 परिवर्तित कर सकता है। जननशक्ति उत्पत्तिकारिणी शक्ति है,  
 और सारे शरीर-यंत्र द्वारा ग्रहण करके सब और जीवट रूप में  
 परिवर्तित हो सकती है; इस प्रकार जनन के स्थान में नष्टगठन कर  
 सकती है। यदि हमारे नवयुवक लोग इन गूढ़ तत्वों को समझ  
 जाते, तो वे जानेवाले अनेक विपत्तियों के समूह और दुःखों से  
 सुटकारा पा जाते और मन, बुद्धि, धर्म और शरीर से सब प्रकार बलिष्ठ  
 हो जाते।

जननशक्ति का यह परिवर्तन अभ्यासी को बहुत जीवट देता  
 है। यह उन्हें उस योजन से भर देता है, जो उनके शरीर में तेज  
 और प्रताप रूप से झलकने लगता है। इस प्रकार से परिवर्तित ;



शक्ति दूसरे मार्गों में ले जाकर बड़े-बड़े कामों में लगाई जा सकती है। प्रकृति ने प्राण के एक अत्यंत शक्तिमान् रूपांतर को इस जनन-शक्ति के रूप में एकत्रित कर दिया है। अधिक-से-अधिक जांच शक्ति बहुत थोड़े परिमाण में एकत्रित की गई है। जंतुओं के जीवन में जननावयव एक बड़े प्राणमंडार हैं, और उनकी शक्ति को ऊपर खींचकर चाहे उसे मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नति में प्रयोग करें, चाहे जनन-कार्य में लगायें अथवा भोग-विलास में लष्ट कर डालें।

जननशक्ति को परिवर्तित करनेवाली योगियों की कसरत बहुत ही सरल है। वह साव्युक्त सौम्य के साथ और बहुत आसानी से की जाती है। इसका अभ्यास किसी समय में किया जा सकता है, परंतु उस समय इसको करने का हम आग्रह करेंगे जब कामेच्छा प्रबल हो उठी हो; उस समय में वह शक्ति प्रकट रहती है और आसानी से पुष्टिकर कार्यों में परिवर्तित की जा सकती है। हम आगे इसे देखेंगे। जिन पुरुष और स्त्रियों को मानसिक और शारीरिक उत्पादन कार्य करना पड़ता है, वे इस उत्पादिनी शक्ति को अपने व्यवसाय में प्रयोग कर सकते हैं और कसरत में प्रत्येक रवाय खींचने के साथ शक्ति को खींचकर रवास छोड़ने के समय इसे अभीष्ट स्थान को भेज सकते हैं। शिष्यों को समझ लेना चाहिए कि वस्तुतः रज और पीयूष इस रीति से नहीं खींचे जाते, किंतु वह मायशक्ति खींची जाती है, जिससे यह कामशक्ति जाग्रत रहती है—मानो जननशक्ति का सत् खींचा जाता है।

#### पुष्टि-विधायिनी कसरत

अपने मन को काम-चिंतनाओं और काम-कल्पनाओं से हटाकर केवल शक्ति-मात्र पर ध्यान कीजिए। यदि काम-चिंतनाएँ मन में आ जायें, तो इससे हिम्मत न हारिए; परंतु इसे उस शक्ति का

विकास समझिए, जिसे आप शरीर और मन की पुष्टि करने में लगाया चाहते हैं। झोले होकर पड़ जाइए या सीधे बैठ जाइए; और अपने मन को इस कल्पना में लगाइए कि मानो आप इस जननशक्ति को ऊपर खींचकर सौर्यकेंद्र में ला रहे हैं, जहाँ यह परिवर्तित होकर जीवन्-शक्ति के रूप में संचित रहेगी। तब तालयुक्त श्वास लीजिए; और मन में यह कल्पना कीजिए कि प्रत्येक श्वास खींचने में आप कामशक्ति को ऊपर खींच रहे हैं। प्रत्येक श्वास खींचने में प्रबल आकांक्षा की आज्ञा दीजिए कि जननेन्द्रियों से शक्ति खिंचकर ऊपर सौर्यकेंद्र में आवे। यदि ताल ठाँक रीति से निरिक्त हो गया होगा और कल्पना स्पष्ट हो गई होगी, तो आपको शक्ति ऊपर चढ़ती प्रतीत होगी और आपको उसके उत्तेजक प्रभाव का बोध हो जायगा। यदि आप मानसिक बल की वृद्धि चाहते हैं, तो आप इसे सौर्यकेंद्र में खींचने के स्थान पर मस्तिष्क में खींच सकते हैं; यह कार्य मानसिक आज्ञा देने और मस्तिष्क में खींचने की कल्पना करने से हो सकता है। कमरत के इस अतिम भाग में शक्ति का केवल उतना ही अंश मस्तिष्क में जायगा, जितने की वहाँ आवश्यकता होगी; शेष भाग सौर्यकेंद्र ही में संचित रह जायगा। इस परिवर्तिनी क्रिया में सिर को थोड़ा आगे सरकता और स्वाभाविक रीति से मुका रहना चाहिए।

यह मनःप्रवर्तन का विषय अच्छा, अभ्यवर्ण और अभ्यसन के ब्रिये एक वृद्ध-प्रेम उपरिष्ठा कर देना है; और किसी दिन इस विषय पर एक छोटी किताब लिख देना हितकर समझ सकते हैं कि यह किताब उन थोड़े-से मनुष्यों में घुमाई जाए जो हमके ब्रिये तैयार हों और जो पवित्र भावना से हमके खोजी हों न कि काम-कल्पनाओं और काम-वृत्तियों से प्रेरित होकर हमें लक्ष्य करते हों।

# तीसवाँ अध्याय

## मानसिक स्थिति

जिन लोगों ने प्रवृत्तिमानस और आधिभौतिक शरीर को स्वास्थ्य रखने के विषय में योगियों की शिक्षा का परिचय पा लिया है, और यह भी जान लिया है कि प्रबल आकांक्षा का कितना प्रभाव प्रवृत्तिमानस पर पड़ता है, वे बड़ी आसानी से देख सकते हैं कि किसी मनुष्य की मानसिक स्थिति का बड़ा भारी प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिस मनुष्य की मानसिक स्थिति उज्ज्वल, प्रसन्न और सुखी होती है, उसका भौतिक शरीर स्वाभाविक रीति से अपना काम करता है, परंतु विषादयुक्त मानसिक दशाएँ, चिंता, चिक्चिड़ापन, भय, ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध ये शरीर पर अपना बुरा असर डालते हैं और शारीरिक गड़बड़ उत्पन्न कर देते हैं, जिसका परिणाम रोग होता है।

इस बात को हम सब लोग जानते हैं कि अच्छे समाचार और प्रसन्न संघ स्वाभाविक भूख उत्पन्न करते हैं, परंतु बुरे समाचार मन इस संघ वगैरह भूख को मंद कर देते हैं। किसी मिथ मोजन का जिक्र जाने पर मुँह में पानी भर आता है और किसी बुरी वस्तु के स्मरण से मतली आने लगती है।

हमारी मानसिक स्थितियाँ हमारे प्रवृत्तिमानस में प्रतिबिम्बित होती हैं, और चूंकि मन का यह अंश शरीर पर सीधा अधिकार रखता है, इसलिये यह बात अट्ठसमक में आ सकती है कि मानसिक स्थिति कैसे शारीरिक कार्यों में अपना असर डाल देती है।

विषादयुक्त भावनाएँ रुधिरसंचार पर अपना असर डालती हैं,

और हमें शरीर के अन्वेषण भाग पर प्रभाव पड़ना है कि शरीर अपनी दुष्टि में संतुलित रह जाता है। इनमें प्रयास करने को मंद कर देने है, जिसका यह परिणाम होता है कि शरीर को उचित पोषण नहीं मिलना और रुधिर क्षीण हो जाता है। इसके विरुद्ध प्रयत्न विचार और दुःख तथा संग्रह भावनाएँ पाचन को बढ़ाती हैं, भोजन को जगाती, रुधिर-अन्वेषण में सहायता देती और अन्तः शरीर पर कायाकण्ड का प्रभाव दूर करती हैं।

बहुत-से लोग यह प्रयास करते हैं कि मानसिक भावों का शरीर पर प्रभाव डालना यह योगियों और उन लोगों का भ्रम है, जो मन की प्रधानता देकर मानस ही द्वारा रोग चंगा करने में अपना स्वार्थ समझते हैं। परन्तु आप वैज्ञानिक अन्वेषणकारियों के प्रामाणिक श्रेष्ठों को देखिए, तो आपको मालूम हो जायगा कि ऐसा प्रयास सत्य घटनाओं के आधार पर है। बहुत बार परीक्षाएँ की गई हैं, जिनसे यह सिद्ध हुआ है कि शरीर मानसिक स्थिति और विश्वास को भ्रष्ट ग्रहण कर लेता है। बहुत-से मनुष्य स्वतः प्रवृत्त भावनाओं और दूसरों द्वारा प्रवर्तित की हुई भावनाओं से रोगी हो गए हैं और रोग से छुटकारा पा गए हैं। ये भावनाएँ मानसिक स्थितियों ही से हैं ?

क्रोध के आवेश में स्तन या धूँक बिगड़ जाता है; यदि माता बहुत भयभीत या क्रुद्ध हो जाय, तो उसका दूध बच्चे के लिये विषैला हो जाता है। यदि मनुष्य विषादयुक्त या भयभीत हो जाय, तो उसके आमाशय से स्वरक्षदनापूर्वक द्रव नहीं चक्का। ये सब हज़ारों प्रमाण दिए जा सकते हैं।

क्या इसमें आपको संदेह है कि अयुक्त भावनाओं के कारण बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं ? तब कुछ परिचित वैज्ञानिकों का प्रमाण सुन लीजिए—

“घात्रिका के किमी-किमी भाग में अधिक क्रोध या रंज करने के परिणामस्वरूप ज्वर आ जाता है।” सर सेमुयल बेकर।

“एकवारगी मन पर धक्का लगने से मन्धा प्रमेह उत्पन्न होता है, जिसका कारण मानसिक उद्वेग है।” सर थो० डबल्यु० रिचार्डसन।

“बहुत-सी बीमारियों में देखने से मुझे ऐसे कारण मिले हैं, जिनसे विश्वास किया जा सकता है कि बहुत दिनों तक चिंता करने से विपैले फोड़े की उत्पत्ति हुई है।” सर जार्ज पेजेट।

“हम इस बात को देखकर बहुत आश्चर्यित हुए कि चक्कर फेफड़ों में विपैले फोड़ों के रोगी लगातार रंज के कारण इस रोग में पड़ गए। यह बात इतनी अधिक देखने में आती है कि इसे सिर्फ इत्तफाक नहीं कह सकते।” मर्चिसन।

“विपैले फोड़ों की बीमारियों, ब्रासकर छाती की, मानसिक चिंता के कारण उत्पन्न होती हैं।” डॉक्टर स्नो।

इत्यादि, इत्यादि।

डॉक्टर हैक ट्यूक मानसिक बीमारियों की अपनी किताब में, जो पश्चिमी दुनिया में मानसिक श्रौषधियों के प्रचार के बहुत पहले की है, लिखते हैं कि अनेकों बीमारियाँ भय से उत्पन्न होती हैं जैसे उन्माद, विचिन्ता, लकवा, पहले ही बाल पक जाना, गंजा सिर, दाँतों का बिगड़ना इत्यादि।

उन दिनों में जब सांपर्किक बीमारियाँ ब्या की भाँति फैलती हैं, तो देखने में आता है कि बहुत-से अनुप्य भय ही के कारण बीमार पड़ जाते हैं; अथवा बीमारी का नो हलका हमला हुआ, पर भय का इतना भारी हमला हुआ कि लोग मर जाते हैं। यह बात आसानी से तब समझ में आवेगी, जब हम ध्यान करेंगे कि सांपर्किक बीमारियाँ कम जीवद के अनुप्यों ही पर अधिक आक्रमण करती हैं और भय और ऐसी वृत्तियाँ जीवद को कम कर ही देती हैं।

इस विषय में बहुत-सी अच्छी-अच्छी किताबें लिखी

जो आपके अधिक विस्तार करने की आवश्यकता

परंतु इस विषय को छोड़ने के पहले हम अपने शिष्यों के मन पर हम बात को चर्चित कर देना चाहते हैं कि "विचार क्रिया का रूप धारण करते हैं" और मानसिक दशाएँ शारीरिक क्रियाओं के रूप में प्रकट होती हैं ।

योगशास्त्र अपने शिष्यों के मन में स्थिरता, शांति, शक्ति और निर्भयता उत्पन्न करना चाहता है, जो कि शरीर में आकर प्रति-बिंबित होते हैं । ऐसे मनुष्यों के मन में शांति और निर्भयता तो स्वाभाविक ही रीति से आती है और विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती । परंतु उन लोगों के लिये, जो अभी तक मानसिक शांति नहीं प्राप्त किए हैं, हम बात से बहुत लाभ हो सकता है कि वे अपने मन को शांत रखने का प्रयास बनाए रहें और ऐसे मंत्रों को जपें, जिनमें शांत मन की कल्पना होती हो । हमारी राय है कि वे शब्द जपे जायें कि "वज्रवज्र, प्रसन्न और सुखी" और इन शब्दों के अर्थ पर ध्यान रहे, इन शब्दों के भाव को अपनी शारीरिक क्रिया में विद्यमान कीजिए, तो आपको मानसिक और शारीरिक बहुत बड़ा लाभ होगा और आप्यायिक बातों के ग्रहण करने के योग्य धारका मन होता जायगा ।

## इकतीसवाँ अध्याय

### आत्मा के अनुगामी बनो

यद्यपि यह किताब केवल भौतिक शरीर के कल्याण के अभिप्राय से लिखी गई है, और योगशास्त्र के उच्च अंश अन्य क्षेत्रों के लिये घोष दिए गए हैं, तथापि योगशास्त्र के मूल तत्त्व उसकी गौण शाखाओं से इस माँति मिले चुके हैं, और योगी लोग अपनी साधारण क्रियाओं में भी उन मूल तत्त्वों पर इतनी दृष्टि रखते हैं कि इस योगशास्त्र की शिक्षा और शिष्यों पर म्यात्र की दृष्टि से देखते हुए उन गूढ़ तत्त्वों के विषय में बिना कुछ बातें कहे हम इस विषय को नहीं छोड़ सकते।

जैसा कि हमारे शिष्य लोग निस्संदेह जानते हैं, यह योगशास्त्र ऐसा बतलाता है कि मनुष्य क्रमशः नीच रूपों से उच्च रूप में वृद्धि और विकाश पा रहा है और उससे भी ऊँचा आध्यात्मिक विकास इसका होनेवाला है। प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है यद्यपि वह नीच प्रकृति के आवरणों से इतना घिरा हुआ है कि वह बड़ी कठिनाई से जाना जाता है। आत्मा नीच जीवों में भी है, वह स्फुरण कर रहा है और सर्वदा उच्च-उच्च रूप में विकसित होने की ओर उन्मुख रहता है। इस उन्नतिशील जीवन का भौतिक आवरण, जो धातुओं, पौधों, नीच जंतुओं और मनुष्यों का शरीर है, ऐसा औज़ार है कि जो उच्च और उच्च तत्वों के उत्तम-से-उत्तम विकास के लिये काम आता है। परंतु यद्यपि भौतिक शरीर का व्यवहार अल्प समय के लिये और अनिष्ट है, और वह शरीर केवल वस्त्र की भाँति पहनने और उतार देने के योग्य है, तो भी प्रकृति का यह सर्वदा उद्देश्य रहता है कि औज़ार ज

हो सके, पूरा-से-पूरा बना रहे । प्रकृति यथासाध्य उन्नत-से-उन्नत शरीर देती है, और उचित जीवन की प्रेरणा करती रहती है, परंतु यदि ऐसे कारणों से, जिनका यहाँ वर्णन नहीं किया जाता, एक अपूर्ण शरीर जीव को मिल जाता है, तथापि उच्च भाव यह बल करते रहते हैं कि उसी देह के अनुकूल अपने को बनाकर उससे अच्छा-से-अच्छा काम निकालें ।

यह आत्म-रक्षा की प्रकृति—यह जीवन की आंतरिक प्रेरणा—आत्मा का विकास है । यह प्रकृतिमानस के आदिम रूप से लेकर अनेक दृश्यों में काम करती हुई मानसिक मूल तत्त्व के उच्चतम विकास तक पहुँचती है । यह बुद्धि में होकर भी प्रकट होती है, जिससे मनुष्य अपनी तर्कशक्तियों का व्यवहार करके अपनी शारीरिक पूर्णता और जीवन को कायम रखता है । परंतु शोक है कि बुद्धि अपने ही काम में नहीं लगी रहती, किंतु ज्यों ही वह अपने को कुछ समझने लगती है, त्यों ही वह प्रकृतिमानस को हटाकर आप जीवन की अनेक प्रकार की अस्वाभाविक कृत्रिमियों को शरीर पर डकेल देती है और प्रकृति से हटती दूर कर देने की चेष्टा करती है, जिसका संभव हो सकता है । यह उस छद्म की भाँति है, जो माता-पिता के शासन से स्वतंत्र होकर माता-पिता के आदर्श और उपदेश के यथासाध्य विपरीत चला जाता है—केवल इसी बात को दिखाने के लिये कि मैं “स्वतंत्र हूँ” । परंतु जबका अपनी मूर्खता को किसी समय पर समझ जाता है और सुधार जाता है—उसी प्रकार बुद्धि भी कभी सुधार आती ।

मनुष्य जब समझने लगा है कि उसके भीतर ऐसी कोई चीज़ है, जो उसकी आवश्यकताओं पर ध्यान रखती है, और वह अपने काम को उस मनुष्य की अपेक्षा अधिक समझती है । क्योंकि मनुष्य अपनी सारी बुद्धि रखने हुए भी प्रकृतिमानस के उन मारुतों को



नहीं कर सकता, जिन्हें वह पौधों, जंतुओं और स्वयं उसी मनुष्य में कर सकता है। और वह हम मानस तत्त्व को मित्र समझकर उसका भरोसा करने जगा है और उसने उसे अपना काम करने की छुटी दे दी है। जीवन की वर्तमान रीतियों में, जिन्हें मनुष्य ने अपने विकास में धारण कर लिया है, परंतु जिनसे पृथक् होकर वह देर या सबेर अपनी प्राकृतिक अवस्था में वापस आवेगा, पूर्णतया प्राकृतिक जीवन जीना प्रायः असंभव-सा हो गया है; जिसका परिणाम यह हुआ है कि भौतिक जीवन अवरय कुछ-न-कुछ अनरतीति का होगा। परंतु प्रकृति की आत्मा और प्रतिपोजना प्रवृत्ति बहुत प्रबल है; और वह बहुत अच्छी तरह से अपना काम निबाह लेती है, और अपने काम को उसकी अपेक्षा बेहतर करती है, जिसे सम्य मनुष्य जीवन की अपनी उदपट्टांग रीतियों के द्वारा करने की धारा कर सकता है। इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि मनुष्य ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है और उसका आत्मा विकास पाने लगता है, स्थान-स्थान उसे ऐसी एक चीज़ प्राप्त होने लगती है, जो प्रवृत्ति के अनुरूप होती है, जिसे हम लोग प्रतिभा कहते हैं और यही प्रतिभा उसे प्रकृति के मार्ग पर वापस लाती है। हम इस उदय होती हुई चैतन्यता को देख सकते हैं कि प्राकृतिक जीवन और सारी ज़िंदगी की ओर कैसा झुगों का झुकाव हो रहा है और थोड़े दिनों से तो इसकी बहुत ही ज़्यादा तरफ़की है। अब हम लोग अपनी इस चमकीली सम्यता के रूपों, पुराने विश्वासों और रस्म-रिवाजों पर हँसने लगे हैं और यदि हम इन्हें दूर न कर देंगे, तो ये उस सम्यता को उसी के यदने हुए बोम के नीचे गिरा देंगे।

जिस पुरुष या स्त्री में अच्युत का विकास हो रहा है, वह कृत्रिम जीवन और दस्तों से असंतुष्ट हो जावेगा और जीवन की सारी और प्राकृतिक रीतियों की ओर झुकेगा और कृत्रिम आचरणों

बंधनों से, जिनसे मनुष्य बहुत काल से घिरा खड़ा आता है, उधर जावेगा। उसको सर्वदा अपना वास्तविक घर स्मरण आने लगेगा—  
“बहुत दिनों के बाद हम घर लौट रहे हैं।” और बुद्धि भी अनुकूल हो जाएगी, और उन मूर्खताओं को देखकर, जिनमें वह अब तक पड़ा था, यही चेष्टा करेगी कि सब मूर्खता छोड़कर आओ घर चलें, अपने कार्य को वह अच्छी तरह करने लगेगा और प्रवृत्तिमानस को अपना कार्य निर्वाह करने के लिये छुटी दे देगा।

इदयोगी के सब विचार और अभ्यास इसी घर लौट चलने के आधार पर अवलंबित हैं—इस विश्वास पर कि मनुष्य के प्रवृत्ति-मानस में वह चीज़ है, जो साधारण दशा में उसके स्वास्थ्य को क़ायम रखनेगी। इसी के अनुसार वे लोग, जो योग-शिष्टा का अभ्यास करते हैं, पहले “छोड़ना” सीखते हैं और सब प्रकृति के उतना निकटस्थ होना सीखते हैं, जितना इस कृत्रिमता के ज़माने में संभव हो सकता है। इस छोटी किताब में प्रकृति ही के पथ और तरीक़े बतलाए गए हैं, जिसमें हम प्रकृति के पास लौट चलें। हमने नए मत का उपदेश नहीं किया है, परंतु सर्वदा आपसे यही आग्रह किया है कि हमारे साथ पुराने अच्छे उस पथ पर आ जाइए, जिसे छोड़कर हम लोग भूले हुए हैं।

हम इस बात को मानते हैं कि आज़कल के शुरार और छियों को प्राकृतिक जीवन स्वीकार कर लेना बहुत कठिन हो गया है, क्योंकि उनका संघ उन्हें विपरीत ही मार्ग प्रदश्य करने के लिये प्रेरणा कर रहा है, परंतु प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन अपने लिये और अपनी जाति के लिये इस पथ पर अवरण छोड़ा बहुत कुछ कर सकता है, और शनैः-शनैः उसकी पुरानी कृत्रिम आदतें सब एक-एक करके छूट जाएंगी।

इस अंतिम अध्याय में हम आपके मन पर यह अंकित किया जा रहा है कि मनुष्य भौतिक और आध्यात्मिक दोनों जीवन में आत्मा

का अनुगामी हो सकता है। मनुष्य आत्मा का पूरा भरोसा कर सकता है कि यह प्रतिदिन के जीवन तथा और देदेमेदे पेचीदा कामों में उसे सच्चे ही मार्ग पर ले जावेगा। यदि मनुष्य आत्मा का भरोसा करेगा, तो उसकी पुरानी कामनाएँ उससे ऊँच पड़ेंगी—उसकी अस्वाभाविक रुचियाँ लुप्त हो जावेंगी—और उसका उस सादे जीवन में यह सुख और आनंद मालूम होगा कि जिससे जीवन प्रथम की अपेक्षा अब भिन्न ही वस्तु प्रतीत होने लगेगा।

मनुष्य को यह विरवास कभी न त्यागना चाहिए कि आत्मा पार्थिव शरीर के कार्यों में भी अगुआ रहता है; क्योंकि आत्मा सर्वत्र व्यापक है और पार्थिव तथा उच्च मानसिक दशाओं दोनों में विकार पाठा है। मनुष्य जिस प्रकार आत्मा के साथ-साथ सोच विचार कर सकता है, वैसे ही उसके साथ-साथ भोजन कर सकता है, पानी पी सकता है। इस बात से काम नहीं चलेगा कि अमुक आध्यात्मिक वस्तु है और अमुक वस्तु आध्यात्मिक नहीं है। क्योंकि उच्च भावना में सभी वस्तुएँ आध्यात्मिक हैं।

अब अंत में यह कहना है कि जो मनुष्य अपने भौतिक शरीर को उत्तम-से-उत्तम किया चाहता है—आत्मा के विकारा के लिये अच्छा-से-अच्छा भौज़ार चाहता है—उसको अपने जीवन की सर्वदा आत्मा का भरोसा रखते हुए जीना चाहिए। उसको समझ लेना चाहिए कि उसके भीतर जो आत्मा है, वह परमात्मा की चितगाती है—परमात्म-समुद्र का एक बिंदु है—परमात्म सूर्य की एक किरण है। उसे समझ लेना चाहिए कि उसकी सत्ता निरुद्ध है, जो सर्वदा बढ़ रही, विकसित हो रही और प्रफुल्लित हो रही है; सर्वदा उस महत् प्रपञ्च की ओर जा रही है, जिसके वास्तविक भाव को मनुष्य अपनी इस वर्तमान दशा में अपनी अधूर्ण मानसिक दृष्टि से ग्रहण करने के अयोग्य है, प्रेरणा सर्वदा आगे और ऊपर के लिये है।

हम सब लोग हम सब एक ही जीवन के संग हैं, जो हमें सबों और शक्तियों में विभक्त हो रहा है। हम सब लोग हमें सबों के संग हैं। हमें सबों को यदि हम नजिक की धारणा करें, तो हमारा द्वार हम जीवन और जीवत के द्वारे खुल जाय कि हमारा शरीर बिजबुज ही बना हो लय और पूरा पूरा मिल रहे। चाहे हम सब लोग पूर्ण शरीर का ध्यान करें और हम सबका ही रहन रहने की चेष्टा करें कि हम पूर्ण शरीर के भौतिक रूप में मिल जाय—हम जान को हम लोग कर सकते हैं।

हमने भौतिक शरीर के नियमों को आप लोगों को बतलाया है कि आप लोग जहाँ तक हो सकें, उनका अनुसरण करें; और हम सब जीवन और मरती शक्ति के प्रवाह में, जो सर्वदा हममें होकर रहने की शक्त है, जहाँ तक हो सकें आवागमन पहुँचावें। हम लोगों की प्रकृति में कीट जन्मना चाहिए। हे मेरे प्यारे शिष्यो, हम मरती जीवन को अपने में होकर स्वयंसेवापूर्वक प्रवाहित होने दो, तो सब अन्त्याय-ही-अन्त्याय होगा। कुछ बातों को हम ही करें, ऐसा प्रयास छोड़ दो—सब चीजें अपना काम अपने आप हमारे द्वारे करें। वे चाहती हैं कि हम उनका विश्वास करें और उनके कार्यों में आधान रहें—चाहे हम लोग भी उन्हें अवसर दें। इति शब्द।





## कुछ आध्यात्मिक ग्रंथ

सीधे पंडित ( अपूर्व उपन्यास ) ...	...	111), मजिहद २)
संसार-रहस्य अथवा अधःपतन (आ-न्यासिक उपन्यास) 111), म० २)		
राजयोग अर्थात् मानसिक विकास (Mental Development		111), मजिहद २)
योगशास्त्रांतर्गत धर्म ( Advanced course in yogi		Philosophy ) 11)
योगप्रयोग ...	...	11), सजिहद १)
योग की कुछ विमूर्तिर्या ...	...	111), ,, 11)
जीवन-मरण-रहस्य...	...	12)
ध्यानयाम ...	...	1112), सजिहद 112)

### आध्यात्म-विषयक अन्य लेखकों की पुस्तकें

हृदय-स्तरंग ( जेम्स एलेन ) ...	...	1)
किशोरावस्था ...	...	1)
मित्रासी से भगवान् ( जेम्स एलेन ) ...	...	111)
मनोविज्ञान ...	...	111), सजिहद 11)
जीवन का सद्मय ...	...	1), ,, 111)
कर्मयोग ...	...	11), ,, 1)
मुख तथा सफलता ...	...	...

मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-मार्क, लाहौर









# कुछ आध्यात्मिक ग्रंथ

गीते पंडित ( अर्च उपन्यास ) ... .. १०), सजिद २)	
संसार-रहस्य अथवा अधःपतन (आध्यात्मिक उपन्यास) १०), स० २)	
रागयोग अर्थात् मानसिक विकास (Mental Development १०), सजिद २)	
योगशास्त्रागत चर्चा ( Advanced course in yoga Philosophy ) ०)	
योगप्रदीप ... .. ०), सजिद १)	
योग की कुछ विमूर्तियाँ ... .. ०), " १)	
जीवन-मरण-रहस्य... .. १२)	
प्राणायाम ... .. १३), सजिद १३)	

## आध्यात्म-विषयक अन्य लेखकों की पुस्तकें

हृदय-तरंग ( जेम्स एलेन ) ... .. ०)	
किशोरावस्था ... .. १)	
भिलासी से भागवान् ( जेम्स एलेन ) ... .. १०)	
मनोविज्ञान ... .. १०), सजिद १०)	
" का मध्यम ... .. १), " १०)	
" ... .. ०), " १)	
सफलता ... .. ०)	

पता—

आर्यालय

, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का पच्चीसवाँ पुष्प

# हठयोग

अर्थात्

## शारीरिक कल्याण

( योगी रामाचार्य-लिखित 'हठयोग'-नामक  
बंगाली ग्रंथ का हिंदी-रूपांतर )

अनुवादक

डा० प्रसिद्धनारायणमिश्र बी० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२४-२५, ब्रह्मावादी-पार्क

लखनऊ

द्वितीय आवृत्ति

प्रहजद  
 श्रीदुखारंसात्र भार्गव  
 अथ्यच्च गंगा-पुष्पकमाला-कार्यालय  
 लावनऊ  
 ❀❀❀  
 मुद्रक  
 श्रीदुखारंसात्र भार्गव  
 अथ्यच्च गंगा-क्राइनवार्ट-प्रेस  
 लावनऊ

## समर्पण

अवध के तारुलुकेदारों में आदर्श व्यक्ति,

धर्मकृत्यालंकरण,

अट्टास्पद धीमान्

राजा सूर्यवक्त्रसिंह साहय

ब्रह्ममहाधिपति के दर बसलों में ।

धीमान्,

भगवती सरस्वती और लक्ष्मी की लोचोत्तर विभूति से  
सपन्न हो धीमान् जिस देश की हितचिन्ता में अहर्निश लीन  
रहते हैं और अपनी जिस आदरणीय मानृभाषा हिंदी के  
साहित्य-भांडार की वृद्धि में तन, मन, धन से लगे रहते  
हैं, उसी भांडार की पूर्ति के सम्यग्रूप और उसी देश के  
व्यपार-व्यापन के प्राचीन एवं आदर्श योगनिधि के एक  
जंग हम पुनः को धीमान् की सेवा में हार्दिक धन्य और  
आदर से समर्पण कर रहे हैं ।

धीमान् का वृद्धभाजन,

प्रसिद्धनागदण्ड



## भूमिका

योगी रामाचारकजी की "माहंगे ऑफ प्रेथ" का जो मैंने अनुवाद किया, उसकी इंग्लिशवित्त कापो हमारे कई मित्रों के हाथ में पहुँची। उसे पढ़कर लोगों ने इसकी प्रशंसा प्रकट की कि इस दृष्टिकोण के अनुवाद करने का भी मुझे उत्साह हो गया। इसके अतिरिक्त हमें एक ठोसार्ही मित्रों ने इन क्रियाओं का अभ्यास भी प्रारंभ कर दिया। जिन-जिन लोगों ने जी लगाकर इसका अभ्यास किया, वे तो इसके गुणों पर ऐसे मुग्ध हो गए और कहने लगे कि भारतवर्ष के योगियों की जो विद्या अब तक पहाड़ों की कदराओं में छिपी थी, वह अब सर्वसाधारण में प्रचलित होगी और देश का आदीम उपचार होगा। इन बातों को सुन-सुनकर मैं विचार करने लगा कि जब केवल स्वाम-विद्याओं ही का प्रभाव लोगों को इसका उत्साहित कर रहा है, तो उन विद्याओं के साथ यदि ज्ञान, ध्यान, रहस्य, गहन इत्यादि सभी बातों में दृष्टिकोण के नियमों का अनुसरण होने लगेगा, तो और भी किनसा लाभ होगा। इसी विचार से योगी रामाचारकजी के दृष्टिकोण-आत्मक ग्रंथ का भी मैंने अनुवाद कर दिया।

योगी रामाचारकजी प्रत्येक विषय को अपनी किताबों में इस रीति से समझाने हैं कि लिख्यों के लिये कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती। बहुत दिनों से वह सुनने आते थे कि बिना साधना गुरु के कोई साधन सिद्ध नहीं हो सकता, पर योगी रामाचारकजी के उपदेश, बिना साधना गुरु के भी, साधना गुरु के-से लाभ देने हैं। इसलिये मैंने उम्मीद की थी कि टीक-टीक अनुवाद करने का यह विचार है, आपकी ओर से कुछ भी सम्भल-जमाने का भेदा नहीं है। हाँ, ऐसी बातों पर अत्यन्त धन्य परीक्षण कर दिए गए हैं, उहाँ उम्मीदों के अन्तर्गत विद्याओं लिख्यों के संशोधन करते रहते हैं, यही मैंने करने आरम्भ आरम्भों के संशोधन कर दिया है।



योगशास्त्र के पुराने ग्रंथों, जैसे पातंजल-योगशास्त्र और शिव-संहिता आदि के देखने से ज्ञात होता है कि पुराने ग्रंथ इतने बड़े नहीं हैं, जितना यज्ञ कि यह ग्रंथ है। इसमें बातें भी बहुत-सी नई-नई हैं, जो उन पुराने ग्रंथों में नहीं मिलतीं। हमारे देश के लकीर के फकीर लोग यह शंका कर सकते हैं कि इस किताब में तो बहुत-सी नई बातें आ गई हैं और पुरानी बातें भी नए ढंग से कही गई हैं, इसलिये इस शिष्टा का अनुसरण करने से तो हम नवग्राही हो जायेंगे और हमारा सनातनधर्म ही बिगड़ जायगा। ऐसे सनातनियों से हमारा यह निवेदन है कि पातंजलि और शिवजी का जमाना दूसरा था। उस जमाने में ऊँची-सी-ऊँची शिष्टा बहुत संक्षेप में, सूत्र रूप में, दी जाती थी। वही तरीका गुरु और शिष्य दोनों के अनुकूल था। पर अब तो यदि सही-से-सही सिद्धांत को आप संक्षेप में सूत्र रूप से कहेंगे, तो कोई सुनेगा ही नहीं। अब सूत्रकाल नहीं है। अब साइंस-काल है। एक ही बात को कई प्रकार से समझाइए, इतना समझाइए कि सुननेवालों के मन में कोई संदेह न रह जाय, सभी आपका समझाना समझाना है। इसी को साइंस या विज्ञान कहते हैं। इसमें ग्रंथ बड़े हो ही जाते हैं। इस योगशास्त्र के सिद्धांत तो वही सनातन के हैं, पर कहने का ढंग नया है; इसलिये इसका अनुसरण करने से सनातनधर्म किसी प्रकार नहीं बिगड़ सकता, हम बात से निश्चित रहना चाहिए। दूसरी यह बात कि इसमें पुराने ग्रंथों की अपेक्षा बातें अधिक कही गई हैं, हमको में मानता हूँ कि यह बात बहुत ठीक है और हमका भी प्रबल और आवश्यक कारण है।

यह कारण तब समझ में आवेगा, जब पहले आप यह समझ लेंगे कि योग की साधन-प्रणाली क्या है। योगशास्त्र पहले धरने शिष्यों को प्रकृति के मार्ग पर सजाता है, फिर उनकी शक्तियों को

जगाता है। एक मनुष्य है, जो राह छोड़कर थोड़ी ही दूर कुराह पर गया है; उसके लिये फिर से राह पर लाने के लिये थोड़ी ही धातें बहनी पड़नी हैं; परंतु दूसरा मनुष्य, जो अगली राह छोड़कर बहुत दूर भटक गया है, उसके लिये ज़रूर बहुत भटकी हुई धातों को समझाकर ठीक मार्ग पर खाना होगा। पहले ज़माने के मनुष्य प्रकृति के मार्ग से बहुत दूर नहीं भटके थे; हमलिये धाढ़े ही में कहकर उनको ठीक मार्ग पर लाने थे और उनको शक्तियों का जगाते थे। अब के मनुष्य भटककर प्राकृतिक मार्ग से बहुत दूर हट गए हैं और भ्रममानी राह पकड़कर गुमराह हो रहे हैं; हमलिये भटके हुए दूर के मार्गों का दोष दिखाकर आबरवक हो गया; सभी मनुष्य भटके मार्गों को छोड़कर अगली मार्ग पर आवेंगे। हमलिये हममें नई-नई भूतों और भ्रमों को दूर करने के लिये नई-नई धातें बहनी पड़ीं।

मेरे अनुभव में यह बात आई है, और मेरे साथक मित्रों ने भी हम बात का समर्थन और अनुमोदन किया है कि योगशास्त्र की पुस्तकों को केवल एक ही बार, चाहे दिनना ही ध्यानपूर्वक हो, अध्ययन करने से काम नहीं चलता। एक बार थोड़ा-थोड़ा पढ़कर अभ्यास शुरू कीजिए। प्रथम समाप्त हो जाने पर कुछ दिन के लिये हमका पढ़ना छोड़ दीजिए, पर अभ्यास करते जाएं। कुछ दिन के बाद फिर ध्यान से पढ़िए। इस प्रकार आपको नई जाने मात्रा होने आरंभों, जो पहले अध्ययन में आपके कपाल पर नहीं थीं। एक तो अध्ययन करने से आपके मन में नए-नए धारण रहेंगे, दूसरे एक ही बार में सब सब बातों को समझ नहीं कर सकना, हमलिये थोड़ा-थोड़ा धनर देकर हरे बार-बार करने रहना चाहिए, तब बड़ा काम होगा।

योग की विद्याओं के करने से शरीर के अंग-अंगों का उद्वेग है। अस्वस्थ अस्वस्थ, हँसे-रहे, कल-कल से शारीरिक क्रियाएँ बढ़ती तरह से होने लगनी हैं। निर्विकल अंतो में वह काम चलना है, दिव्य

अवयव किया करने लगते हैं, शरीर में, जहाँ-जहाँ श्रुटियाँ हैं, उनके दूर करने का प्रयत्न होने लगता है। वेदनाहीन अंगों में वेदना जग उठती है। शरीर में ऐसी भी श्रुटियाँ हैं, जिनकी आपको खबर तक नहीं है; क्योंकि वहाँ के अवयव वेदनाहीन हो गए हैं। पर जब सर्वत्र क्रिया जारी हो जाती है, तो वेदनाओं के जग जाने से श्रुटियाँ प्रकट हो जाती हैं। इसको बहुत-से लोग रोग समझ लेते हैं। हमारे मित्र साधकों में से कोई कहता है कि मेरी छाती में मीठी-मीठी पीड़ा-सी हो रही है, कोई कहता है, जँतड़ियों में कुछ अच्यवस्थिति-सी मालूम होती है इत्यादि-इत्यादि। इस बातों से डरना न चाहिए; किंतु प्रसन्न होना चाहिए कि क्रिया जारी हो गई और सफाई होने लगी। सबसे पहले फेफड़ों की सफाई होती है। किसी-किसी को कुछ घोंघी वेदना होती है, जुकाम तो अक्सर लोगों को हो जाता है और मूत्र कक्र जाता है। निरिच्छ रहिए, कोई बीमारी प्रबल वेग से कभी न उभरेगी, किंतु धीरे-धीरे उभरकर हमेशा के लिये दूर हो जायगी। अतएव इन सब बातों से निर्भय रहना चाहिए और अपने अभ्यास को कभी न छोड़ना चाहिए। जिस मकान की सफाई के लिये आप झाड़ू देने लगेंगे, उसमें गर्द अवश्य उड़ेगी; तो क्या गर्द उड़ने के डर से आप झाड़ू देना छोड़ देंगे? एक बार गर्द उड़कर फिर दिन-भर के लिये तो मकान साफ़ और सुथरा हो जायगा और यदि फिर आप फूँदा-करकट न आने देंगे, तो हमेशा के लिये साफ़ रहेगा।

इस किताब में कई जगहों पर तौल दी हुई है। वह अंगरेज़ी तौल है। उसके समझने के लिये हम नीचे तालिका दिए देते हैं—

६० ग्रैनों का	१ दाम।
८ दाम का	१ औंस।
२० औंस का	१ पाउंड।
२ पाउंड का	१ क्वार्ट।
४ क्वार्ट का	१ गैलन।

हम आशा करते हैं कि हमारे देश-वासी अपने पुराने भूले हुए हम योगभाग का अनुसरण करके काम उठावेंगे ।

जिम प्रकार जापान और योरोपियन देशों में शिखा-दीक्षा दी जाती है, उसी प्रकार हमारे इस बड़े भारतवर्ष में भी दी जाती है । पर हमी शिखा-दीक्षा का प्रभाव जिनना योरोपियन देशों में पड़ता है, हमारे देश में उतना प्रभाव नहीं पड़ता । कहीं तो एक मूत्र के उपदेश ने हमारा देश हुनना ज्ञान ग्रहण करता था कि जिनना अन्य देश पोपियों-की पापियों में भी नहीं ग्रहण कर पाते थे । अब वहा हमारा देश है कि जिन किताबों को पढ़कर एक योरोपियन, अमेरिकन व जापानी क्रिया-निपुण और व्यवसायी होकर बड़े-बड़े व्यवसाय करके अपने को और अपने देश को सब भौति में गवस बनाता है, उन्हीं किताबों को पढ़कर हम मुहंसी टूट कर लेते हैं । कारण क्या है ? हममें तो जो अंध है न शक्ति । योगदान उन्हा जोर और शक्ति को प्राप्त करने का मार्ग बनता है । जब जापानी लोग जिजिगु नामक ब्रह्म-क्रिया करके छोटे और थोड़े होने पर भी बड़े और अमर्य कमियों पर विजयी हो गए, तो क्या हम अपने प्राणायाम के ब्रह्म में प्रवृत्त शक्ति नहीं प्राप्त कर सकते ? अन्धाय ब्राह्म और धैर्य शक्ति, भव बुद्ध हो जायगा । बिना परिधम और धैर्य के बुद्ध न होगा । हम आशा करते हैं कि हमारे देश वहु हम अन्धाय को करके बनमाना काम उठावेंगे ।

मेरे दिव्य मित्र भीपुन पहिन कात्यायनीश्वरी त्रिवेदी ने करके अमर्य समय का एक बड़ा भाग हमसे मुक्त-सरोधम के व्यवस्था है, अन्ध मे बड़े शक्ति व्यवहार देना है ।

राज गुरी गुरीकी

शिक्षा साधकीकी,

१-१-१११०

सिद्धनारायणसिंह



# हठयोग

## पहला अध्याय

### हठयोग क्या है ?

योग-विज्ञान कई शाखाओं में विभक्त है । उसके विस्फाट और प्रधान भाग ये हैं—( १ ) हठयोग, ( २ ) राजयोग, ( ३ ) कर्मयोग और ( ४ ) ज्ञानयोग । यह पुरनक वह छे ही भाग का वर्णन करती है । इस समय हम दूसरे भागों के वर्णन करने का यत्न न करेंगे, बल्कि योग के इन सम्बन्ध बड़े भागों पर अवरण कुछ ध्यान ग्रंथों में करना ही पड़ेगा ।

हठयोग योगशास्त्र की वह शाखा है जो कि पार्थिव शरीर—इसकी

रक्षा—इसकी भलाई—इसके स्वास्थ्य और जब कुछ बालों का जो शरीर को इसकी प्राकृतिक और इसकी दृष्टि में रखने है, वर्द्धन करता है । यह जीवन को स्वाभाविक रीति से जीने का मार्ग बतलाता है और पुनः पुनः कहता है, जिस प्रकार जो बहुत-से पारंपरिक लोग भी थे वैसे ही कि “प्राकृतिक के मार्ग पर चलना चाहिये”, अगर वे सब इसका ही है कि योगी को “वृत्त” नहीं जाना है, क्योंकि वह तो सर्वदा प्राकृतिक और उसके वह का निष्पत्ति अनुभव करता है, और बाद वहाँ की ओर संशुद्ध होकर संशुद्ध होकर ही रहता है, यही है।

हृदय मनुष्य में मूर्त बनकर हृदय बाग को विकसित ही भूयाँ दिया है कि ऐसी भी कोई चीज़ सम्मान है, जिसे प्रकृति करने दे। प्रकृति के प्रयोजन शायद और सामाजिक चीजों की प्रकृति ही योगी के आनन्द में हो गयी। यह हृदय बागों पर ईश्वर है और ईश्वर सबकी का मेधा समझता है। यह प्रकृति की गौरव में बढ़ता हुआ नहीं है, किन्तु यह उच्च प्रकृति भाषा के कोश में गहरा रहता है, जिनमें हमारी मूर्तता गुह्य, गुह्य, गुह्य और रक्षा की है। हरयोग चाहे में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और योग में प्रकृति है। जब हमारे सामने कोई लक्ष्य, मर्याद संपन्न नहीं होती दृष्टादि चाहे तो। उसे हमी कभी-कभी पर कर्मों कि "प्रकृतिक मार्ग क्या है" और मर्यादा उम्मी को पसंद करो, जो प्रकृति के अनुकूल-तम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान शिष्य की बहुत-सी नहीं रीतियों, मनगढ़ंत उपायों, तरीकों, मर्यादों और प्रयासों की ओर आकर्षित हो, जिनमें कि परिष्कार संसार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने आवे और इस पर उन्हें विचार करने के लिये कहा जाय कि "पृथ्वी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण-शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को स्पर्श के तल्लेवाले जूतों को पहनना चाहिए और ऐसी चारपाइयों पर सोना चाहिए, जिनके पायों के निचले भाग में काँच जड़े हों, जिससे प्रकृति (पृथ्वी माता) उस आकर्षण-शक्ति को रोक ले, जिसे उसने हमें दिया है", तब हमारे शिष्यों को अपने मन-ही-मन यह प्रश्न करना चाहिए कि "इस विषय में प्रकृति क्या कहती है?" प्रकृति क्या कहती है, हमको जानने के लिये यह विचारना चाहिए कि क्या प्रकृति के ध्यान में स्पर्श के तल्ले बनाना और पहनना तथा काँचवाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिए कि चलवान् मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करने दें कि नहीं? इतिहास में जो बहुत बड़ा-बड़ा मानव-मनुदाय हो गया





हृदय मनुष्य में मूर्त बनकर इस ज्ञान को विस्तृत ही भुजा दिया है कि ऐसी भी कोई चीज सम्मान है, जिसे प्रकृति कहती है। दुनिया के प्रत्येक दूर और सामाजिक क्षेत्रों की पहुँच ही गोपी के ज्ञान तक हो गयी। यह इन बातों पर होगा है और हमें लक्ष्यों का भेद समझना है। यह प्रकृति की गोप में बहका हुआ मही है; सिंगु पर जब प्रकृति माता के लोह में मग्न रहना है, जिसने उगरी गर्वदा पुष्टि, पुष्टि, गुण और रक्षा की है। हरयोग आदि में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और ज्ञान में प्रकृति है। जब गुहारे सामने कोई तरीका, तरीक़ीय अवस्था नई रीति इत्यादि आने लगे। उन्हें हमी कभीही पर कभी कि "प्राकृतिक माता क्या है" और संयंदा उमी को पसंद करें, जो प्रकृति के अनुकूल-तम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान व्याप्य की बहुत-सी नई रीतियों, मनगढ़त उपायों, तरीक़ों, तरीक़ों और इयालों की ओर आकर्षित हो, जिससे कि परिचयों संसार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने आये और इस पर उन्हें विरवास करने के लिये कहा जाय कि "पृथ्वी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण-शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को रबर के तल्लेवाले जूतों को पहनना चाहिए और ऐसी चारपाइयों पर सोना चाहिए, जिनके पायों के निचले भाग में काँच जड़े हों, जिससे प्रकृति (पृथ्वी माता) उस आकर्षण-शक्ति को खींच न ले, जिसे उसने इन्हें दिया है", तब हमारे शिष्यों को अपने मन-ही-मन यह प्रश्न करना चाहिए कि "इस विषय में प्रकृति क्या कहती है?" प्रकृति क्या कहती है, इसको जानने के लिये यह विचारना चाहिए कि क्या प्रकृति के ध्यान में रबर के तल्ले बनाना और पहनना तथा काँचवाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिए कि बलवान् मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करते हैं कि नहीं? इतिहास में जो बहुत बड़ा-बड़ा मानव-समुदाय हो गया

